वैदिक काल से गुप्तकाल तक भारत में हिन्दू विवाह प्रथा - एक ऐतिहासिक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

से

इतिहास विषय में पी.एच.डी.
की उपाधि हेतु-प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशिका :
डॉ. श्रीमती शारदा अग्रवाल
रीडर एवं अध्यक्ष इतिहास विभाग
डी. वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

गौरव रावत
शोधार्थी :
गौरव रावत

दिसम्बर, 2005

VIMAL ORAI Ph. 252487

पूज्य माता - पिता
के चरणों में
समर्पित

डा० (श्रीमती) शारदा अग्रवाल
रीडर एवं अध्यक्ष
इतिहास विभाग
डी.वीं. स्नातकोत्तर महा विद्यालय
उरई

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री गौरव रावत ने इतिहास विषय में ''डाक्टर आफ फिलास्फी'' की उपाधि हेतु शीर्षक ''वैदिककाल से गुप्त काल तक भारत में हिन्दू विवाह प्रथा–एक ऐतिहासिक अध्ययन'' पर मौलिक शोध कार्य मेरे निर्देशन में नियमानुसार अपेक्षित समय सीमा के अन्तर्गत पूर्ण किया है।

निर्देशिका

दिनांक – 20/12/05

डा० (श्रीमती) शारदा अग्रवाल
रीडर एवं अध्यक्ष
इतिहास विभाग डी.वी.
स्नातकोत्तर महा विद्यालय
उरई

आभार

मैं अपनी पूज्य माता जी डा० (श्रीमती) कृष्णा रावत (भूतपूर्व प्रधानाचार्या, रा.बा.इ.कालेज, उरई) एवं अपने पूज्य पिताजी श्री के०के० रावत (भूतपूर्व स्पेशल मजिस्ट्रेट उरई) का आभारी हूँ जिनकी कृपा एवं आशीर्वाद से मुझे शोध कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हुयी।

इस प्रेरणा को ज्वलंत बनाये रखने में मेरे पूज्य मामा जी डा० श्री सत्य प्रकाश श्रीवास्तव (रीडर, बी.एड. विभाग, डी०वी० कालेज, उरई) एवं मेरे पूज्य बड़े भाइयों श्री संजीव रावत एवं श्री सौरभ रावत एवं अपनी पूज्या दोनों भाभियों डा०(श्रीमती) माधुरी रावत एवं श्रीमती नम्रता रावत का विशेष योगदान है जिनके आशीर्वाद से यह कार्य सम्पन्न करने की शक्ति मुझे प्राप्त हुयी।

मैं अपने दोनों भतीजों वैभव एवम् कान्हा रावत का भी आभारी हूँ जिनके स्नेहिल सहयोग के बिना यह शोध कार्य सम्भव नहीं था।

निर्देशिका डा०(श्रीमती) शारदा अग्रवाल रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग, डी०वी० कालेज उरई, का मैं हृदय से आभार प्रदर्शित करता हूँ कि जिन्होंने अपने व्यस्त दिवसों में भी मुझे समय निकाल-निकाल कर दिशा निर्देश प्रदान किये तथा इस कार्य को पूर्णता प्रदान करने का सम्बल प्रदान किया।

अन्त में गजानन कम्प्यूटर सर्विस के निदेशक श्री सूर्यकान्त द्विवेदी का भी आभारी हूँ जिन्होंने कड़े परिश्रम के साथ इस कार्य की पूर्णता में मेरा सहयोग प्रदान किया।

गौरव रावत

गौरव रावत

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

- विवाह का स्वरूप
- विवाह का अर्थ
- विवाह की अवधारणा
- विवाह की आवश्यकता
- विवाह के उद्देश्य

प्रस्तावना

विवाह एक ऐसी सामाजिक संस्था है जिसका अस्तित्व विश्व के प्रत्येक देशों, जातियों, धर्मो में पाया जाता है। विभिन्न देशों और कालों में विवाह की इस संस्था के स्वरूपों में भिन्नता रही है। इस भिन्नता का मूल कारण उस देश के वातावरण, सामाजिक और आर्थिक कारण हो सकते हैं।[1]

हमारे समाज में पुरूष की प्रधानता है। शतपथ ब्राहमण में लिखा है– 'पत्नी निश्चित ही पति का अर्धांशं है, पत्नी के आभाव में वह पूर्ण नहीं होता है, सन्तानोत्पत्ति करने से पुरूष के पुरूषत्व का मूल्यांकन किया जा सकता है। विवाह समझौता नहीं है बल्कि यह जन्म जन्मान्तर का साथ होता है। अतः हिन्दू विवाह का आधार धर्म है। विवाह प्राथमिक रूप से कर्तव्य उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिये होता है। हिन्दु विवाह जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे धर्म, नैतिकता एवं आचरण की प्रमाणिकता एवं सार्थकता मिलती है,विवाह जीवन की आधारशिला है।

हिन्दू विवाह के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अलग अलग परिभाषायें दी है –

आर. एन. शर्मा के अनुसार – हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है। जिससे धर्म, सन्तानोत्पत्ति तथा रति के भौतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक उद्देश्यों से एक स्त्री और पुरूष स्थायी सम्बन्ध में बंध जाते हैं।[2]

हिन्दू संस्कृति में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह ईश्वरीय इच्छा का प्रतीक है। यह सम्बन्ध सिर्फ क्षणिक स्वार्थो के लिये न हो कर जन्म जन्मान्तर के लिये होता है। हिन्दू विवाह के समय अनेक धार्मिक कार्यो एवं संस्कारों को सम्पादित किया जाता है। जो वैज्ञानिक एवं नैतिक मूल्यों पर आधारित है। मानव जीवन अनेक प्रकार के संस्कारों से परिपूर्ण है। जन्म और मृत्यु स्वयं में ही एक संस्कार माने जाते हैं। वैसे ही विवाह भी एक धार्मिक संस्कार है। ''भारतवर्ष में अर्धनारीश्वर की कल्पना की गई है। इसी आधार पर विवाह को भारतवर्ष में मात्र प्राणी शास्त्रीय आवश्यकता ही नहीं माना जाता है, अपितु इसे स्त्री और पुरूष की आत्मा का मिलन माना जाता है जो दोनो में एकाकार हो जाते हैं।

हिन्दू विवाह इसलिये धार्मिक संस्कार है, कि इसका उद्देश्य स्त्री और पुरूष को आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण कर देना है। जिसके परिणाम स्वरूप सुदृढ़ पारिवारिक जीवन का विकास होता है।

अंग्रेजी साहित्य के नाटककार विलियम शेक्सपियर ने भी विवाह को एक जीवन की सीढ़ी माना है। बिना विवाह के स्त्री और पुरूष एक दूसरे को समझने में असमर्थ है। विवाह के द्वारा मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

''हिन्दू विवाह को मानवीय विकास का साधन माना गया है। मनु ने कहा है जैसे सब प्राणी वायु के सहारे जीवित रहते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थाश्रम से ही जीवन प्राप्त करते हैं। विवाह के द्वारा व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है और चार पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति करने का प्रयत्न करता है। इन पुरूषार्थों की प्राप्ति पति और पत्नी दोनों के सामन्जस्य और सहयोग से होती है। धर्म शास्त्र में विवाह को एक संस्कार अर्थात् एक पवित्र अनुष्ठान कहा गया है। इसे लौकिक नहीं आध्यात्मिक संस्था माना गया है। इसको व्यवहारिक अनुबन्ध नहीं अपितु दो आत्माओं का पारस्परिक मिलन कहना वास्तविकता का अधिक द्योतक है। चाहें इसे लौकिक संस्था कहें या संस्कार, यह मानना पड़ेगा कि समाज में शान्तिपूर्ण व्यवस्था बनाये रखने का यह एक महत्वपूर्ण साधन होता है। अतः इसकी पावनता, पवित्रता, श्रेष्ठता और सार्थकता निर्विवाद है। गृहस्थाश्रम धर्म के पालनार्थ पत्नी की उपस्थिति वाँछनीय एवं अनिवार्य है।[3]

विवाहोपरान्त ही मनुष्य जीवन के विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश करता है। परिवार और वंश का उन्नयन एवं उत्थान इसी के माध्यम से होता है। इसके अन्तर्गत स्त्री और पुरूष का विकास और समाज का संयोजन इसी पर आधारित है। प्रत्येक समय में समाज ने विवाह की आवश्यकता स्वीकार की है, तथा इसे सुव्यवस्थित और सुसंस्कृत स्वरूप प्रदान करने का निरन्तर प्रयत्न किया है।

हिन्दू धर्म शास्त्रों में विवाह को धार्मिक संस्कार माना गया है। जिसमें धर्म और कार्य की प्रधानता और प्रमुखता, सामाजिकता और वैधानिकता, नैतिकता और धार्मिकता, त्याग और सार्थकता का संयोजन दिखाई पड़ता है। यज्ञ,होम, मंत्र, पाठ, देवताओं का आवाहन, वैदिक श्लोक,वैदिक ऋचायें, कुल देवी एवं कुलदेवताओं की पूजा क्षेत्रीय देवी देवताओं की पूजा एवं नदी, कुओं और वृक्षों की पूजा आदि के

द्वारा वैवाहिक क्रिया को सम्पन्न किया जाता है। जिसने हिन्दू विवाह को अत्यन्त पवित्र और धार्मिक स्वरूप प्रदान किया है।जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

अ) हिन्दू विवाह वैदिक मत्रों के उच्चारण के साथ सम्पन्न होता है।
ब) अग्नि को साक्षी बनाया जाता है ''वात्स्यायन ने कामसूत्र में लिखा है कि सब आचार्यों का मत है कि अग्नि के सम्मुख जो विवाह होता है, उसे तोड़ा नही जा सकता है।[4]
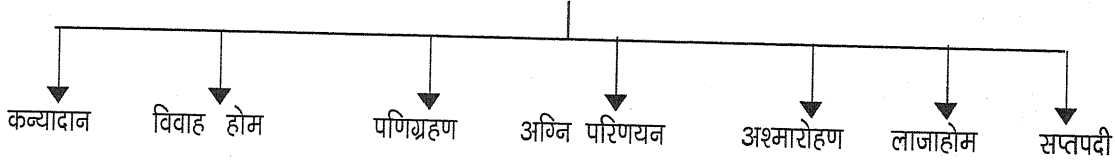
हिन्दु समाज में कोई भी धार्मिक कार्य बिना पत्नी के सम्पन्न नही होता, इसलिये वह धर्मपत्नी अथवा सहधार्मिणी कही जाती है। मनु के अनुसार केवल पुरूष कोई वस्तु नही, वह अपूर्ण है। स्त्री स्वदेह तथा सन्तान, ये तीनों मिलकर ही पुरूष (पूर्ण) होता है। ऐसा ब्राहमण कहते है। गृह की शोभा स्त्री मानी गई है।

स्त्री से परिवार और समाज बनता है। अतः विवाह गृहस्थ जीवन का मूल है और सभी आश्रम गृहस्थ जीवन पर निर्भर है। स्त्री के व्यक्तित्व एवं कृतितत्व का विकास, वंश का उत्थान एवं उन्नयन, कुटुम्ब का संयोजन विवाह से सम्भव है। विवाह ही स्त्री और पुरूष की पूर्णताः तथा उनकी सामाजिक और आध्यत्मिक अभिव्यंजना का आधार है।

धर्म शास्त्र में शरीर और आत्मा को परिमार्जित करने वाले संस्कारों में विवाह का प्रमुख स्थान है।

शास्त्रीय दृष्टि से संस्कार गृहसूत्रों की सीमा के अन्तर्गत आते है। विभिन्न गृह्यसूत्रों और स्मृति ग्रन्थों में तो 12 से लेकर 18 संस्कारों तक का उल्लेख मिलता है। किन्तु परवर्ती स्मृतियों में 16 संस्कारों का ही उल्लेख मिलता है। जो आज भी किसी न किसी रूप में प्रचलित है।

1. गर्भाधान संस्कार   2. पुसंवन संस्कार
3-सीमान्तोन्नयन संस्कार

ये तीनों ही संस्कार गर्भस्थ शिशु की रक्षा तथा कुशलता पूर्वक स्वस्थ बच्चे के जन्म की कामना से किये जाते है।

4. जातकर्म संस्कार
5. नामकरण संस्कार
6. निष्क्रमण संस्कार
7. अन्न प्राशन संस्कार
8. चूड़ाकर्म संस्कार
9. कर्ण वेध संस्कार

ये छैः संस्कार बच्चे की बाल्यावस्था में किये जाते है। इनका उद्देश्य स्वस्थ बचपन की कामना तथा भविष्य के लिये बच्चे की नींव दृढ़ करना होता है।

10. विद्यारम्भ संस्कार
11. उपनयन संस्कार
12. वेदारम्भ संस्कार
13. केशान्त अथवा गोदान्त संस्कार
14. समावर्तन संस्कार

ये पांचों संस्कार शैक्षणिक संस्कार है।

15. विवाह संस्कार शिक्षोपरान्त किया जाता है तथा
16. अन्त्येष्टि संस्कार मरणोपरान्त किया जाने वाला संस्कार है।

ये समस्त संस्कार सामाजिक मानवीय गुणों के विकास में सदियों और सहस्त्राब्दियों से महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर रहे है।

संस्कारों का सर्वाधिक लोकप्रिय प्रयोजन है मानवीय विश्वास की पूर्ति। श्रेष्ठ संस्कारों से सुसंस्कृत व्यक्ति सदाचरण करता हुआ जीवन में सफलता प्राप्त करता है तथा अमंगल प्रभावों को दूर करता है। सभी संस्कारों में अमांगलिक प्रभावों के निराकरण के लिये तथा अभीष्ट प्रभावों की सिद्धि के नाना प्रकार की स्तुतियाँ तथा जप दानादि का विधान है। भारतीय जन जीवन में यह दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर सर्वव्याप्त है। अतः उसे प्रसन्न रखना अत्यावश्यक है, यदि देवता प्रसन्न होंगे तब ही हम अपना अभीष्ट प्राप्त करने में सक्षम होंगे- यही संस्कारों का भौतिक प्रयोजन है। इसी प्रकार संस्कार आत्माभिव्यक्ति का साधन भी होते हैं। विशेष अवसरों पर मनुष्य हर्ष,शोक,दुःख आदि भावों को भी व्यक्त करता है। इन सबके साथ-साथ संस्कारों के गम्भीर सांस्कृतिक प्रयोजन भी है। विशेषकर आज की इस दौड़ भाग वाली व्यस्त दिनचर्या के चलते हुये,जहां नाते रिश्तेदारों से मिलना तो दूर की बात रही, एक ही छत के नीचे रहते हुये भी आपस में बात-चीत करना कठिन हो जाता है। इस दशा में संस्कारों का सांस्कृतिक महत्व और भी बढ़ जाता हैं। विभिन्न संस्कारों के अनुष्ठानों के अवसर

पर परिवार के लोग,निकट के सम्बंधी, मित्र सभी एकत्रित होते है, और कुछ समय एक साथ मिल बैठने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त होता है।

उपर्युक्त समस्त प्रयोजनों का समष्टिगत प्रभाव नैतिकता के विकास एवं व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है। इन संस्कारों का विधान विकास एवं योजना को यदि पूर्ण रूप से हृदयंगम किया जाय तो मानव का जीवन पूर्ण रूप से सुसंस्कृत बन सकता है। वस्तुतः संस्कार केवल बाहरी उपचार मात्र नहीं है। ये तो जीवन की आत्मवादी और भौतिक धारणाओं के बीच एक मध्य मार्ग का कार्य करते है। उन्हें परस्पर जोड़ने का कार्य करते हैं। यही वह मार्ग है जिससे क्रियाशील सांसारिक जीवन का समन्वय आध्यात्मिक तथ्यों के साथ स्थापित किया जा सकता है। इनके द्वारा आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों पर चढ़ते हुये जीवन के सर्वोच्च उद्देश्य 'मोक्ष' को प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि अन्ततोगत्वा तो मानव जीवन का लक्ष्य यही है।

पुरुष के लिये जो महिमा यज्ञोपवीत या उपनयन संस्कार की है, वही नारी के लिये विवाह की मानी गयी है। इसलिये पुत्र व पुत्री दोनों के विवाह पिता के अलंघनीय कर्तव्यों में है । ज्ञातव्य है कि पितृ ऋण से उऋण होने का उपाय सन्तानोत्पादन माना गया है। इस लिये भी ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना एक मानवध ार्म गिना जाता है। पिता का कर्तव्य है कि इस धर्म का पालन करने में अपनी सन्तान की सहायता करे।

विवाह का स्वरूप –

विवाह के स्वरूप के सम्बंध में कई पक्ष और दृष्टिकोण हैं। इन्हें मुख्य रूप से निम्नलिखित पक्षों में बाँटा जा सकता है।

क– धार्मिक पक्ष – इसके अनुसार विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है, मनुष्य को अपने धार्मिक कर्तव्य पूरा करने के लिये विवाह करना चाहिये। पहले यह वर्णन हो चुका है कि भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने विवाह का एक प्रयोजन विभिन्न प्रकार के धार्मिक कर्तव्यों का पालन करना बताया है। इस प्रकार धार्मिक संस्कार होने के कारण विवाह एक अविच्छेद संबंध होता है। अतः यह एक ऐसा अनुबन्ध नहीं है,जिसे दोनों पक्ष कुछ विशेष परिस्थतियों में तोड़ सकें।यह विवाह का अनुबन्धात्मक स्वरूप कहलाता है। हिन्दू विवाह अब तक धार्मिक बन्धन या अविच्छेद्य संस्कार रहा है,अनुबन्धात्मक संबंध नहीं है।

ख– सामाजिक पक्ष – इसका यह अभिप्राय है कि विवाह का उद्देश्य समाज का कल्याण,सन्तान की प्राप्ति,समाज के अस्तित्व को बनाये रखना तथा इसका संरक्षण करना है।

ग– नैतिक पक्ष – इसका यह अर्थ है कि समाज में नैतिकता को सुरक्षित रखने के लिये यह आवश्यक है कि सबको विवाह द्वारा वैधरीति से कामवासना की पूर्ति के साधन प्रस्तुत किये जाये ताकि समाज में नैतिक अराजकता और अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न न हो सके।

घ– वैयक्तिक पक्ष – इसके अनुसार विवाह का प्रधान उद्देश्य पति–पत्नी का एक दूसरे के लिये साथी और मित्र होना है। एक दूसरे के वैयक्तिक सुख–दुख में सहायक होना,एक दूसरे की पूर्णता को बढ़ाना समझा जाता है। शतपथ ब्राह्मण और वृहदारण्यक के मतानुसार विवाह मनुष्य के वैयक्तिक जीवन की अपूर्णता को दूर करने के लिये तथा उसे सुखी बनाने के लिये होता था। मध्य युग में यह वर–वधू के माता–पिता द्वारा दो परिवारों के बीच में तय किया जाने वाला संबंध मात्र था। बाल विवाह तथा परदे की प्रथा के कारण इसमें पति–पत्नी के वैयक्तिक संबंध का विकास बहुत कम होता था।

वैदिक आर्य जीवन के किसी भी अंश की सबल कल्पना नारी को विलग रखकर नहीं की जा सकती। इहलोक में तो वह गृहिणी है ही,परलोक की कल्पना भी नारी के बिना नहीं हो सकती। प्रत्येक देवता के साथ यदि उसे यज्ञ भाग लेना है तो उसकी सहचरी का आना आवश्यक है। यह अपवाद नहीं,नियम है। बिना पत्नी के वह यज्ञ नहीं कर सकते (उस समय के आर्य के लिये यज्ञ के बिना एक पग भी चलना असम्भव था) न देवता ही पत्नियों के यज्ञ में भाग ग्रहण कर सकते थे।

विवाह का प्रारम्भ प्रणय से होता है किन्तु मात्र प्रणय ही उसका लक्ष्य नहीं था। सार्वभौमिक उन्नति के लिये यह एक प्रकार की नर–नारी की साझेदारी थी। अकेला पुरूष उस समाज की दृष्टि में अपूर्ण था नारी ही उसको पूर्ण कर सकती थी। शिव अकेला शव है, शक्ति से ही वे शिव हो जाते हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि शिव को पार्वती के बिना,नल को दमयन्ती के बिना,सत्यवान को सावित्री के बिना और राम को सीता के बिना भारतीय परम्परा कभी नहीं स्मरण करती।

समाज के सम्भ्रान्त व्यक्तियों की,गुरूजनों की,कुटुम्बी सम्बन्धियों की, देवताओं की उपस्थिति इसीलिये धर्मानुष्ठान के अवसर पर आवश्यक मानी जाती है कि दोनों में से कोई इस पवित्र कर्तव्य बन्धन की उपेक्षा करे तो उसे रोकें और प्रताड़ित करें। पति–पत्नी इन सम्भ्रान्त व्यक्तियों के सम्मुख अपने निश्चय की,प्रतिज्ञा बन्धन की घोषणा करते हैं। यह प्रतिज्ञा समारोह ही विवाह संस्कार है।

स्वेचछामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो वभूव ह।
स्त्री रूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान्स्मृतः।।
(वशिष्ठ स्मृति)

परमात्मा ने सृष्टि सृजन की इच्छा की,उसने अपनी सत्ता को दक्षिण व वाम दो भागों में विभक्त कर दिया। दक्षिण भाग पुरूष है, वाम भाग नारी। हिन्दू दर्शन इस आख्यान के साथ प्रारम्भ से ही नारी को परमेश्वरी मानकर चलता है। इतनी उत्कृष्ट श्रद्धा नारी के प्रति शायद ही किसी देश,जाति और संस्कृति ने व्यक्त की है।

यहाँ नारी विहीन जीवन की कल्पना जंगली पशुओं से भरे भयंकर जंगल से की गयी है–

न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते ।
गृहं तु गृहणीहीनं कांतारादति रिच्यते।।

अर्थात् परिवार में जीवन और प्रसन्नता का स्त्रोत एकमात्र गृहिणी है। उसके बिना घर भयंकर जंगल के समान होता है।

विवाह का अर्थ :–

विवाह शब्द की व्युत्पत्ति वि उपसर्ग पूर्वक ''वहन करना'' अर्थ वाली 'वह' धातु के 'धञ' प्रत्यय लगाकर हुई है, जिसका अर्थ है– विशिष्ट प्रकार से वहन करना। समस्त संस्कारो में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह दो आत्माओ का पवित्र वंधन है। दो प्राणी अपने अलग–अलग अस्तित्वों को समाप्त कर एक सम्मिलित इकाई का निर्माण करते हैं। स्त्री और पुरुष दोनो में परमात्मा ने कुछ विशेषतायें और कुछ अपूर्णतायें रखी है। विवाह सम्मिलन से स्त्री पुरूष एक दूसरे की अपूर्णताओं को अपनी विशेषताओं से पूर्ण करते हैं। इससे मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व का विकास होता है। इसलिए विवाह को सामान्यतः मानव जीवन की एक आवश्यकता माना गया है। एक

दूसरे को अपनी योग्यताओं और भावनाओं का लाभ पहुंचाते हुये गाड़ी में लगे हुये दो पहियों की तरह प्रगति पथ पर अग्रसर होते जाना ही विवाह का उददेश्य है। वासना का दाम्पत्य जीवन में अत्यन्त तुच्छ और गौण स्थान है। प्रधानता दो आत्माओं के मिलने से उत्पन्न होने वाली उस महती शक्ति का निर्माण करना विवाह का उददेश्य है, जो दोनो के लौकिक एवं आध्यात्मिक जीवन के विकास में सहायक सिद्ध हो।[5]

विवाह का अभिप्राय एक ऐसी सामाजिक संस्था से है, जो स्त्री और पुरुष को कुछ विशेष नियम और विधि के अर्न्तगत यौन सम्बन्ध स्थापित करने की आज्ञा प्रदान करती है, और उनके विभिन्न अधिकारो को मान्यता प्रदान करती है। इस सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों, पाश्चात्य विद्धानों और दार्शनिकों ने विचार व्यक्त किये है कि भारतीय और पाश्चात्य मान्यताओं और मूल्यों में भारी अन्तर है।

होवेल ने विवाह को परिभाषित करते हुये लिखा है –

"विवाह सामाजिक आदर्श नियमो से गठित एक जाल है, जिसके द्वारा स्त्री –पुरूष के पारस्परिक सम्बन्ध परिभाषित और नियंत्रित होते है।"

वेस्टर मार्क के अनुसार :–

"विवाह एक या अधिक पुरूषो का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है, जो प्रथा या कानून द्वारा स्वीकृत होता है, तथा जिस संगठन में आने वाले दोनों पक्षों तथा उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार और कर्तव्यों का समावेश होता है।"[6]

इस परिभाषा से हिन्दू विवाह का सही अर्थ नहीं निकलता। इसमें हिन्दू विवाह की केवल दो विशेषतायें प्रदर्शित होती है। प्रथम प्रथाओं का महत्व एवं द्वितीय पति–पत्नी के अधिकार और कर्तव्य।

लेवी के शब्दो में :–

"विवाह उस स्पष्टतः स्वीकृत सम्बन्ध को प्रकट करता है जो कि इन्द्रिय सम्बन्धी सन्तोष के पश्चात भी रहता है, और परिवारिक जीवन की आधार शिला है।"

जिलिन और जिलिन के अनुसार –

"विवाह एक प्रजनन मूलक परिवार की स्थापना के लिये समाज स्वीकृत माध्यम है।"[7]

विवाह विषम लिंगियों का वह सम्बन्ध है जिसे प्रथा या कानून द्वारा मान्यता प्राप्त होती है, तथा इस बन्धन में बन्धने वाले स्त्री पुरूषों के एक दूसरे के प्रति कुछ पारस्परिक अधिकार एवं कर्तव्य भी होते हैं। ''हिन्दू विवाह की तुलना एक बाधा दौड़ से की जा सकती है। बाधा दौड़ का विजेता जिस प्रकार रास्ते की अनेक बाधाओं ,विषम स्थलों, गहरे गड्ढों और ऊंचे टीलों को पार कर अपने लक्ष्य स्थान पर पहुंचता है। उसी प्रकार हिन्दू कन्या के माता पिता पिण्ड, गोत्र जाति के कठोर प्रतिबन्धों का पालन करते हुये तथा अन्य अनेक बाधाओं का सामना करते हुये बड़ी कठिनता से वर का चुनाव कर पाते हैं।

हिन्दुओं में विवाह प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक संस्कार है। मोक्ष प्राप्ति हिन्दू के जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना जाता है। और इसकी प्राप्ति के लिये पुत्र–सन्तान का होना आवश्यक है। स्त्री का माँ बनना उसकी गरिमा और गौरव का प्रतीक है। पति और पत्नी में समायोजन और समता का भाव होना चाहिये। इसी बात को स्पष्ट करते हुये **मनुस्मृति में कहा गया है –**

''मातायें बनने के लिये स्त्रियों की उत्पत्ति हुयी और पिता बनने के लिये पुरूष की। इस लिये वेद आदेश देते हैं, कि पुरूष को समस्त धार्मिक, नैतिक और सामाजिक कार्य पत्नी के साथ सम्पन्न करना चाहिये।''

''हिन्दू विवाह में विशेष रूप से नैतिकता और अनुशासन को प्रमाणिक माना गया है।

अंग्रेजी निबन्धकार फ्रांसिस बेकन के अनुसार –

''पति हमेशा गम्भीर और सौम्य होना चाहिये।''[8]

विवाह के लिये संस्कृत साहित्य में अनेक शब्द प्रचलित हैं। जैसे उद्वाह, परिणय,उपयम और पाणिग्रहण आदि। उद्वाह का अर्थ है वधू को उसके पिता के घर से ले जाना, परिणय का अर्थ है चारों ओर घूमना। अर्थात् अग्नि की प्रदक्षिणा या परिक्रमा करना, उपयम का अर्थ है किसी को निकट लाकर अपना बनाना तथा पाणिग्रहण का अर्थ है वधू का हाथ ग्रहण करना।

विवाह की अवधारणा :–

विवाह मानव जीवन का वह अभिन्न व महत्वपूर्ण संस्कार है जो उसकी जीवन सरिता के प्रवाह को समाज व धर्म के द्वारा निश्चित उद्देश्यों की दिशा में अग्रसर करता है। विवाह के द्वारा ही परिवार, समाज व राष्ट्र की कल्पना सार्थक हुई है।

प्राचीन समय में जब मनुष्य जंगलों में रहता था, पशुवत व्यवहार करता था उस समय विवाह का प्रचलन मनुष्यों में नहीं था। मनुष्य पाशविक जीवन व्यतीत करता था। उसका उद्देश्य वातावरण में सामंजस्य स्थापित करते हुये स्वयं के अस्तित्व को बचाना था। अपने अस्तित्व को बचाने की लड़ाई में वह सफल भी रहा क्योंकि उस समय वह रिश्तों,नातों, भावनाओं की डोर में भले ही न बंधा हो किंतु उसमें कहीं न कहीं सामुदायिकता की प्रवृत्ति अवश्य थी। यही कारण था कि वह जंगलों में भी गुफाओं का निर्माण कर सामूहिक रूप से रहता था। पुरूष व स्त्री के संबंधों को वह कोई नाम न दे सका इसका कारण शायद उसकी अज्ञानता रही हो। किंतु उस समय भी स्त्री –पुरूष आपस में मिलकर रहते थे। सभी स्त्रियों के संबंध–समुदाय के सभी पुरूषों से हुआ करते थे। उनसे उत्पन्न संतानें समूह का ही अंग मानी जाती थीं और वे इसी तरह अपना जीवन यापन करते थे।

महाभारत में एक उपाख्यान आता है कि इस व्यवस्था की खराबियों को देखकर श्वेतकेतु नामक सामाजिक नेता ने विवाह प्रणाली की स्थापना की और तभी से वर्तमान कुटुम्ब–व्यवस्था का श्री गणेश हुआ।[9]

प्रत्येक पुरूष को विवाह, एक सुव्यवस्थित और सौम्य स्वरूप प्रदान करता है। विवाहित व्यक्ति विभिन्न धार्मिक आस्थाओं में विश्वास रखता है। प्रत्येक समाज को प्रशंसनीय और धार्मिक अनुष्ठानों से परिपूर्ण करने के लिये विवाह आवश्यक है। प्रत्येक स्त्री–पुरूष के लिए घर उसका मन्दिर होता है। पति के लिये पत्नी एक त्याग और प्रेरणा की मूर्ति है। प्रत्येक पत्नी पति के जीवन में निश्चिंतता और धार्मिक संस्कारों को समाहित करती है। इस कारण से सुन्दर एवं गुणवान स्त्री की आवश्यकता होती है। वह हमेशा पति को पवित्रता और अपवित्रता का ज्ञान कराती है। जीवन में उत्थान और पतन के

रास्ते पति और पत्नी के आपसी सामंजस्य से बनते है। याज्ञवल्क्य के अनुसार पति में निम्न गुणो का होना आवश्यक है – कुलशील, स्वस्थ्य शरीर, योग्य आयु, विद्या, धन, परिवार, आरोग्य, लोकप्रियता आदि। इसके अतिरिक्त उसको विवेकशील और प्रिय होना चाहिये। मानसिक सोच हमेशा विस्तृत और व्यापक हो और जीवन सम्माननीय और अनुशंसनीय हो।

विवाह के द्वारा पति–और–पत्नी के बीच कुछ अधिकार और कर्तव्य उत्पन्न हो जाते है। जिनसे मानवीय सोच और व्यवहार में मनोवैज्ञानिक और व्यवहारिक परिवर्तन आते है। व्यवहारिक प्रवृत्तियों और परिवर्तनों का प्रभाव होने वाले बच्चों पर पड़ता है।

"यहूदियो की एक धर्म संहिता "शूलह आन आरुख" के अनुसार विवाह से बचने वाला हत्यारे जैसा अपराधी समझा जाता था। क्योंकि वह "बढ़ो और फूलो–फलो" के ईश्वरीय आदेश को भंग करता था। 20 वर्ष से अधिक आयु के अविवाहित व्यक्ति को शादी के लिए बाध य किया जा सकता था।[10]

इस्लाम में भी विवाह एक दीवानी संविदा होते हुए अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य है। एक हदीस के अनुसार व्यक्ति शादी कर लेने पर, अपना आधा धर्म पूरा कर लेता है। विवाह देवताओं के साक्षी में अधिक गम्भीर और पवित्र विधि से होने वाला स्थायी आध्यात्मिक और धार्मिक सम्बन्ध माना जाता है।

स्त्री से परिवार का जन्म होता है। चरित्रवान पति–पत्नी से परिवार में दृढ़ता और निश्चिन्तता बनी रहती है। परिवार और समाज को प्रभावी बनाने के लिये स्त्री और पुरुष का विशेष योगदान है। विवाह धार्मिक समाजिक बन्धन के साथ–साथ आर्थिक बन्धन भी है। पति–पत्नी एक दूसरे के पूरक है।

प्राचीन यूनान और रोम में भी यही स्थिति थी जिस प्रकार से हिन्दू विवाह में विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार यूनानी और रोमन लोग भी विवाह में विश्वास करते थे।

म्यूरहैड के शब्दो में – हिन्दुओं और यूनानियों के समान आरम्भिक रोमन लोगों में विवाह एक धार्मिक कर्तव्य था, अपने पूर्वजों के तथा अपने प्रति यह एक ऋण था। इनका यह विश्वास था, कि परलोक में मृत

पूर्वजों का सुखी रहना इस बात पर अवलम्बित है कि उनका मृतक संस्कार यथा विधि हो। तथा उनकी आत्मा की शांति के लिये उन्हें अपने वंशजों की प्रार्थनायें, भोज तथा भेंटे बार बार यथा समय मिलती रहें। अतः उनका सर्वोपरि कर्तव्य यह था कि वे अपनी पारिवारिक पूजा के सातत्य को बनाये रखें।[11]

बाइबिल में भी यह वर्णन है कि भगवान ने कहा कि यह अच्छा नहीं है कि मनुष्य अकेला रहे। मै उसके लिए एक साथी बनाऊँगा। उसने आदम को गहरी नींद में सुलाकर उसकी पसली की हड्डी से हब्बा को बनाया।[12]

भारत के प्रत्येक धर्म में विवाह को जीवन का अवलम्ब माना है। बिना विवाह के मानवीय जीवन अपूर्ण और असभ्य माना जाता है। जीवन को सुखमय एवं विकासमय बनाने के लिये पुरूष को स्त्री की आवश्यकता होती है, और स्त्री को पुरष की।

विवाह के द्वारा स्त्री और पुरूष में मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों का बोध होता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में विवाह को आजीवन बनाये रखना एक कर्तव्य और उत्तरदायित्व माना गया है। वैदिक युग मे पति-पत्नी का आजीवन सम्बन्ध माना जाता था। मनु के शब्दो में, जो पति है वह पत्नी है, पत्नी-पति से किसी प्रकार पृथक नही हो सकती। दूसरे शब्दों मे कहा जाये तो हिन्दू विवाह अविच्छेद है। हिन्दू विवाह में अनेक प्रकार के नियमों तथा विधि-निषेधों का पालन किया जाता है।

विवाह की आवश्यकता –

प्रत्येक स्त्री पुरूष के जीवन में एक समय ऐसा आता है, जब उसे अपने जीवन साथी की तलाश करनी होती है। आयु, विचार, भावना, स्थति के अनुसार सद्गृहस्थ के लिये उचित जीवन साथी की तलाश होनी चाहिये। उचित शिक्षा एवं अध्यात्मिक विकास के पश्चात किया हुआ विवाह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ठीक है। आजन्म कौमार्य या ब्रम्हचर्य महान है। उनका फल अमित है, किन्तु साधारण स्त्री पुरूषों के लिये यह सम्भव नहीं है। इससे मन की अनेक कोमल भावनाओं का उचित विकास एवं परिष्कार नहीं हो पाता।[13]

दो हृदयों के पारस्परिक मिलन से जो मानसिक विकास सम्भव है, वह पुस्तकों के शुष्क अध्ययन से प्राप्त नही किया जा सकता है। विवाह काम वासना की तृप्ति का साधन मात्र है, ऐसा समझना भंयकर भूल है। वह तो दो आत्माओं के, दो मस्तिष्कों, दो हृदयों और साथ ही साथ दो शरीरों के विकास, एक दूसरे में लय होने का मार्ग है। विवाह का मर्म दो आत्माओं का स्वैरैक्य (Harmony) है, हृदयों का अनुष्ठान है, प्रेम सहानुभूति, कोमलता पवित्र, भावनाओं का विकास है। यदि हम चाहते हैं कि पुरूष प्रकृति तथा स्त्री प्रकृति का पूरा-पूरा विकास हो, हमारा व्यक्तित्व पूर्ण रूप से खिल सके तो हमें अनुकूल विचार, बुद्धि, शिक्षा एवं धर्म वाली सहधर्मणी चुननी चाहिये। उचित वय में विवाहित व्यक्ति आगे चल कर प्रायः सुशील, आज्ञाकारी, प्रसन्नचित, सरल, मिलनसार साफ सुथरे, शान्तिचित्त, वचन के पक्के, सहानुभूति पूर्ण, मधुर वाणी, आत्म विश्वासी और दीर्घजीवी पाये जाते हैं।

कुंवारा प्रायः अतृप्त वासना, स्वप्नदोष, लड़कपन, संकोची, और संकुचित दृष्टिकोण वाला रहता है। वह जिम्मेदारी नहीं लेना चाहता, सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी नहीं रखता, दूसरों के दुर्गुणों तथा न्यूनताओं में मजा लेता है। संघर्ष से दूर भागता है, वह विरोधी, वाचाल तथा ईर्ष्या से युक्त होता है। क्रोध, घृणा, भय, वासना और लज्जा से उसकी शान्ति सदैव भंग रहती है। अजन्म कौमार्य देश,धर्म और समाज के लिये हित कर नहीं है।

हिन्दू समाज में विवाह सुनियोजित और सुव्यवस्थित जीवन का प्रतीक है। धर्म के अनुपालन,याज्ञिक कार्य, सन्तानोत्पत्ति, वंशोत्थान तथा पितरों के लिये पिण्डदान आदि के निमित्त विवाह आवश्यक माना गया है। इस सम्बंध में प्राचीन हिन्दु ग्रन्थों में उदाहरण के साथ विवाह की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। महाभारत से विदित होता है कि जरत्कारू नामक एक निष्ठ ब्रह्मचारी ने आजीवन विवाह न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था परन्तु अपने पितरों की दुर्दशा देखकर उसे अपना प्रण तोड़ना पड़ा। उसके पितरों को महान कष्ट था। वे नरक का जीवन जी रहे थे। अतः उसने अपने पितरों की सद्गति के लिये नागराज वासुकि की बहन से विवाह किया एवं तत्सम्बंधी धार्मिक कृत्य किया।

शाकुन्तलम् से विदित होता है कि दुष्यन्त अपना कोई पुत्र न होने के कारण अपने जीवन को धिक्कारता है।

मार्कण्डेय पुराण में उल्लिखित है कि वीतराग रूचि विवाह को दुख और पाप का घर समझता था तथा गृहस्थ आश्रम को मोक्ष प्राप्ति में बाधक मानता था। किन्तु अन्ततोगत्वा उसने अपनी भूल स्वीकार की तथा पितरों की मुक्ति हेतु उसने वृद्धावस्था में मालिनी नामक कन्या से विवाह किया।

इसी प्रकार पृथुश्रवा भी वैराग्य और तापस जीवन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझता था किन्तु पितृ ऋण से मुक्ति पाने के लिये उसने विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया।

धर्म शास्त्रों में स्त्री को भी अविवाहित न रहने के निर्देश दिये गये है तथा उनका प्रधान कार्य सन्तानोत्पत्ति बताया गया है। बिना विवाह के स्त्रियों को सद्गति और मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता था, और न ही उन्हें स्वर्ग मिल सकता था। महाभारत में एक उदाहरण से पता चलता कि कुणिगर्ग ऋषि की मानसी कन्या ने अपना सारा यौवन तपस्या में लगा दिया अपने जैसा तपस्वी न मिलने पर उसने विवाह नहीं किया। अंत में उसने परलोक की कामना की किन्तु अविवाहित को परलोक वर्जित था। ऐसी स्थिति में उसने गालव के पुत्र शुंगवान को अपना आधा तप प्रदान कर विवाह किया और तत्पश्चात् स्वर्ग गयी।

ये साक्ष्य इस बात के प्रमाण है कि पुरूषों के समान ही स्त्रियों को भी विवाह करना अनिवार्य था। ऋषि ग्रन्थों में यह उल्लिखित है कि रजोदर्शन से पूर्व कन्या का विवाह कर देना चाहिये। हिन्दू समाज में अविवाहित स्त्री एवं पुरूष आदर की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे तथा उन्हें सच्चरित्र और आचारवान नहीं माना जाता था। विवाहित होना वयक्ति के चरित्र और आचरण का प्रबल प्रमाण माना जाता था, तथा उनका अविवाहित होना अविश्वास और शंका उत्पन्न करता था। इसलिये अविवाहित व्यक्ति पर विश्वास नहीं किया जाता था।

हर्ष ने बाण पर दुष्चरित्र होने का आरोप लगाया तो उसने अपने बचाव में अपने को विवाहित और गृहस्थ होने की दलील दी।

"दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि"[14]

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में किसी व्यक्ति की सच्चरित्रता उसके विवाह से आंकी जाती थी इसलिये विवाह अपेक्षित था।

विवाह के समय बोले जाने वाले मन्त्र, देवाह्वान, यज्ञ एवं अन्यान्य कर्मकाण्डों का एक वैज्ञानिक महत्व है। उनके कारण वर–वधू के अन्तः करणों में एक विशेष प्रकार की आर्द्रता आती है और वे अनायास ही एक–दूसरे में घुलने लगते हैं। प्राचीन काल के सुयोग्य कर्मकाण्डी पण्डित जिन विवाहों को पूर्ण–विधि व्यवस्था के साथ कराते थे उनमें आजीवन मधुरता बनी रहती थी और दुर्भाव के दोष नहीं आने पाते थे।

विवाह के उददेश्य :–

प्रत्येक हिन्दू के लिए विवाह का विशेष महत्व है, क्योंकि उसके साथ सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक एवं चारित्रिक उत्तरदायित्व जुड़े रहते है। विवाह के द्वारा वह अपने धर्म एवं कर्तव्य परायणता कर्तव्यनिष्ठा एवं धर्मनिष्ठा का निर्वाह कर सकता है। विवाह के द्वारा ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर देवऋण, ऋषित्रृण, पितृत्रृण, अतिथि त्रृण और भूत–ऋणों से मुक्ति और मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। विवाह के द्वारा ही मनुष्य अपने पुरूषार्थ की पूर्ति कर सकता है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष।

आचार्य सायण के अनुसार :–

"पुरूष द्वारा पुरूषार्थ की पूर्ति करना वास्तविक मानव का धर्म है"

धर्म का अर्थ त्याग एवं मानवता से प्रेम करना, अर्थ का मतलब उपार्जन करना तथा सृजनात्मक कार्य में अर्थ को खर्च करना एवं उससे सदुपयोगी कार्य करना है। यौन–इच्छाओं के द्वारा सन्तान को जन्म देना जिससे आपका परिवार बढ़ सके और अन्त में आध्यात्म का रास्ता अपनाकर मोक्ष की प्राप्ति करना है।

मनुष्य के दो रूप होते है, धर्मयोगी एवं कर्मयोगी। धर्मयोगी बनकर जीवन के वास्तविक, चारित्रिक एवं नैतिक मूल्यों की रक्षा करना एवं कर्मयोगी के रूप में जीवन में साधना करते हुये अपने कर्तव्यों को निभाना और स्वयं का आत्म–कल्याण एवं आत्मोत्थान करना है।

याज्ञवलक्य ने विवाह के दो उद्‌देश्य बताये जिसमें पुत्र की प्राप्ति द्वारा वंश का विस्तार एवं यज्ञो के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति करना। ऋग्वेद के अनुसार विवाह का उद्देश्य गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर मनुष्य को देवताओं के लिये यज्ञ तथा संतानोत्पत्ति करने के योग्य बनाना था।[15]

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार बिना पत्नी के पति पुत्र को जन्म नहीं दे सकता है।[16] मनुस्मृति के अनुसार विवाह के तीन उद्देश्य हैं ध ार्मिक कृत्य, संतानोत्पत्ति, कामेच्छा की पूर्ति।[17]

हिन्दू धर्मशास्त्रकारों के अनुसार यज्ञों का जीवन में विशेष महत्व है। आपस्तम्व धर्मसूत्र में भी विवाह के दो प्रारूपों का उल्लेख है।

(अ) धर्म का पालन करना

(ब) सन्तान की प्राप्ति

धर्मसूत्र के अनुसार दोनों उददेश्यों की पूर्ति हो जाने पर द्वितीय विवाह नहीं करना चाहिए। ऐसा करने वाले व्यक्ति के लिए आपस्तम्ब धर्मसूत्र में दण्ड की व्यवस्था है। जिसमें 6 मास तक गधे की खाल ओढ़कर भिक्षा माँगने का प्रावधान है।

धर्मशास्त्रों में हिन्दू–विवाह के तीन मुख्य उददेश्यों का वर्णन है, जो निम्न प्रकार से है। (अ) धर्म (ब) पुत्र की प्राप्ति (स) रति

(1) धार्मिक कार्यो को सम्पादित करना –

तैतरीय ब्राहमण के अनुसार पत्नी विहीन पुरूष यज्ञ करने का अधिकारी नहीं होता है।

यज्ञ का अर्थ उस कार्य से नहीं है जिसमें हवन सामग्री का प्रयोग कर एवं मंत्र का उच्चारण कर अग्नि को समर्पित किया जाता है। यज्ञ का अर्थ कोई भी कार्य शुद्ध मन से किया जाये वह यज्ञ हो सकता है, परन्तु उत्कृष्ट यज्ञ वह है जो परमार्थ एवं दूसरों के लिये किया जाए।

वेदों के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में जीवों के कल्याण हेतु देवताओं एवं त्रृषियों ने यज्ञ किये। अतः धार्मिक कर्तव्यो की पूर्ति के लिए पत्नी का होना आवश्यक है।

विवाह के अभाव में एक हिन्दू अपनी धार्मिक कर्तव्यनिष्ठा को सही रूप से पूर्ण नहीं कर सकता है। वैदिक काल में यज्ञ का महत्व और उसमे पति और पत्नी का सहयोग अनिवार्य था। परन्तु बिना पत्नी के कोई भी यज्ञ पूर्ण नही होता था। वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीकृत रामचरितमानस के अनुसार श्री रामचन्द्र जी ने जब अश्वमेघ यज्ञ किया तो सीताजी की प्रतिमा को स्थापित किया जिससे कि यज्ञ पूर्ण हो सके।

पति के जीवन में पत्नी की अनिवार्यता को देखते हुए याज्ञवलक्य का कथन है–

''दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवर्ती पतिः।
आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविल भयन्।।[18]

(याज्ञवल्क्य स्मृति)

अर्थात् पत्नी के मरने के बाद धार्मिक कार्यो को सम्पादित करने के लिये द्वितीय विवाह करना चाहिये।

त्रृग्वेद के अनुसार–

विवाह ही व्यक्ति को गृहस्थ एवं जिम्मेदार नागरिक बनाता है। मांगलिक कार्यो में पति–पत्नी एक दूसरे के पूरक और सहायक माने गये है।

शतपथ ब्राहमण के अनुसार :–

पत्नी पति के आधे भाग की पूरक है। ऐसी स्थिति में दोनों का आपस में सामंजस्य और सहयोग ही पूर्णता प्रदान करता है।

ऐतरेय ब्राहमण के अनुसार–

समस्त अनुष्ठानों एवं याज्ञिक कार्यो में पति–पत्नी का आपस में सहयोग एव सामंजस्य होना चाहिये। संस्कृत व्याकरणाचार्य पाणिनी के अनुसार यज्ञ में बैठने वाली स्त्री को पत्नी कहा जाता है।

''पत्युर्नोयज्ञसंयोगे।''

पदम् पुराण के अनुसार :–

जो व्यक्ति गुणवती पत्नी को त्याग कर धार्मिक कृत्य, अनुष्ठान एवं यज्ञ करता है, उसका समस्त धर्म निष्फल हो जाता है।

पति और पत्नी एक दूसरे के पूरक और सहयोगी है। पति का उत्तरदायित्व है पत्नी का सम्मान और आदर तथा पत्नी का उत्तरदायित्व है, पति का सहयोग एंव उसको सही मार्ग बतलाना।

विलियम शेक्सपियर के अनुसार –

Wife young age is bed fellow, middle age legal advisor and old age nurse.

आपस्तम्व धर्मसूत्र के अनुसार धर्म का पालन हिन्दू विवाह का पहला उद्देश्य है। यह तीन प्रकार से होता है। (अ) सभी धार्मिक कृत्यों में पत्नी का सहयोग एंव सामंजस्य (ब) गृहस्थ धर्म का पालन करना (स) पितृऋण को उतारना वाल्मीकि द्वारा रचित

''रामायण'' में जनक ने सीता को श्रीराम की सहधर्मचारी बतलाया है। शिव–पुराण में शिव व पार्वती का विवाह धर्म के पालन का प्रतीक है, जिसमें पति –पत्नी के उत्थान और उत्कर्ष के लिये रास्ते बतलाये हैं।

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार –

धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति के लिए पत्नी को पति का सहायक बताया गया है। इसके बिना पुरूषों द्वारा देवताओं एवं पूर्वजों की पूजा नहीं की जा सकती और उसके द्वारा किये गये धार्मिक कृत्य अपूर्ण माने जाते हैं। इसी प्रकार स्त्री भी बिना पति के स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकती।

ऋषि वशिष्ठ के अनुसार–

गृहस्थाश्रम सबसे उत्तम और अनुकरणीय है। महाभारत में नकुल से युधिष्ठर ने कहा है कि यदि गृहस्थाश्रम
को एक पलड़े में तथा अन्य तीन आश्रमों को दूसरे पलड़े में रखकर तौला जाये तो यह तीनों के बराबर होता है।

2– सन्तानोत्पत्ति :–

विवाह का द्वितीय उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति करना है। भारतीय संस्कृति में पुत्र अधिक श्रेष्ठ है। अधिकतर परिवारों में पुत्री की उपेक्षा है, एवं पुत्र का अधिक महत्व है। पुत्र के जन्म से एक मनुष्य समस्त संसार को जीत सकता है।[19] पिता के लिये पुत्र से अधिक आनन्द का श्रोत कुछ नहीं हो सकता है।[20] मनु के अनुसार यदि मनुष्य मोक्ष प्राप्त करना चाहता है तो उसे पुत्र प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये।[21] पुत्र का जन्म अत्यंत पवित्र कार्य है। सन्तान की आकांक्षा करना बहुत प्राचीन है।

त्रृग्वेद के अनुसार :–

पणिग्रहण उत्तम सन्तान के लिए है, सन्तान प्राप्ति के लिए मनुष्य अनेक धार्मिक कृत्य और अनुष्ठान सम्पन्न करता है।

मनु ने कहा है :–

पिता पुत्र से स्वर्ग को प्राप्त करता हैं, पौत्र से इस लोक में अनन्त काल तक निवास करता है। तथा प्रपौत्र से स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। पुत्र की सार्थकता इसी में है कि वह पिता को 'पुत्' नामक नरक में जाने से रोकता है। पुत्र के द्वारा पिता को दस अश्वमेघों के स्नान का फल प्राप्त होता है, और पितरों को कालान्तर में संतान से तर्पण तथा पिण्डदान मिलता है। मृत्यु के उपरान्त समस्त हिन्दू संस्कार

पुत्र के द्वारा ही पूरे किये जाते है। धर्मशास्त्राकारों ने पुत्रोत्पत्ति को धार्मिक क्रिया के अन्तर्गत रखा तथा इसकी महानता को सामाजिक आधार एवं परिवेश से जोड़कर उसकी कर्तव्यनिष्ठा को बताया।

परिवार की गतिशीलता, निरन्तरता एवं समाजिक विस्तार क्रमशः नयी पीढ़ी का आगमन तथा धार्मिक कृत्यों का अस्तित्व मूल रूप से संतानोत्पत्ति पर अधारित है।

ऋग्वेद में अग्नि देवता से प्रार्थना की गयी है। कि हमें ऐसा पुत्र दो जो अमरता की ओर ले जाये जिसमें वीरत्व के समस्त गुण हों, एवं परिवार और समाज का उत्थान करने वाला हो।

वेदों में एक उल्लेख अभिशाप स्वरूप है कि "हमारे शत्रु पुत्रहीन हो।"

शंख ने कहा है कि अग्निहोत्र, तीनों वेदों, सैकड़ों दक्षिणाओं वाले यज्ञ बड़े लड़के के पैदा होने पर प्राप्त होने वाले पुण्य का सोलहवां अंश भी नहीं है।

पांडु ने आदिपर्व में कहा है कि निःसंतान पुरूष के लिए स्वर्ग के द्वार बंद होते है।

3) रति :–

प्राचीन आर्यो ने रतिसुख को ब्रह्म साक्षात्कार के समान माना था। धर्म,अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरूषार्थो मे इसकी गणना की थी। वात्स्यायन ने कामसूत्र में बचपन में विद्याग्रहण, यौवन में काम सेवन तथा बुढ़ापे में धर्म और मोक्ष की प्राप्ति पर बल दिया है।

डा0 कपाड़िया के अनुसार :–

"यद्यपि काम अथवा यौन सम्बन्ध विवाह का उद्देश्य अवश्य हैं, किन्तु इसे तीसरा स्थान प्राप्त है। इससे स्पष्ट है कि यह विवाह का अत्यन्त कम वांछनीय उद्देश्य है।

कौटिल्य के अनुसार :–

धर्म और अर्थ से विरोध न रखने वालो को काम का सेवन करना चाहिये।

"धर्मार्था विरोधेन कामं सेवेत न निःसुखःस्यात्"[23]

मनु ने भी धर्म विरूद्ध, प्रकृति विरूद्ध एवं मानवता विरूद्ध काम को परित्याग करने की सलाह दी है।

4. वैयक्तिक जीवन का गठन :-

विवाह संस्कार के नियोजन से स्त्री और पुरूष का जीवन संगठित, सुगतिमय,एवं सुव्यवस्थित होता है। विवाह सम्पन्न कराते समय पति और पत्नी दोनों को उनके अधिकारों, उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों से परिचित कराया जाता है। ज़िससे वह अपने जीवन का विश्लेषण कर जीवन को सार्थक एवं गरिमामय बना सके। वैवाहिक कर्मकाण्डों एवं विधि-विधानों के निष्पादन से दोनों को जीवन एवं जगत की सत्यता,त्याग मानवता,एवं रिश्तों का आभास होता है। इस प्रकार से पति-पत्नी अपना मानसिक और मनोवैज्ञानिक सन्तुलन बनाये रखते है। हिन्दू परिवार अन्य समाजों के परिवारों से कहीं अधिक श्रेष्ठ नैतिकमय, धर्ममय, एवं चारित्रिकमय होता है।

5. पारिवारिक जीवन व उत्तरदायित्व :-

विवाह से दो व्यक्तियों में परिवार का निर्माण होता है। जिससे पारिवारिक जीवन का विकास होता है। पति-पत्नी दोनो साथ मिलकर अनेक कर्तव्यों का निर्वहन करते है।

6. मानसिक सन्तुलन बनाये रखना :-

मनुष्य के अन्तस्तल में अनेक वासनायें दबकर अन्तर्प्रदेश में छिप जाती है। इनसे समय-समय पर अनेक बेढंगे व्यवहार,गाली देने की प्रवृत्ति,कुशब्दों का उच्चारण,आत्महीनता की भावना, ग्रन्थि की उत्पत्ति,स्मरण-विस्मरण,पागलपन तथा प्रलाप हिस्टीरिया इत्यादि अनेक मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। मन की अनेक कोमल भावनायें विकसित नहीं हो पातीं, मनुष्य शिकायत करने की मनोवृत्ति का शिकार बना रहता है। दूसरे के प्रति वह अनुदार रहता है, उसकी कटु आलोचना किया करता है। अधिक उग्र या असंतोषी,नाराज प्रकृति,तेज स्वभाव का कारण वासनाओं का समुचित विकास एवं परिष्कार न होना है। इस प्रकार का जीवन गीता में निंद्य माना गया है।[24] विवाह का उद्देश्य यदि एक ओर धर्म पालन है तो दूसरी तरफ उससे मानसिक संतुष्टि भी प्राप्त होती है। विवाह इन सभी समस्याओं का समाधान है।

7. त्याग भावना का विकास :-

विवाहित व्यक्ति ही समाज में सम्मान एवं आदर प्राप्त करता है। क्योंकि वे लोग अपने धर्म और उत्तरदायित्व को पूर्ण करते हैं। अविवाहित व्यक्ति का समाज में उतना सम्मान नहीं होता है।

चार पुरूषार्थों की प्राप्ति की दृष्टि से हिन्दू विवाह आवश्यक है। पितृ ॠण से मुक्त हेतु पुत्र सन्तान को जन्म देना अनिवार्य है। इस प्रकार विवाह द्वारा व्यक्ति मृत व्यक्तियों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करने में सफल होता है।

विवाह के मानक

- विवाह का निर्धारण
- दाम्पत्य कर्त्तव्य व अधिकार
- वर में विवाह योग्य योग्यतायें
- वधू के लिये निर्धारित गुण
- वर–वधू के चुनाव की आधुनिक प्रवृतियां
- विवाह की आयु

विवाह के मानक

विवाह का निर्धारण –

वर वधू के चुनाव में समय समय पर सामाजिक परिवेश के अनुरूप और बदलती मान्यताओं के फलस्वरूप परिवर्तन आता रहा है। विवाह के लिये वर वधू का निर्धारण करते समय तात्कालिक सामाजिक परिवेश में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्राचीन समय में वर या वधू का चुनाव करते समय उसके कुल को अत्याधिक महत्व दिया जाता था। वर के लिये ब्रह्मचर्य व्रत विवाह के पूर्व उसका आभूषण था। विवाह के लिये कुलीन व ब्रह्मचर्य, वर को सर्वश्रेष्ठ माना जाता था।

वधू के लिये भी कुलीन होना आवश्यक गुण था। इसके अतिरिक्त नारी गुणों से सुशोभित होना उसके जीवन का अनिवार्य अंग था। प्राचीन धर्माचार्यो ने वर एवं वधू के गुणों की विवेचना विस्तृत रूप से की है। उन्होंने जहां एक ओर वर एवं वधू के लिये आवश्यक गुणों को इंगित किया है, वहीं मानव समाज का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट किया है कि यदि परिवार एवं कुल चरित्रहीन या रोगी आदि हो तो ऐसे परिवारों में विवाह सम्बन्ध नहीं करने चाहिये।

कालान्तर में विवाह सम्बन्धों के रूपों में कुरूपता आती गयी। बाल विवाह, अधिक आयु का वर और कम आयु की वधू, आदि विवाह के ऐसे रूप हैं जिनके कारण समाज में क्रान्ति पैदा हुयी और विवाह के नियमों में भारी परिवर्तन आया एवं अनेक नियमों एवं अधिनियमों द्वारा वर एवं वधू के विवाह की न्यूनतम आयु को निर्धारित किया गया।

वैदिक युग में विवाह का निर्धारण माता पिता व गुरूजनों के द्वारा योग्य कुल व परिवार देखकर कर दिया जाता था। घर के बड़े बुजुर्गों और गुरूजनों द्वारा निर्धारित यह सम्बन्ध जीवन भर चलते थे और व्यक्ति इनका निर्वाह सहर्ष करता था। विवाह सम्बन्धों में समाज व धर्म का दखल होने से इन सम्बन्धों की सुन्दरता बनी रहती थी। एक दूसरे की कमियों को स्वीकार करते हुये व्यक्ति इन सम्बन्धों का निर्वहन हर हाल में जीवन पर्यन्त करता था। इन सम्बन्धों की गरिमा को बनाये रखने के लिये समाज में धार्मिक नियमों का नियंत्रण था।

विवाह एक पवित्र बन्धन है। दो आत्माओं का मिलन है। इसके माध्यम से नर और नारी मिलकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं किसी भी समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिये तथा नैतिक मूल्यों को सुदृढ़ बनाने के लिये विवाह अनिवार्य माना जाता है। विवाह दाम्पत्य जीवन के शुरूआत की सार्वजनिक घोषणा है। स्वाभाविक है कि ऐसे प्रसंग पर सभी को प्रसन्नता हो, सभी कुटुम्बीजन सार्वजनिक रूप से अपने हर्ष की अभिव्यक्ति करें, इसीलिये हर्षोत्सव के रूप में एक संक्षिप्त सा समारोह हर जाति धर्म में ऐसे अवसरों पर मना लिया जाता है। विवाहोत्सव के तरीके अलग-अलग हो सकते है पर हर्षाभिव्यक्ति के रूप में यह प्रायः सभी देशों-वर्गों में मनाया जाता है।

हिन्दू विवाह की तुलना एक बाधा दौड़ (Hurdle Race) से की जा सकती है। बाधादौड़ का विजेता जिस प्रकार रास्ते की अनेक बाधाओं, विषम स्थलों,गहरे गड्ढों और ऊँचे टीलों को पारकर अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँचता है, उसी प्रकार हिन्दू कन्या के माता-पिता पिण्ड,गोत्र,जाति के कठोर प्रतिबन्धों का पालन करते हुये तथा अन्य अनेक बाधाओं का सामना करते हुये बड़ी कठिनता से वर का चुनाव कर पाते हैं।[25]

विवाह से पहले वर और वधू की अनेक दृष्टियों से जाँच की जाती है। उनके रूप,गुण,बुद्धि,कुल आदि अनेक योग्यताओं का विचार किया जाता है। कुछ विशेष रोग अथवा विकृतियां होने पर उन्हें विवाह के योग्य नहीं समझा जाता। वधू के लक्षणों की परीक्षा पर प्राचीन ग्रन्थों में बहुत बल दिया गया है। मध्यकाल से विवाह में ज्योतिष सम्बंधी विचार प्रबल होने लगे। वर-वधू का गोत्र और कुल देखने के साथ उनके ग्रहों और नक्षत्रों के गुणों,नाड़ी, कूट आदि का खूब विचार होने लगा।

इन शर्तो या प्रतिबन्धों के विषय में यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि इनका पालन करना अच्छा समझा जाता है, परन्तु इनको भंग करते हुये यदि कोई विवाह कर ले तो वह अवैध नहीं माना जाता है।

हिन्दू विवाहों में वर और वधू के चुनाव में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लड़के तो फिर भी कुछ देर तक अविवाहित

रह सकते हैं किन्तु कन्याओं का विवाह जल्द करना होता है। कन्या के पिता को वर ढूढ़ने और उसे सन्तुष्ट रखने में जितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं उन्हें भुक्त भोगी ही जानते हैं। एक ग्रामगीत में यह बिल्कुल ठीक कहा गया है कि जिस के घर में क्वांरी कन्या हो भला उसे कैसे नींद आ सकती है। इन कारणों से हिन्दू घरों में कन्या के जन्म पर बहुत दुःख मनाया जाता है।[26]

वर-वधू के निर्वाचन में एक निश्चित सीमा तक वर और कन्या का उत्तम कुल और परिवार का होना आवश्यक माना जाता है। दोनों पक्षों के लोग एक दूसरे के कुल की सूचना प्राप्त करके,गोत्र मिलाते हैं तथा कुल की उत्तमता एवं चारित्रिक मूल्यों का आंकलन एवं मूल्यांकन किया जाता है। जब दोनों पक्ष एक-दूसरे पक्ष के कुल और विशेषताओं के विषय में आश्वस्त तथा सन्तुष्ट हो जाते थे, तब विवाह की व्यवस्था की जाती थी। आश्वलायन का कथन है कि सर्वप्रथम मातृ और पितृ दोनों पक्षों से कुल की परीक्षा करनी चाहिये।

इस विषय में मनु के अनुसार उत्तम व्यक्ति को उत्तम व्यक्ति के साथ ही विवाह सम्बंध का आचरण करना चाहिये। कुल को उत्कर्ष तथा चरम बिन्दु की ओर ले जाने के लिये अधम एवं नीच कुलों का परित्याग करना चाहिये।

जैसा कि मनु ने कहा है कि –

"हीनजाति स्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः।
कुलान्येव नवन्त्याशु संसतानानि शूद्रताम्।।
शूद्रावेदी पतत्यत्रेरूथ्यतनस्य च ।
शौनकस्य सुतोत्पत्या तदपन्यतया भृगोः।।"[27]

जो द्विज मोहवश हीन जाति (शूद्र) की कन्या से विवाह करते हैं वे सन्तान रहित अपने वंश को शीघ्र शूद्र बना देते है। शूद्रा से विवाह करने वाला ब्राह्मण पतित होता है। यह अत्रि और उतथ्य पुत्र गौतम का मत है। शूद्रा से पुत्र उत्पन्न करने पर क्षत्रिय, क्षत्रियत्व से गिर जाता है, यह शौनक का मत है। इसी प्रकार शूद्रों से सन्तान होने से वैश्य भी पतित होता है। ऐसा भृगु का मत है।

मनु के अनुसार–

शूद्रा शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्रह्मण्यादेव हीयते।।
दैवपित्र्यातिथेयानि याति तत्प्रधानानि यस्य तु।
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न न स्वर्ग स गच्छति।।[28]

ब्राह्मण शूद्रा के साथ शयन करने से नरक को जाता है और उससे पुत्र उत्पन्न करके ब्राह्मणत्व से रहित हो जाता है। विवाहिता शूद्रा के हाथ का बनाया हुआ हव्य और कव्य, देवता–पितर गृहण नहीं करते। शूद्रा पति ऐसे आतिथ्य से स्वर्ग भी नहीं पाता। विष्णु–पुराण के अनुसार ब्राहमण का केवल कुल ही देखना चाहिये। समाज में कुल और कुटुम्ब का महत्व क्रमशः बढ़ता जा रहा है एवं कभी–कभी तो शास्त्राकारों ने कुल और वंश को विद्या और ज्ञान से भी बढ़कर उत्कृष्ट माना है।

ऋग्वैदिक काल में जाति प्रथा,वंश और कुल में रूढ़िवादिता उतनी अधिक नहीं थी जितनी कि सूत्रकाल में। कुल और वंश का जीव–वैज्ञानिक दृष्टि से भी अधिक महत्व है।

याज्ञवल्क्य का मत है –

"दशपुरूषै विरज्याता छेत्रियाणय माहकुलात्"

बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि सगोत्र विवाह समाज में होते थे। शाक्य अपने ही कुल में अपनी कन्याओं का विवाह करते थे। महावीर की पुत्री का विवाह भी उनकी बहन के पुत्र जामालि के साथ सम्पन्न हुआ था। समाज में प्रणय विवाहों तथा अन्तःवर्ण विवाहों के भी उल्लेख मिलते हैं। उदयन तथा वासवदत्ता का विवाह प्रणय विवाह का उदाहरण है। कौशल के राजा प्रसेनजित ने एक माली की कन्या से विवाह किया था। बौद्धसाहित्य से पता चलता है कि राजा तथा कुलीन वर्ग के लोग बहुर्विवाह करते थे। महावग्ग जातक में कहा गया है कि मगध नरेश विम्बसार की पाँच सौ रानियाँ थीं।[29]

"सूत्रकाल में कुल तथा वंश के सम्बंध में विभिन्न प्रकार की विचार धारायें थी, इसलिये अन्तर वर्ण विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। गृहसूत्र एवं धर्मसूत्रों में भी विभिन्न प्रकार के कुल और वंशों का वर्णन है। गोभिल गृहसूत्र में कुलीन एवं उत्तम चरित्र की पत्नी को श्रेष्ठ माना गया है। विवाह एक पवित्र बन्धन माना जाता था। वशिष्ठ

धर्मसूत्र में पुनर्विवाह का वर्णन है, परन्तु सूत्रकारों का नारी के प्रति दृष्टिकोण परिवर्ती स्मृतिकारों की अपेक्षा अधिक उदार था। वशिष्ठ किसी भी परिस्थति में पत्नी त्यागने की अनुमति नहीं देते थे। कुलीन एवं उत्तम चरित्र की पत्नी प्रत्येक परिस्थति में अपना जीवन उत्तम एवं चारित्रिक रखती थी।

''महाकाव्य काल में स्त्रियों की दशा वैदिक काल की अपेक्षा हीन थी। महिलायें शिक्षित, कुलीन और संस्कारवान् होती थी। उच्चवर्ग की महिलायें पर्याप्त शिक्षित होती थी। रामायण कालीन समाज में कौशल्या और तारा जैसी नारी उच्च एवं कुलीन संस्कार वाली थीं। इन नारियों को ''मंत्रविद्'' कहा गया है। महाभारत में द्रौपदी को ''पंडिता'' कहा गया है, क्योंकि वह कुलीन, संस्कारित एवं उत्तम चरित्र वाली महिला थी। द्रौपदी युधिष्ठिर तथा भीम से शास्त्रार्थ करती थी।

भारतीय नारी आज भी उस प्राचीन गुणों को धारण किये हुये है, जिनके द्वारा अतीतकाल में समाज के समग्र विकास में उसने अपना योगदान दिया था। यद्यपि यह तेजस्विता, कुलीनता एवं उत्तमता आज धूमिल पड़ गयी है तथापि यदि उस मलीन आवरण को हटा दिया जाये तो नारी सत्ता अपनी महत्ता को रामायण कालीन कुलीनता, महाभारत कालीन श्रेष्ठता के समान चरितार्थ कर सकती है।

प्राचीन धर्माचार्यों ने स्त्रियों को कुलीन एवं संस्कारवान् बनाने के लिये यज्ञोपवीत,गायत्री आराधना और वेदाध्ययन के स्पष्ट आदेश दिये हैं। विदुषी महिलाओं से उत्पन्न सन्तानों ने उच्च कुल और उत्तम वंश को अपनाकर ज्ञान और पांडित्य के मार्ग के द्वारा हमेशा समाज को मार्ग दर्शन दिया है।

''प्राग्मौर्ययुगीन समाज में क्षत्रिय वर्ण को ब्राह्मण की अपेक्षा सामाजिक व्यवस्था में उच्चतर स्थान प्राप्त था। ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों को भी अपनी रक्त शुद्धि पर गर्व था। कपिल वस्तु के शाक्य ने अपने कुल की कन्या का विवाह कौशल नरेश प्रसेनजित के साथ करने से इन्कार कर दिया तथा बदले में दासी की पुत्री को भेज दिया जो अन्तोगत्वा उनके विनाश का कारण सिद्ध हुआ था।[30]

अल्तेकर का मत है कि ''चन्द्रगुप्त प्रथम के अभ्युत्थान का मुख्य कारण लिच्छवियों के साथ विवाह सम्बन्ध थे।''

"चन्द्रगुप्त प्रथम के लिच्छवियों के साथ सम्बंध का ज्ञान प्रयाग प्रशस्ति और मुद्राओं दोनों से होता है। चन्द्रगुप्त का कुमारदेवी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र समुद्रगुप्त अपने को "लिच्छवि दौहित्र" कहलाने में गौरव का अनुभव करता था।[31]

गुप्त काल में कुल एवं वंश का बड़ा महत्व था। इसी प्रकार सुधाकर चट्टोपाध्याय ने प्रतिपादित किया है कि कुमार देवी राजकन्या न होकर सामान्य लिच्छवी कुमारी थी। कुमार देवी का पितृकुल समुद्रगुप्त के अधीनस्थ नेपाल में था। प्राचीनकाल में किसी जाति की प्रतिष्ठा उसकी प्राचीनता की अपेक्षा कुलीनता पर अधिक निर्भर रहती थी।

दाम्पत्य कर्तव्य व अधिकार –

विवाह संस्कार द्वारा पति–पत्नी एक सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं। पत्नी, पति के घर में चली जाती है और पति के साथ मिलकर गृहकार्यों का संचालन करती है। इस अवस्था में दोनों के एक–दूसरे के प्रति कुछ कर्तव्य और अधिकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि प्राचीन काल में हिन्दू समाज में कर्तव्यों पर अधिक बल दिया गया था और आजकल अधिकारों की जोरदार माँग की जाती है, अतः प्राचीन धर्मशास्त्रों में पति–पत्नी के और विशेषतः पत्नी के कर्तव्यों की चर्चा अधिक है और अधिकारों की कम। हिन्दू स्त्रियों की स्थिति गिरने से पूर्व वैदिक युग में पति–पत्नी के अधिकार तुल्य थे, विवाह के बाद नववधू घर की रानी हो जाती थी। किन्तु दूसरी से पांचवी सदी के बीच बनने वाली व्यासस्मृति ने उसे नौकरानी का दर्जा दिया।[32]

वैदिक युग में स्त्रियों को अधिक महत्ता मिली क्योंकि उस समय अनार्यों के साथ संघर्ष था, अतः राजनैतिक दृष्टि से सन्तानों की बहुत अधिक कामना की जाती थी। ऋग्वेद में 10 पुत्रों को पैदा करने की भावना प्रकट की गयी है। स्त्रियां पुरूषों के प्रत्येक कार्य में सहायक होने से समाज का अत्यन्त उपयोगी अंग थीं। सन्यास तथा त्यागवाद के विचारों के प्रबल न होने से विवाह एक आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। स्त्रियों के शिक्षित एवम् सुसंस्कृत होने के कारण

विवाह में उनकी इच्छा तथा अधिकारों का पूरा ध्यान रखा जाता था। इन कारणों से पति–पत्नी के अधिकारों में उस समय बड़ा वैषम्य नहीं था। पत्नी घर की रानी थी। और पति का कोई यज्ञ या धार्मिक कार्य पत्नी के बिना पूर्ण नहीं हो सकता था।[33]

हिन्दू शास्त्रों में पति की अपेक्षा पत्नी के कर्तव्यों पर अधिक बल दिया गया है, किन्तु महाभारत इसका अपवाद है। महाभारत में हमें पति–पत्नी के सम्बंधों के संधिकाल का धुंधला–सा चित्र मिलता है। इसमें यदि पति द्वारा पत्नी से कुछ कर्तव्यों की आशा की जाती है तो पत्नी, पति से भी उसके कर्तव्यों के पालन की मांग करती है।[34]

वर में विवाह योग्य– योग्यतायें –

कन्या के गृहस्थ जीवन की सफलता–विफलता बहुत कुछ पति की चारित्रिक, शारीरिक, नैतिक,मानसिक, मनोवैज्ञानिक एवं बौद्धिक स्थिति के ऊपर निर्भर करती है। यही कारण है कि आज की भांति प्राचीन काल में भी वर के बिषय में विभिन्न बातें स्थिर करने के पश्चात् ही संरक्षक उनके साथ अपनी कन्या का विवाह करते थे। ऋग्वेद में ऐसे उदाहरण मिलते है जब वर के असन्तोषजनक होने पर माता उसके साथ अपनी कन्या का विवाह करने में आपत्ति करती थी।

1. **ब्रह्मचर्य** :– वर की सबसे बड़ी योग्यता यह होनी चाहिये कि वह अखण्ड ब्रह्मचारी हो। बौधायन कन्या के पिता को स्पष्ट रूप से यह सलाह देता है कि वह उस व्यक्ति को अपनी कन्या का दान करे,जिसका ब्रह्मचर्य व्रत भंग न हुआ हो। मनु तथा याज्ञवल्क्य ने वर के अखण्ड ब्रह्मचर्य के नियम का वर्णन किया है। ब्रह्मचर्याश्रम विद्याध्ययन के लिये है, गृहस्थ के झंझट विद्याध्ययन में बाधक होते हैं। अतः विद्याध्ययन के बाद ही विवाह हो, इस नियम की रक्षा के लिये यह व्यवस्था की गयी थी कि वर का ब्रह्मचर्य अखण्डित होना चाहिये। किन्तु बाद में बाल विवाह का प्रचलन होने पर यह शर्त बिल्कुल व्यर्थ हो गयी।

"उत्तर वैदिक काल में बाल विवाह नहीं होते थे। बहुविवाह तथा विधवा विवाह प्रचलित थे। मैत्रायणी संहिता में मनु की दस पत्नियों का उल्लेख है" इस काल में ब्रह्मचर्य के गुणों में गिरावट आयी।

''सूत्रकाल में वर्ण व्यवस्था के साथ-साथ व्यक्ति के जीवन को नियमित किया गया तथा इस काल में अन्तःवर्ण विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

''महाकाव्य काल में बाल विवाह नहीं होते थे। समाज में बहु विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन था। उच्च कुल के लोग अनेक पत्नियाँ रखते थे। क्षत्रीय कुलों में विवाह स्वयंवर प्रथा द्वारा होते थे। ''नियोग की प्रथा प्रचलित थी। पति के नपुसंक तथा रूग्ण होने पर पत्नी पर-पुरूष के साथ सन्तान उत्पत्ति कर सकतीं थीं अर्थात् ब्रह्मचर्य में काफी गिरावट आयी।

मौर्य वंश में कोई भी व्यक्ति अपनी जाति के बाहर विवाह कर सकता था। प्रेम विवाह के लिये लड़कों की आयु 16 वर्ष तथा कन्याओं के लिये 12 वर्ष होती थी। वर का ब्रह्मचर्य जीवन बहुत ही कम समय में समाप्त हो जाता था।

2- कुल :- यम स्मृति में वर के लिये सात आवश्यक गुण बताये है

कुलं च शीलं च वपूर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथतां च।
एतान् गुणान्सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्।।

वर का कुल उत्तम होना चाहिये। यह समझा जाता है कि उत्तम कुल में जन्म लेने के कारण व्यक्ति वंश-परम्परा के द्वारा कुछ विशेषताओं को प्राप्त करता है और कुछ गुणों को वह अपने कुल के उत्कृष्ट एवं सभ्य वातावरण द्वारा उपार्जित करता है, अतः विवाह में कुलीनता के गुणों को बहुत महत्व दिया जाता है। आपस्तम्भ गृहसूत्र एक विशेष विधि के अनुसार वर-वधू के कुल की परीक्षा करने का विधान करता है। इस पूर्व निर्दिष्ट विधि का संकेत आपस्तम्भ गृहसूत्र की ओर है। यह राजसूय यज्ञ में चमस ग्रहण करने के योग्य ब्राह्मणों का वर्णन करती है इसके अनुसार वर के माता और पिता दोनों ओर से दस कुलों तक ऐसे होने चाहिये जिनमें विद्या, तप और उत्तम कर्म कराये जाते हों, अथवा दस पीढ़ी तक जो शुद्ध ब्राह्मण वंश के हों। कुछ लोगों की सम्मति में पिता की ओर से ही केवल ऐसी दस पीढ़ियों वाले हों। मनु ने उत्तम कुल में विवाह करने के लाभ और हीन कुल में विवाह करने की हानियों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है।

मनु के अनुसार –

उत्तमैत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह ।

निजीषु कुलमुत्कर्षम धमान धमांस्त्यजेत् ।।[35]

अर्थात् अपने वंश की उन्नति करने की इच्छा रखने वाला पुरूष अच्छे कुल शील विद्या आचार वालों के साथ (विवाहादि) संबंध करे, पर नीचों के साथ कभी संबंध न करे।

याज्ञवल्क्य ने भी महाकुल या श्रेष्ठ कुल पर बल दिया है। हारीत कुल पर बल देने के कारण को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि सन्तान माता पिता के गुणों वाली होती है। हर्षचरित में प्रभाकरवर्धन ने यशोवती से कहा है कि वर में अन्य गुण रहते हुये बुद्धिमान व्यक्ति कुल को ही देखते हैं। कुल का विचार करके ही उसने ''सकलभुवननमस्कृत'' मौखरीवंश के ग्रहवर्मा को अपनी कन्या देने का विचार किया था। कुल के विचार से, मध्य काल में बंगाल में कुलीन ब्राहमण प्रथा का जन्म हुआ और लोग अपने कौलीन्य की रक्षा के लिये एक ही कुलीन ब्राह्मण के साथ अनेक कन्याओं की शादी करने लगे।

शादी होने के पूर्व वर के कुल के सम्बंध में जानकारी की जाती थी। विवाह से पूर्व वर को देखने की प्रथा थी।''कुलीनता का इतना महत्व होते हुये भी मनु ने पुरूष को यह छूट दी है कि यदि स्त्री रत्न की तरह श्रेष्ठ हो तो उसे नीच कुल से भी ग्रहण कर लेना चाहिये।

मनु स्मृति के अनुसार–

श्रद्धधानः शुभां विद्यामाददोतावरादपि।

अन्त्यादापि परं धर्म स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।[36]

अर्थात् उत्तम विद्या को नीच से भी लेना चाहिये चाण्डाल से भी मोक्षधर्म की शिक्षा लेनी चाहिये और नीच कुल से भी मोक्षधर्म की शिक्षा लेनी चाहिये और नीच कुल से भी रत्न को लेना चाहिये।''

''अथर्ववेद में पुत्री के लिये सुवर प्राप्त करने हेतु कतिपय मन्त्रों का उपयोग किया गया है। अश्वलायन श्रौतसूत्र में कुल स्थिति पर सबसे अधिक बल दिया गया है, इसके अनुसार वर उस कुल का होना चाहिये जो माता और पिता दोनों पक्षों से विद्या,तप,पुण्य एवं रक्त शुद्धी के लिये दस पीढ़ियों से प्रतिष्ठित हो।

इस प्रकार की धारणा का मुख्य कारण यह था, कि लोगों में दृढ़ धारणा थी कि सन्तान कुल के गुण व अवगुण को अपनाती है।

मनु के अनुसार उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) अभिरूप (सुन्दर) और योग्य वर मिल जाये तो कन्या की अवस्था विवाह योग्य न होन पर भी विवाह कर देना चाहिये।

"उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्यादथाविधि।।[37]

अर्थात् स्वजातीय उत्तम कुल और सुन्दर वर प्राप्त हो जाये तो विवाह करने योग्य कन्या का विवाह यथाविधि कर देना चाहिये।

कुल(वंश), शील (उत्तम चरित्र), सुन्दरता,यश विद्वता, वित्त जैसे सात गुण वर के लिये आवश्यक माने गये हैं। धर्मशास्त्रों ने वर के लिये उसका अखण्ड ब्रह्मचारी होना भी एक गुण स्वीकार किया है। जो सम्भवतः उसे प्रधान गुण के रूप में था। उसे चरित्र गुण,वैशिष्टय का प्रमाण उसका ब्रह्मचर्य माना गया है।

3– **बुद्धि और गुण** :– वर बुद्धिमान और गुणवान होना चाहिये। आपस्तम्ब गृहसूत्र कहता है कि कन्या बुद्धिमान,वर को देनी चाहिये। बौधायन धर्म–सूत्र के अनुसार कन्या गुणवान वर को देनी चाहिये। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम में गुणवान वर को कन्या देने का समर्थन किया है। मनु कन्या गुणवान वर को देने पर बहुत बल देता है।

मनु के अनुसार –

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्।।[38]

अर्थात् ऋतुमती होते हुये भी कन्या का आजीवन पिता के घर में अविवाहित रखना श्रेष्ठ है, किंतु मूर्ख,गुणहीन वर के साथ कभी उसका ब्याह न करे।

"इसके अतिरिक्त वर के स्वभाव,स्वास्थ्य,धन,यश आदि अनेक गुणों को पुराने जमाने में देखा जाता था और आज भी देखा जाता है। यम ने कुल शील, शरीर,यश, विद्या , धन, माता–पिता तथा अन्य सम्बन्धियों का होना, ये सात मुख्य गुण बताये है। वृहद्पराशर में वर के आठ गुण

बताये है, किन्तु वे यम से भिन्न है। ये गुण इस प्रकार है–जाति,ज्ञान, यौवन,शक्ति,स्वास्थ्य,(मित्रादि की) सहायता,उच्च आकाक्षायें और धन।
4– **स्वास्थय** :– वर को तरूण और रोगमुक्त होने पर बहुत बल दिया गया है और यह स्वाभाविक भी है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर की योग्यताओं में आरोग्य होना आवश्यक बताया गया है। मनु ने विवाह में जिन दस कुलों का निषेध किया है उनमें अधिकांश विभिन्न रोगों से पीड़ित है। याज्ञवल्क्य भी संक्रामक संचारी रोग वाले महाकुल में विवाह की अनुमति नहीं देता है। कात्यायन उन्मत,कुष्ठी,नपुसंक,काने, अन्धे,मिरगी वाले वर को कन्या न देने का परामर्श देता है। विवाह के सम्बंध मे कुलशील,विद्या तथा स्वास्थय अधिक परीक्षणीय है।

मनु यह समझता था कि जिन कुलों में कुछ बीमारियाँ पायी जायें उनमें कभी सम्बंध नहीं करना चाहिये। मनु ने स्पष्ट रूप से सब लोगों को चेतावनी देते हुये कहा है कि रोग वाले दस प्रकार के कुलों में गौ,भेड़, बकरी, धन–धान्य से परिपूर्ण होने पर भी विवाह सम्बंध न करें।

मनु के अनुसार –

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधन्यातः।
स्त्रीसंबंधे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्।।
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छदो रोमशर्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपसमापिश्वित्रि कुष्ठिजानि च।।
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकांगीं न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न प्रिंगलाम्।।[39]

अर्थात् गाय, बैल, भेड़ और धन–धान्य से पूर्ण धनी होने पर भी नीचे लिखे कुलों में संबंध न करें। जो क्रियाहीन हो, जिनमें पुरूष संतति न होती हो, जो वेद के पठन–पाठन से रहित हों, जिनमें स्त्री पुरूष के शरीरों पर बहुत और लंबे केश हो, जिनमें अर्श बवासीर , क्षय (राजयक्ष्मा),मन्दाग्नि, मृगि, श्वेत दाग और कुष्ठ रोग जैसे रोग होते हैं। जिस कन्या के बाल भूरे हों, जिसमें अधिक अंग हों, (जैसे हाथ –पैर में अधिक अंगुलियां हों),जो बहुत बोलने वाली हो, जिसकी आंखें पीली हों, उसके साथ ब्याह न करे।

5- आयु - वर की अन्य योग्यताओं के परीक्षण के साथ उसकी आयु का भी परीक्षण होना आवश्यक हैं। लिंग पुराण को उद्दृत करते हुये वीर मित्रोदय का यह कथन है कि पहले वर की आयु का परीक्षण होना चाहिये। आयुहीन मनुष्य के अन्य लक्षणों का क्या लाभ है। सूत्रकाल में भी विवाह की आयु 25 वर्ष थी। गुप्त काल में विवाह की आयु 15-16 वर्ष निर्धारित की गयी थी।

6- पुसंत्व :- याज्ञवल्क्य ने वर की पुंसत्व परीक्षा पर अधिक बल दिया है। वर के पुंसत्व की जांच बलपूर्वक की जानी चाहिये (यत्नान् परीक्षितः पुस्तवे)।

विवाह से पूर्व वर की पुंसत्व परीक्षा का उद्देश्य यह था कि पति-पत्नी का दाम्पत्य जीवन सुखी रहे । वर के पुंसत्व से कुल अथवा वंश की अभिवृध्दि सम्भव थी। महाकाव्य काल में पुरूष नपुसंक होने पर स्त्री अन्य पुरूष से सन्तान पैदा कर सकती थी।

7- शारीरिक लक्षण :- वर में शारीरिक लक्षणों को भी देखना चाहिये। वीरमित्रोदय ने इन लक्षणों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। ये लक्षण शारीरिक स्वास्थ्य,सौभाग्य एवं आयु के सूचक होते हैं। उदाहरण जिनके दाँत,नख, केश,त्वचा, और अंगुलियों के पोर सूक्ष्म होते हैं, वह दीर्घजीवी माना गया है। माथा,कन्धा, नाक, छाती उन्नत या ऊँची उठी होनी चाहिये। कनिष्ठ अंगुली के नीचे से यदि अविच्छिन्न रेखा हथेली के मध्य में आती है तो 80 वर्ष की आयु होती है, और कनिष्ठा के पोर अनामिका के पोर से बढ़ जाये तो पुरूष 100 वर्ष तक जीने वाला होता है। यदि कनिष्ठा के तथा अनामिका के पोर बराबर होते हैं तो आयु 80 वर्ष की होती है। यदि बराबर न हो तो 70 वर्ष की, और पोर से आधी हो तो 60 वर्ष । किन्तु वर की अपेक्षा कन्या में इस प्रकार के लक्षण विशेष रूप से देखे जाते है।

वर के गुणों की जांच कई बार स्वयंवर में कोई शर्त रख कर की जाती है। राम और अर्जुन के बल की परीक्षा इसी प्रकार हुई थी। कई बार वर को अनेक प्रलोभन देकर उसके प्रेम की परीक्षा की जाती थी। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण अष्टावक्र की कथा है। अष्टावक्र ने वदान्य ऋषि की कन्या सुप्रभा का पाणिग्रहण करना चाहा। ऋषि ने उसे

उत्तर दिशा में भेजा जहां उसे अनेक सुन्दरियाँ मिलीं। वह उनके प्रलोभन से बचकर जब वापस लौट आया तभी वदान्य ने अष्टावक्र से अपनी कन्या का विवाह कराया।[40]

8- **वित्त समता** :- महाभारत में विवाह के सन्दर्भ में ऐसा उल्लेख है कि विवाह के समय वर व वधू पक्ष समान स्तर के हों गृहस्थ जीवन की सफलता के लिये यह आवश्यक था कि वर -वधू में वित्त की समता हो।

स्टर्नबैक ने विभिन्न स्मृतियों के आधार पर वर के निम्नलिखित गुण बताये हैं-

1. अपना ही वर्ण रखने वाले (सवर्ण,सदृश) कुल का होना,
2. धनी होना
3. मां-बाप तथा अन्य संरक्षक सम्बन्धियों का होना (सनाथता)
4. उत्तमचरित्र (शील) तथा शूर, उत्कृष्ट स्थिरमति, बुद्धिमान होना
5. विद्वान तथा पढ़ा लिखा (श्रोत्रिय,पंडित) होना,
6. सुन्दर (अभिरूप मनु 9/88) होना,
7. बड़े परिवार वाला होना।
8. उदार (दाता) तथा दयालु (दयासागर) होना।
9. आनन्दोपभोग का प्रेमी होना, जनप्रिय,शिष्ट होना।[41]

प्राचीन भारतीय धर्मसूत्राकारों ने वर के गुणों के अतिरिक्त उनके विभिन्न अवगुणों की भी चर्चा की है जिनके आधार पर उनके साथ कन्या का विवाह वर्जित बताया गया है।

वर के पागल होने को कात्यायन व नारद ने दोष माना है। पागलों को प्रायः सभी देशों में दीवानी अधिकारों से वंचित रखा जाता है। "इंग्लैण्ड में पागल के विवाह को अवैध समझा जाता है"

किन्तु वर्तमान समय में अदालतों ने हिन्दुओं में पागल के विवाह को अवैध नहीं माना"।

श्री गुरूदास बनर्जी ने अदालतों के निर्णय से बड़े पुष्ट प्रमाणों के आधार पर असहमति प्रकट की है। उनका कहना है कि विवाह में कन्या का दान किया जाता है। पागल व्यक्ति या जन्मजात मूर्ख व्यक्ति में जब बुद्धि का सर्वथा अभाव है तो उसका कन्यादान ग्रहण करना या

न करना कोई अन्तर नहीं रखता,इस अवस्था में इस विवाह को विवाह नहीं माना जा सकता।

मनु के अनुसार –

उन्मतं पतितं क्लीवमबीजं पापरोगिणम्।
न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम्।।[42]

अर्थात् यदि पागल,पतित–नपुसंक,अबीज या कुष्ठ रोग आदि पाप रोगों में युक्त पति की स्त्री सेवा न करे तो उसका त्याग भी न करे।

हिन्दू समाज में गूंगों,बहिरों,तथा असाध्य रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को भी विवाह का अधिकार है उनका विवाह अवैध नहीं समझा जाता।

नपुसंकता को नारद और कात्यायन दोनों ने वर का दोष माना है, किन्तु मनु और याज्ञवल्क्य की सम्मति ऐसी प्रतीत नहीं होती। नपुसंक व्यक्तियों के यदि अपने पुत्र नहीं होते थे तो वे नियोग से पुत्र उत्पन्न करवा सकते थे और ये पुत्र अन्य सभी प्रकार के पुत्रों की भाँति पिता की सम्पत्ति का हिस्सा लेते थे। मनु यद्यपि नपुसंक लोगों के विवाह पसन्द नहीं करता था तथापि यदि कभी उन्हें विवाह की इच्छा हो, उसी दशा में मनु उन्हें नियोग की अनुमति देता है। परन्तु वर्तमान समय में चिकित्सा विज्ञान ने परखनली शिशु की व्यवस्था कर दी है।

परिवेदन –

प्राचीन काल में बड़े भाई के विवाह से पहले छोटे भाई के विवाह या परिवेदन को महापाप समझा जाता था। अर्जुन ने द्रोपदी के साथ विवाह करने से इंकार किया था, क्योंकि उसके दोनों बड़े भाइयों, युधिष्ठिर और भीम के विवाह नहीं हुये थे। द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डवों का आयु के कम से विवाह हुआ। विवाह होने पर इसी नियम के कारण पाँच पाण्डव आयु के क्रम से पाँच दिनों में द्रोपदी के पास गये इसे शास्त्रीय परिभाषा में परिवेदन कहते हैं। गौ0धर्म सूत्र तथा आपस्तम्भ धर्मसूत्र बड़े भाई के विवाह से पहले अपना विवाह (परिवेदन) करने वाले छोटे भाई (परिवेत्ता) को श्राद्ध में बुलाने योग्य

नहीं समझते। विष्णु धर्म सूत्र परिवेदन की गणना उपपातकों में करता है।[43] वास्तव में परिवेदन में पाप का विचार बहुत प्राचीन है और तैतरीय ब्राह्मण में दी गयी एक कथा के अनुसार मनुष्यों में पापियों की एक क्रमबद्ध श्रृंखला है। इन पापियों में परिविति (अविवाहित बड़ा भाई) और परिवेत्ता (विवाहित छोटा भाई) की गणना की गयी है।[44] वशिष्ठ धर्मसूत्र में पापियों की गणना में परिवेत्ता और परिविति दोनों गिनाये गये है।

कुछ अवस्थाओं में सूत्रकार परिवेदन को पाप नहीं मानते और छोटे भाई को बड़े भाई से पहले विवाह की अनुमति प्रदान करते हैं। गौ०धर्मसूत्र कहता है कि यदि बड़ा भाई विदेश चला जाये तो छोटा 12 वर्ष प्रतीक्षा करके अग्न्याधान करे तथा कन्या के साथ विवाह करे। कुछ लोगों का मत है कि वह छः वर्ष ही प्रतीक्षा करे। हरिदत्त ने इस सूत्र पर वशिष्ठ का मत उद्धृत किया है कि 8,10 या 12 वर्ष प्रतीक्षा न करने वाला पापी होता है, 12 वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करना न्याथ्य है।[45]

अत्रिसंहिता बड़े भाई के नपुंसक,विदेशस्थ,पतित,संन्यासी और योग- शास्त्र का अभ्यासी होने पर परिवेदन में कोई दोष नहीं समझती। इतना ही नहीं,वह बड़े भाई के कुबड़े,बौने,नपुसंक,गर्हित,जड़, अन्धे,बहरे और गूंगे होने पर परिवेदन में कोई दोष नहीं देखती।[46]

वधू के लिये निर्धारित गुण :-

हिन्दु शास्त्रकारों ने वर की अपेक्षा वधू के गुणों का और चुनाव के ढंग का अधिक वर्णन किया है। यह स्वाभाविक है क्योंकि घर का सुख, समृद्धि और शांति पत्नी पर ही निर्भर करती है। पत्नी गृहस्थी का मूल आधार है। उसके अच्छा होने पर घर स्वर्ग हो जाता है,और बुरा होने पर नरक हो जाता है। वधू में गुणशील और सौन्दर्य उसके चुनाव के प्रमुख आधार है। बुद्धिमान, सुन्दर,सुशील,स्वस्थ्य,उत्कृष्ट विचार युक्त कन्या से विवाह करने का विधान मनु जैसे अनेक धर्मशास्त्रकारों ने किया है। सौन्दर्ययुक्त, शीलयुक्त सुलक्षणयुक्त, केश,नेत्र,दांत,स्वस्थ शरीरवाली कन्या से विवाह करना श्रेयस्कर माना गया है।

वधू का कुल अच्छा होना चाहिये, धन तथा रूप खूबसूरत होना चाहिये,वधू को संस्कारित व बुद्धिमती होना चाहिये। वधू में यदि इन सभी गुणों का समावेश हो तो यह अत्यन्त सौभाग्य की बात है।

प्राचीन भारत में विवाह कार्य के लिये कन्या की योग्यता पर बहुत अधिक विचार-विमर्श किया जाता था। सभी दृष्टियों से जब कन्या गुणवान होती थी तब विवाह निश्चित किया जाता था। साधारणतया कन्या में तीन प्रकार की योग्यतायें देखी जाती थी पहला शरीरगत,दूसरा बुद्धिगत और तीसरा आचरणगत। मिताक्षरा ने कन्या में इन तीन गुणों का होना आवश्यक माना है – वर से आयु में कम हो, पर –पुरूष गामी न हो, माँ बनने योग्य हो।

भारद्वाज गृहसूत्र ने इस पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। उनके अनुसार- ''यदि सब गुण न पाये जाये तो धन की उपेक्षा करे। धन के बाद रूप की उपेक्षा करे, किन्तु कुल और बुद्धि में किसे महत्व दे, इस बिषय में विद्वानों में मतभेद है।[47]

भारद्वाज का कथन है, कि कन्या के वित्त,रूप,प्रजा और बांधव इन चार गुणों पर विचार करना चाहिये।वित्त से तात्पर्य उसकी अथवा उसके परिवार की आर्थिक स्थिति से था। रूप से अर्थ था उसकी शारीरिक सुन्दरता। प्रजा से तात्पर्य था उसकी शिक्षा से तथा बांधव का अर्थ था सगे-सम्बन्धियों से। मनु ने विचार प्रकट किया है कि वह अतिरिक्त अंगों से रहित, सुन्दर नाम वाली, हंस और हाथी के सदृश गम्भीर चलने वाली, छोटे रोये, केश और दांत वाली तथा मृदंगी भी हो।

वधू को अहंकार-भावना नहीं रखनी चाहिये,बुरा और असत्य भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये। वधू को घर का सामान तथा भोजन को सदैव स्वच्छ एवं क्रम में रखना चाहिये। वधू को कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। वधू को आलस्य तथा सुस्ती नहीं दिखाना चाहिये बिना, विनोद अवसर के नहीं हँसना चाहिये, द्वार पर बैठकर व्यर्थ नहीं हँसना चाहिये तथा क्रीड़ा-उद्यान में व्यर्थ में नहीं जाना चाहिये।

कन्या उत्तम कुलवाली,माता-पिता युक्त, वर से तीन वर्ष कम आयु वाली होनी चाहिये। उचित आचरण करने वाली, धन-धान्य परिपूर्ण,स्नेह रखने वाली होनी चाहिये।

वात्स्यायन कन्या के सोलह दोषों को गिनाता हुआ कहता है कि ऐसी कन्याओं के साथ सम्बंध न करे जिनमें ये 16 बुराइयां है। ये बुराइयाँ वर के जीवन के लिये घातक एवं वर के परिवार को नष्ट करने वाली होती है। ये बुराइयाँ ससुराल पक्ष के लिये हानिकारक एवं वैमनस्यता का प्रतीक है।[48] ये सोलह बुराइयां निम्न प्रकार हैं–

1. बुरे नाम वाली कन्या
2. ऐसी कन्या जिसे छिपा कर रखा गया हो
3. वाग्दत्ता
4. भूरी या कपिला, यह पति को मारने वाली समझी जाती,
5. सफेद दागों वाली (पृषता),ऐसी कन्या के बारे में यह विचार था कि वह धन का नुकसान कराने वाली होती है
6. मर्दानी औरत (वृषभा)
7. झुके कन्धे वाली
8. असंहत जांघों वाली
9. बड़े माथे वाली
10. मृत पिता की क्रिया करने के कारण अशुद्ध
11. किसी दूसरे पुरूष द्वारा दूषित अथवा नाजायज सन्तान वाली
12. रजस्वला
13. गर्भवती
14. मित्र
15. जिसकी छोटी बहिन हो
16. जिसके हाथ पैरों से पसीना निकलता हो (वर्षकरी)।

कन्या के लक्षणों का विस्तृत ज्ञान वृहदसंहिता,तथा ज्योतिस्तत्व आदि ग्रन्थों से प्राप्त होता है। उदाहरण जिस कन्या के हाथ में कलाई से निकली रेखा मध्यमा उंगली तक चली गयी हो। वह कन्या भाग्यवती होती है, ऐसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये। स्त्री ललाट लम्बा होने से पता लगता है कि उसके देवर का नाश होगा उदर लम्बा होने से ससुर तथा नितम्ब दीर्घ होने से स्वामी का नाश होता है।[49]

मृत पिण्डों द्वारा लक्षण परीक्षा :–

गोभिल गृहसूत्र में लक्षणों की परीक्षा कुशल व्यक्ति से कराने का आदेश दिया गया है। कुशल व्यक्ति यदि सुलभ न हो तो उस दशा

में क्या किया जाये? गृहसूत्र सम्भवतः इन लक्षणों के गोरख धन्धे से बचने के के लिये उसके चुनाव का एक विचित्र किन्तु सुगम उपाय बताते हैं। इसके अनुसार विभिन्न स्थानों से लाये गये, मिट्टी के ढेलों से वधू के भविष्य की जानकारी की जाती है आश्वलायन गृहसूत्र ने कहा है कि मिट्टी के आठ पिण्ड बनाये जायें ये आठ पिण्ड विभिन्न स्थानों की मिट्टी से बनाये गये हों। पहला पिण्ड वर्ष में दो फसलें देने वाले क्षेत्र की मिट्टी से, दूसरा गौशाला से,तीसरा यज्ञवेदी से, चौथा कभी न सूखने वाले तालाब से, पाँचवाँ जुऐ के स्थान से, छठा चौराहे से, सातवां बंजर स्थान से और आठवां शमशान से मिट्टी लेकर बनाये जायें। इन पिण्डों पर ''ऋत मग्ने''का मंत्र पढ़ें। इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है- ऋत सृष्टि में सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ, ऋत में सत्य प्रतिष्ठित है। यह कुमारी जिसके लिये उत्पन्न हुई है उसे ग्रहण करे जो सत्य है वह दिखाई दे। उन पिण्डों पर यह मन्त्र पढ़कर वह कुमारी से कहता है कि वह उनमें से एक पिण्ड ग्रहण करे,वह जो पिण्ड चुनती है उससे उसकी परीक्षा हो जाती है और उसके भाग्य का पता लग जाता है। यदि उसने फसलें देने वाले खेत का पिण्ड चुना है तो उसके पुत्र प्रचुर अन्न वाले होंगे। यदि उसने गौशाला का पिण्ड चुना है तो वह खूब पशुओं वाली होगी। इसी तरह वेदी के पिण्ड से उसका ब्रह्म तेजयुक्त पुत्र, न सूखने वाले तालाब के पिण्ड से प्रत्येक वस्तु से युक्त होना जुए के स्थान वाले पिण्ड से जुआरी, चौराहे वाले पिण्ड से स्वैरिणी,बंजर से गरीब और शमशान वाले पिण्ड से उस कन्या के पतिधाती होने का पता लगता है।

''गोभिल गृहसूत्र में भी यही विधि बतायी गयी है अन्तर केवल इतना है कि उसके मत में इन आठ पिण्डों के अतिरिक्त सब पिण्डों से थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर नवां पिण्ड बनाना चाहिये। ''ऋतमग्ने प्रथमं''के मन्त्र से वह कुमारी कोई एक पिण्ड उठावे, यदि वह पहले चार पिण्डों में से किसी को उठाती है तो उसके साथ विवाह कर ले, कुछ लोगों के मत में मिश्रित पिण्ड उठाने पर भी उसके साथ विवाह किया जा सकता।

आपस्तम्भ गृहसूत्र में इस विधि का यह रूप दिया गया है कि पाँच पिण्डों को ऊपर से एक जैसा बनाये और उनके भीतर विभिन्न

वस्तुओं को छिपाकर रखे। पहले पिण्ड में नाना प्रकार के बीज, दूसरे में वेदी की धूल, तीसरे में खेत का ढेला,चौथे में गोबर और पाँचवें में शमशान का ढेला छिपाये। कन्या को इन पिण्डों में से किसी को स्पर्श करने को कहे। पहले चार पिण्डों का छूना ऋद्धि का सूचक है। यह एक प्रकार की लाटरी है।

कन्या की गुणपरीक्षा का सुगम उपाय –

कन्या के गुणों की यह पहचान भी बहुत जटिल है। आपस्तम्ब गृहसूत्र इस विषय में एक बहुत सरल नियम देता है। उसके अनुसार कुछ व्यक्तियों का मत है कि जिस कन्या में दिल और आँख लग जाए उसी कन्या से कल्याण प्राप्त होता है, उससे अन्य वस्तुओं की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। भारद्वाज गृहसूत्र इसी नियम को और भी अधिक महत्व देते हुये कहता है कि जिसमें मन और आँख लग गयी है उसमें ज्ञान या पिण्ड के गुण को नहीं ढूढंना चाहिए। वास्तव में कन्या वरण करने का इससे अधिक सरल उपाय कोई दूसरा नहीं हो सकता है।

गौतम धर्मसूत्र में वधू के अपनी जाति की होने तथा अक्षतयोनि होने पर बल दिया है। सजातीय विवाहों के प्रकरण में हम यह देख चुके है कि सजातीय विवाह का बन्धन कैसे प्रारम्भ हुआ और इसके अतिरिक्त शास्त्रों में कन्या का अक्षतयोनि होना भी अच्छा माना गया है। यह स्वाभाविक है कि पुरूष भुक्तपूर्वा कन्या को पसन्द न करें। इस नियम की एकांगी कठोरता ने हिन्दू समाज को बाद में बहुत हानि पहुँचायी। यदि पुरूष के लिये यह उपयुक्त था कि वह भुक्तपूर्वा (अन्यपूर्वा) से शादी न करे तो स्त्री को लिए यह भी उचित समझा जाना चाहिए था कि उसे विवाहित पुरूष से न ब्याहा जाय। किन्तु यह नहीं हुआ। 50–60 वर्ष के बूढ़े लोग पहली पत्नी या पत्नियों के मरने पर या उनके जीवित रहते हुए भी नयी–नयी अक्षतयोनि कन्याओं से शादी करते रहे और विधवाओं को विवाह के अधिकार से वंचित रखा गया।

परिवेदन –

परिवेदन का नियम भाइयों की तरह बहिनों पर भी लागू होता है। बड़ी–बहिन के अविवाहित रहते हुये छोटी बहिन की शादी नहीं

हो सकती। इस नियम को भंग करके शादी करने वाली छोटी बहिन 'अग्रे दिधिषू' कहलाती है और बड़ी बहिन को 'दिधिषू' कहते हैं। अग्रेदिधिषू का विवाह अत्यन्त प्राचीन काल से पाप माना जाता था। अग्रेदिधिषू तथा दिधिषू के पति को पापियों (एनस्वियों) में गिना गया है। वसिष्ठ धर्म सूत्र में कहा गया है कि अग्रे दिधिषू का पति 12 दिन का कृच्छ प्रायश्चित करे और अतिकृच्छ प्रायश्चितों का पालन करे। दोनों एक दूसरे के दोष के निवारण के लिये अपनी पत्नियां दें और फिर बड़े भाई की आज्ञा पाकर छोटा भाई उससे विवाह करे।[50]

वर्तमान युग में वर वधू के चुनाव में तथा इनके आवश्यक गुणों के स्वरूप में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे है। पहला परिवर्तन वर–वधू द्वारा अपना जीवन–साथी चुनने में स्वतंत्रता की माँग करना है। पहले वर–वधू का चुनाव माता–पिता किया करते एवं उनके गुणों का मूल्यांकन करना, हिन्दू समाज का सार्वभौम नियम था। किन्तु वर्तमान युग में शिक्षा के प्रसार से विवाह की आयु ऊँची उठने पर समानता और स्वतंत्रता की मान्यता से ओत–प्रोत हिन्दू युवक–युवतियाँ इस बात की मांग करने लगे हैं कि विवाह जैसे महत्वपूर्ण बिषयों के निर्धारण में उनकी सम्मति और सहमति जाननी चाहिये।

आधुनिक समय में वर और वधू एक दूसरे के गुणों को देखकर अपना निर्णय स्वयं कर लेते है। इस बिषय में हिन्दू समाज में होने वाला परिवर्तन एक हिन्दू नारी के निम्नलिखित कथन से स्पष्ट होगा–

''जब हमारा विवाह हुआ था तो मेरी आयु 10 वर्ष की तथा पति की आयु 19 वर्ष की थी मेरे माता–पिता ने विवाह से पूर्व मेरे पति को तथा उनके माता–पिता ने मुझे देखा था, किन्तु विवाह संस्कार से पूर्व हमने एक–दूसरे को नहीं देखा था। किन्तु पिछले कुछ वर्षो में एक नयी प्रथा का श्रीगणेश हुआ इसे लड़की देखना कहा जाता है। जब मेरी लड़की की शादी हुई तो उस समय यह प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। उसने तथा उसके भावी पति ने एक दूसरे को देखा, किन्तु एक दूसरे को बात करने की अनुमति नहीं दी थी, किन्तु जब मेरी पोती का विवाह हुआ तो लड़के–लड़की ने आपस में बातचीत की और विवाह से

पहले उन्हें घर के बाहर जाने की अनुमति भी दी गयी थी, यद्यपि उनका विवाह माता-पिता ने तय किया था।

वधू के गुण के सम्बंध में वैदिक-काल, उत्तर वैदिक-काल,सूत्रकाल ,महाकाव्य काल,आर्ययुगीन समाज एवं गुप्तकाल तक मूल्यांकन करके देखे तो बहुत से उतार-चढ़ाव देखे जा सकते है।

संस्कारित वधू एक मातृ-शक्ति के रूप में समाज में उभरती है। जो एक आदर्श नारी के रूप में भारतीय संस्कृति का पालन-पोषण करती है। गुणवान वधू हमेशा परिवार और समाज के आदर्शों का संरक्षण करती है। जिससे नयी पीढ़ी एक आदर्श समाज की स्थापना कर सके।

वधू में लज्जा,भय,संकोच,विनय,आत्म-श्रद्धा, निर्भयता, शुचिता,आत्म-सौन्दर्य के भाव भी होने चाहिये, जिससे वह एक आदर्श माता और आदर्श पत्नी के रूप में परिवार में स्थान प्राप्त कर सके।

वर-वधू के चुनाव की आधुनिक प्रवृतियां –

वर्तमान युग में वर-वधू के चुनाव में तथा इनके लिये आवश्यक गुणों के स्वरूप में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। पहला परिवर्तन वर-वधू द्वारा अपना जीवन साथी चुनने में स्वतंत्रता की माँग करना है। पहले वर-वधू का चुनाव माता-पिता किया करते थे। बाल विवाह के प्रचलन के बाद यह सर्वथा स्वाभाविक था, माता-पिता द्वारा निर्धारित विवाह (Arranged marriage) हिन्दू समाज का सार्वभौम नियम था। किन्तु वर्तमान युग में शिक्षा के प्रसार से विवाह की आयु ऊँची उठने पर समानता और स्वतंत्रता की भावना से ओतप्रोत हिन्दू युवक-युवतियां इस बात की माँग करने लगे हैं कि विवाह जैसे महत्वपूर्ण बिषयों के निर्धारण में उनकी सम्मति और सहमति ली जानी चाहिये।[51]

वर्तमान समय में बदलते सामाजिक परिवेश ने हमारे जीवन मूल्यों को प्रभावित किया है। प्राचीन समय से चले आ रहे धार्मिक संस्कारों और मान्यताओं में भारी बदलाव आया है। आज विवाह के लिये वर-वधू का चुनाव करने में भी यह बदलाव दृष्टिगोचर होता है।

आज भारत में भले ही शत–प्रतिशत साक्षरता न हो परंतु स्वतंत्रता के बाद हमारे देश में शिक्षा के प्रसार में तीव्रता आई है। शिक्षा ने हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है इससे विवाह–बंधन भी अछूता नहीं रहा। अब हमारे समाज में कन्याओं को हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता और न ही उनके जन्म पर दुःख प्रकट किया जाता है। हमारे समाजों में जहां शिक्षा अभाव है वहां कुरीतियां आज भी देखी जाती हैं।

शिक्षा के प्रसार व प्रभाव से आज लड़के और लड़कियों में भेदभाव नहीं किया जाता। शिक्षा के कारण लड़के और लड़कियों का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठा है। आज 'विवाह' जैसे विषय पर लड़कियां शरमाकर भाग नहीं जाती अपितु उसके निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

आज वर के योग्य कन्या ही नहीं अपितु कन्या के योग्य वर भी देखा जाता है। जहां एक ओर वर को अपने योग्य कन्या को चुनने का अधिकार प्राप्त है तो वहीं दूसरी ओर कन्या भी अपने योग्य वर के चुनाव के लिये स्वतंत्र है। शिक्षा और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण कन्या अब स्वयं के लिये वर चुनने में कोई संकोच नहीं करती। यह भी देखा गया है कि माता–पिता व परिवार की अनुमति न मिलने पर भी कन्या अपने योग्य वर को प्राप्त करने के लिये उनका मोह छोड़ देती है, और स्वयं विवाह कर लेती है।

प्राचीन समय में कन्यादान के समय कुछ गुप्तदान देने की प्रथा थी। आटे की लोई में छिपाकर कुछ धन कन्यादान के समय दिया ज़ाता था। कन्या के घर से विदा होते समय उसके अभिभावक किसी आवश्यकता के समय काम आने के लिये उपहार स्वरूप कुछ धन देते थे पर वह गुप्त होता था। दहेज का यही स्वरूप था। कन्या और अभिभावक के बीच यह एक निजी उपहार था। इसके बिषय में किसी को पूछने या प्रदर्शन की आवश्यक्ता नहीं थी।[52]

किंतु वर्तमान समय में दहेजरूपी दानव ने विवाह निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना शुरू कर दिया है। प्राचीन समय में जहां दहेज का रूप इतना सौम्य व शालीन था। वहीं वर्तमान समय में इसने

विकराल रूप धारण कर लिया है। आज विवाह के निर्धारण में अन्य योग्यताओं के अतिरिक्त दहेज पर भी ध्यान केंद्रित किया जाता है। कभी-कभी तो विवाह संबंध दहेज के कारण बनते और बिगड़ते हैं। आर्थिक अभाव के कारण योग्य कन्याओं को योग्य वर नहीं मिल पाते।

किंतु आज के शिक्षित युवावर्ग ने इस दहेज रूपी दानव के विरूद्ध अपनी आवाज बुलंद की है और विशेष रूप से इसमें कन्याओं का योगदान सराहनीय है।

आधुनिक समय में विवाह संबंधों के निर्धारण में यद्यपि वर-वधू की स्वीकृति अहम् हो गयी है पर फिर भी कुछ अपवादों को छोड़कर इन संबंधों के निर्धारण में आज भी माता-पिता की स्वीकृति अनिवार्य है। आज भी माता-पिता दूसरे पक्ष की जांच अपने मूल्यों के आधार पर करते हैं और तत्पश्चात् ही विवाह के लिये स्वीकृति प्रदान करते हैं। बालाकों के विवाह का निर्धारण माता-पिता का प्रमुख उत्तरदायित्व है। आज माता-पिता की सोच में इतना परिवर्तन अवश्य आया है कि वे अपने बालाकों की स्वीकृति लेने लगे हैं।

किंतु इसमें संदेह नहीं कि आज भी उन संबंधों की वैधानिकता एवम् स्थिरता बनी हुई है जो संबंध माता-पिता के द्वारा कराये जाते हैं। माता-पिता व समाज की स्वीकृति विवाह बंधन को और दृढ़ बनाती है तथा उसकी विश्वसनीयता बनी रहती है।

विवाह की आयु -

प्राचीन काल में वर तथा वधू के विवाह की आयु समय के अनुसार निर्धारित की गयी थी और समयानुसार इसमें परिवर्तन होता रहता था। जब भी वर वैदिक शिक्षा समाप्त कर लेता विवाह कर सकता था। साधारणतया विद्यार्थी प्राचीन भारत में उपनयन संस्कार के बाद 12 वर्ष शिक्षा प्राप्त करता था। ब्राह्मण का उपनयन संस्कार 8 वर्ष की अवस्था में होता था। इस प्रकार ब्राह्मण वर की आयु साधारणतया 20 वर्ष होती होगी। परन्तु यदि वह चाहता तो 24,36 या 48 वर्ष वैदिक शिक्षा प्राप्त करने में लगा सकता था और अजीवन अविवाहित भी रह सकता था। मनु के अनुसार वर की आयु 30 वर्ष

हो तो वह 12 वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है और 24 वर्ष का वर 8 वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है।[53] महाभारत में वर और कन्या की आयु क्रमशः 30 और 10 या 21 और 7 दी है। [54] वास्तव में पुरूष के लिये विवाह की अधिकतम आयु निर्दिष्ट न थी। महा भारत में एक कन्या के 60 वर्ष के अपने पति को न चाहने की उपमा मिलती है।[55] इससे प्रकट होता है कि प्राचीन काल में भी कुछ कन्यायें 60 वर्ष के पुरूष से भी विवाह करतीं थीं।

वैदिक युग में वर और वधू का विवाह यौवन प्राप्ति के बाद युवा होने पर ही किया जाता था। उस युग में जब स्त्री का मन पुत्र की अभिलाषा करने लगता था तथा उसका अंतस् काम-भावना से भी प्रेरित होने लगता था तब उसका विवाह किया जाता था। ऋग्वेद में स्पष्ट साक्ष्य मिलता है कि कन्याओं का विवाह बड़ी आयु में होता था। जब वे स्वयं अपने पति का चुनाव कर सकती थीं।[56] वैदिक युग के परवर्ती काल में प्रारम्भ की हुई स्वयंवर प्रथा उस युग के युवा विवाह की ओर संकेत स्पष्ट करती है। वधू जब अपने मन के अनुसार वर चुनती थी तो वह निश्चय ही युवती रही होगी तथा अपने मन और मस्तिष्क की इच्छा को अच्छी तरह समझ सकने में समर्थ रही होगी। रामायण में सीता का विवाह और महाभारत में द्रोपदी का विवाह युवती होने पर ही हुआ था। बारह वर्ष वाली कन्या को कौटिल्य ने व्यवहार प्राप्त माना है। गौतम और पाराशर ने बारह वर्ष की अवस्था में रजोदर्शन होने पर तुरन्त कन्यादान का विधान किया है। ऐसा न करने पर पिता को दोषी ही नहीं कहा गया है बल्कि नरकगामी भी कहा गया है। बौद्ध साहित्य में षोडशी कन्या का विवाह उत्तम माना गया है। काशिराज की कन्या जब सोलह वर्ष की आयु में प्रविष्ट हुयी तब वह शासक चिंतित होने लगा। सूत्रकाल में विवाह की आयु 25 वर्ष थी। मौर्य युग में भी विवाह की अवस्था कन्याओं के लिये प्रायः बारह वर्ष ही मानी गयी थी। जैसा कौटिल्य के कथन से स्पष्ट है किन्तु वर की अवस्था निश्चित रूप से अधिक होती थी। सम्राट अशोक की एक पत्नी विदिशा सेठ की कन्या थी, जिससे उसका प्रेम विवाह हुआ था। निश्चय ही वह तरूणी रही होगी। धर्म शास्त्रों का यह मत कि अगर युवा होने पर कन्या का विवाह उसका अभिभावक या पिता समय पर नहीं कर

पाता था तो वह स्वयं अपना वर चुन लेने के लिये स्वतंत्र थी। यदि कन्या युवती होने पर तीन वर्ष तक अविवाहित रह जाती थी तब उसे अपने मन से विवाह करने का अधिकार था। क्योंकि युवती कन्या को अपने घर में रखना निन्दनीय माना जाता था।

पाराशर के अनुसार उस कन्या के माता पिता तथा बड़े भाई नरक में जाते हैं जो रजस्वला होने पर भी अविवाहित रह जाती है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रजोदर्शन के पूर्व विवाह ईसा की छठीं शताब्दी के बाद आरम्भ हुआ। सातवीं से बारहवीं शताब्दी के साहित्य और कलात्मक कृतियों से स्पष्ट है कि जनता में इस काल में यौन जीवन में अश्लीन रूचि उत्पन्न हो गयी थी। सम्भव है कुछ माता पिताओं ने समाज के इस दुष्प्रभाव से अपनी पुत्रियों को बचाने के लिये उनका विवाह रजोदर्शन से पूर्व करना ही श्रेयस्कर समझा हो।इस काल में रजोदर्शन के पूर्व अपनी कन्या का वाग्दान करना उच्च सामाजिक स्थिति का लक्षण भी माना जाने लगा।[57]

गुप्त काल के आते आते वर और वधू के विवाह वय में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो पाया। धर्म शास्त्रों तथा स्मृतियों ने प्रायः कन्या का राजस्वला न होना ही माना है। तथा अभिमत व्यक्त किया है कि पिता के घर में राजस्वला होने वाली कन्या के कारण उसके माता पिता और ज्येष्ठ भाई को नरक जाना पड़ता है, साथ ही उसका विवाह करने वाला भी जाति बहिष्कृत होता है।

कामसूत्र के अनुसार दोनों की आयु में तीन–चार वर्ष का अन्तर रखा जाता था। वात्स्यायन ने काम सूत्र में लिखा है कि वधू वर से कम से कम तीन वर्ष छोटी होनी चाहिये। इससे यही संकेत मिलता है कि उसके समय में भी कुछ कन्याओं का विवाह अल्पायु में नहीं होता था। गन्धर्व विवाह राजस्वला होने के बाद ही होता था। वस्तुतः जब वर और वधू दोनों प्रणय और काम को समझ सकने में समर्थ होते थे,तभी गन्धर्व प्रणय सम्भव था। स्वेच्छा से एक–दूसरे को अंगीकार करना, एक दूसरे के स्पर्श से रोमांचित होना आदि वयस्क विवाह के प्रमाण है। ब्राह्मण, वेदाध्ययन समाप्त करने के बाद विवाह करता था और क्षत्रिय धनुर्वेद, रणकौशल आदि की शिक्षा

प्राप्त करने के बाद। वयस्क विवाह प्रथा साधारणतः समाज के उच्च परिवारों और राजघरानों से ही सम्बद्ध थी, जो पूर्व मध्य युग में भी चलती रही । सम्राट हर्ष की बहन राजश्री का विवाह युवती होने पर हुआ था किन्तु ऐसे उदाहरण अत्यन्त अल्प है। पूर्व मध्य युग में अल्प वय विवाह का प्रचलन जोर पकड़ चुका था।

गृहसूत्रों में चतुर्थी–कर्म का उल्लेख है इसका अर्थ है कि विवाह संस्कार के चौथे दिन पति पत्नी सहवास करते थे। यह तभी सम्भव है जबकि वर वधू दोनों ही युवा और युवती हों।[58] किन्तु कुछ गृहसूत्रों में वधू के नग्निका होने का उल्लेख मिलता है।[59] सम्भवतः नग्निका का अर्थ ऐसी कन्या से था जिसमें योवनारम्भ न हुआ हो। ऐसा प्रतीत होता है कि इन गृहसूत्रों की रचना बाद में हुयी। विवाह संस्कार के समय कन्या को जिन मंत्रों का उच्चारण करना होता था उनमें भी स्पष्ट है कि अधिकतर कन्याओं का विवाह इस काल में बड़ी अवस्था में होता था।

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार पिता को अपनी पुत्री का जब तक वह नग्निका हो उस पुरूष के साथ विवाह कर देना चाहिये जो ब्रह्मचारी सद्गुणों से युक्त हो और यदि सद्गुणों से युक्त न हो तो भी वयस्कता प्राप्त करने के बाद वह उस कन्या को अपने घर में न रखे।[60] व्याख्याकारों ने नग्निका का अर्थ रजोदर्शन से पूर्व किया है किन्तु गृहसूत्रों में विवाह से चौथे दिन विवाह की परिपूर्णता करने वाले कर्म का उल्लेख किया है। यह कर्म तभी सम्भव था जब कि कन्या वयस्क हो। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस समय के धर्मशास्त्रकार योवनारम्भ से पूर्व ही कन्याओं के विवाह के पक्ष में थे।

कन्याओं का विवाह अल्पायु में करने के पक्ष में सहायक होने वाले कई कारण थे। पहला कारण यह था कि धर्मशास्त्रकारों ने समाज का नैतिक स्तर ऊंचा उठाने के लिये इस बात पर बल दिया कि कन्या का अखण्ड कौमार्य हो। इस गुण पर बल देने का यह परिणाम हुआ कि हिन्दुओं में रजोदर्शन से पूर्व ही विवाह होने लगे। दूसरा कारण स्त्रियों का उपनयन संस्कार न होना था। जब उनको वैदिक शिक्षा से वंचित कर दिया गया। तो उनका उपनयन संस्कार बन्द हो गया और उनका विवाह संस्कार बहुत कम अवस्था में होने लगा। क्योंकि बिना

विवाह संस्कार हुये स्त्री को श्रेष्ठ नहीं समझा जाता था। तीसरा कारण यह था कि अनेक स्त्रियां बौद्ध एवं जैन संघों में प्रविष्ट तो हो जाती थीं किन्तु वे ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने में असमर्थ रहती थीं। चौथा कारण यह था कि समाज में यह भावना घर कर गयी थी कि विवाहित स्त्री की अपेक्षा अविवाहित स्त्री को अधिक जोखिम उठाना पड़ता है। इस लिये माता पिता कन्याओं का विवाह कम अवस्था में करने लगे।

महाकाव्य काल के पश्चात् मगध साम्राज्य का उत्कर्ष हुआ। बौद्ध साहित्य के अनुसार तीन वंश प्रमुख थे हर्यक वंश, शैशुनाग वंश तथा नंद वंश प्रमुख थे। इस समय इन वंशों में विवाह के समय वर और वधू की आयु में भिन्नता थी।

''वर–वधू मिलकर एक नये गृहस्थ का सूत्रपात करते है यह अति कठिन उत्तरदायित्व हैं।

पति–पत्नी के बीच पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करने के लिये दोनों का समुचित विकास आवश्यक है।

कम आयु में विवाह करने से वर–वधू के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और फिर आजीवन दुर्बलता एवं रूग्णता का अभिशाप सहन करना पड़ता है।

''बच्चों के बच्चे कैसे होंगे,इसका परीक्षण कच्चे बीज को जमीन में बोकर उनसे उगने वाले अंकुरों को देखकर लगाया जा सकता है। प्रौढ़ता आने से पूर्व जो लड़कियां बच्चे को जन्म देती है उनका स्वयं का स्वास्थ्य तो सदा सर्वदा के लिये नष्ट हो ही जाता है उनके बच्चे भी शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अविकसित ही बने रहते हैं।

अपने देश में दो प्रान्तों की स्थिति मूल्यांकन करने के योग्य बनी है। महाराष्ट्र और केरल में विवाह की आयु बहुत समय से ऊँची रही है। महाराष्ट्र में पिछली जनगणना के आधार पर शहरी लड़के 24. 4वर्ष की और देहाती लड़के 21.3 वर्ष की आयु में विवाह करते हैं। इसी प्रकार लड़कियों की औसत आयु 18.2 रही है।केरल इससे भी आगे रहा है। वहाँ शहरी क्षेत्रों के लड़के 27.8 और देहाती लड़के 26 वर्ष की आयु में विवाह का औसत प्रस्तुत करते रहे हैं। वहाँ शहरी लड़कियों की औसत विवाह आयु 20.7 और देहाती में 19.9 रही है।

चरित्र संकट उन क्षेत्रों की उपेक्षा कही कम है जिनमें कि विवाह में जल्दबाजी की कुरीति की जड़ जमा कर रखी है। बड़ी आयु में विवाह होने का परिणाम इन दोनों प्रान्तों की स्वास्थ्य एवं शिक्षा की स्थिति सन्तोषजनक होने के रूप में देखा जा सकता है। जबकि बाल–विवाह के लिये उतावले क्षेत्र इस दृष्टि से कहीं अधिक पिछड़े स्थिति में पाये जाते हैं।[61]

अध्याय – तृतीय

विवाह के प्रकार

- हिन्दू धर्मशास्त्रकारों द्वारा प्रतिपादित आठ प्रकार के विवाह
- बर्हिविवाह
- अन्तर्विवाह
- विवाह विभिन्न रूपों में

विवाह के प्रकार

हिन्दू विवाह एक अस्थायी बन्धन अथवा कानूनी समझौता नहीं है, बल्कि यह एक धार्मिक संस्कार है। हिन्दू विवाह एक अनिवार्य धार्मिक कृत्य है। हिन्दू विवाह में वर बधू पक्ष के अतिरिक्त एक तीसरा पक्ष भी सम्मलित है, जिसे हम अध्यात्मिक या दैवीय तत्व कहते हैं।[62]

हिन्दू विवाह की प्रकृति अन्य समाजों से बहुत भिन्न है। जहाँ एक ओर मुसलमानों में विवाह को एक ''समझौता'' और ईसाइयों में ''मित्रता'' पूर्ण बन्धन माना जाता है वहीं हिन्दू विवाह एक संस्कार है।

आठ प्रकार के विवाहों का क्रमिक विकास –

इन विवाहों में एक स्वाभाविक क्रमिक विकास दिखायी देता है। मानव गृह सूत्र दो ही प्रकार के विवाह मानता है – ब्राह्म और शौल्क। ब्राह्म विवाह में कन्या को अलंकृत करके दान किया जाता था और शौल्क में कन्या के पिता को कन्या का शुल्क या दाम देना पड़ता था। वशिष्ठ शौल्क विवाह को मानुष का नाम देता है। इस नाम से यह ज्ञात होता है कि यह विवाह उस समय साधारण जनता में बहुत प्रचलित था, किन्तु क्षत्रिय न तो ब्राह्मणों की भाँति कन्या को दान में लेना पसन्द करते थे और न ही उसे खरीदना चाहते थे। वे उसका अपहरण करना अधिक पसन्द करते थे। युद्ध में प्रायः उन्हें इस प्रकार के अवसर मिलते थे, अतः उनमें राक्षस या क्षात्र विवाह की परिपाटी प्रचलित थी। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों जातियों में ब्राह्म, राक्षस(क्षात्र) और आसुर (मानुष) विवाह बहुत पहले से प्रचलित थे। इनके अतिरिक्त प्रणय विवाहों को (Love Marriages) गान्धर्व विवाह कहा गया है। यह विवाह संभवतः गन्धर्व नामक जाति में प्रचलित होने से ऐसा कहलाया। श्री जायसवाल आदि विद्वानों की कल्पना है कि गान्धर्व विवाह के नाम के आधार पर बाद में यह अन्य विवाहों को जाति परक नाम दिये गये। ब्राह्म विवाह के बाद आर्ष, दैव और

प्राजापत्य नामक अवान्तर भेद उत्पन्न हुये और इस प्रकार हिन्दू शास्त्रों में आठ विवाहों का विकास हुआ।[63]

हिन्दू धर्म शास्त्राकारों द्वारा प्रतिपादित आठ प्रकार के विवाह

हिन्दू विवाह के स्वरूपों का सम्बन्ध विभिन्न हिन्दू धर्मशास्त्रों तथा मुख्य रूप से मनु स्मृति में बताये गये विवाह के आठ स्वरूपों से है। हिन्दू शास्त्रकार स्त्रियों की नैतिक प्रतिष्ठा के प्रति अत्यधिक जागरूक रहे हैं। इस लिये ऐसे सम्बन्धों का भी विवाह के रूप में मान्यता प्रदान की गयी जो कुटिल तरीके से स्थापित कर लिये गये हों।

विवाह संस्कार में पाणिगृहण, लाजा होम एवं सप्तपदी आदि में जो संदेश निहित है, उसका भारतीय संस्कृति और जीवन में बड़ा महत्व है। वैदिक ग्रन्थों में विवाह को भार्या प्राप्ति का कारण माना गया है। इसे "पाणिग्रहण" भी कहा गया है।

प्राचीन काल में आठ प्रकार के विवाह माने गये थे –

1. ब्राह्म विवाह, 2. दैव, 3. आर्ष विवाह, 4. प्राजापत्य, 5. आसुर विवाह, 6. गान्धर्व विवाह, 7. राक्षस विवाह, तथा 8. पैशाच विवाह

मनु के अनुसार –

ब्राह्मो दैवस्तथै वार्षः प्रजापत्यस्तथासुरः।
गन्धर्वोराक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।।
यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ।
तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान्।।[64]

याज्ञवल्क्य स्मृति में ब्रह्म विवाह को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

मनु के अनुसार –

षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान्।
विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्धाधर्म्यानराक्षासाम्।।
चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः।
राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः।।[65]

ब्राह्मणों के लिये छैः प्रकार के विवाह माने गये हैं–

1. ब्राह्म विवाह, 2. दैव, 3. आर्ष, 4. प्राजापत्य, 5. आसुर तथा 6. गान्धर्व

क्षत्रिय के लिये चार प्रकार के विवाह माने गये हैं –

1. आसुर 2.गान्धर्व 3. पैशाच और 4. राक्षस।

वैश्य और शूद्र के लिये तीन प्रकार के विवाह माने गये हैं –

1. आसुर, 2. गान्धर्व,तथा 3. पैशाच।

ब्राह्मण के लिये ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य ही प्रशंसनीय माने गये हैं।

क्षत्रिय के लिये 'राक्षस' विवाह तथा वैश्य और शूद्र के लिये 'आसुर' विवाह अच्छे माने गये हैं।

विवाहों की संरचनात्मक एवम् व्यवहारिक स्थिति अलग –अलग युगों में अलग–अलग रही है। वैदिक काल से लेकर गुप्त काल तक वैवाहिक पद्धतियों में काफी उतार–चढ़ाव देखने को मिलते हैं। वर्तमान समय में विवाह के स्वरूप में आधुनिकता के समावेश के कारण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। विवाह के सम्बंधों में धार्मिकता का स्थान भौतिकता ने ले लिया है। अधिकांशतः विवाहों में पैसे का प्रदर्शन दिखलाई पड़ता है। जिसका प्रभाव समाज में अन्य वर्गों पर भी पड़ता है।

प्राचीन समय में विवाह के कई नाम थे। आश्वालायन गृहसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र,मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति तथा महाभारत के आदि पर्व में विवाह के रूपों की संख्या आठ कही गयी है। आपस्तम्ब, धर्मसूत्र में विवाह के छः रूप बताये गये हैं। वशिष्ट धर्मसूत्र में ब्राह्म, दैव, आर्ष, गान्धर्व, छात्र और मानुष रूप बताये गये हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व में विवाह के पाँच रूप कहे गये है। आश्वलायन गृहसूत्र में प्राजापत्य को तीसरा और आर्ष को चौथा स्थान दिया गया है, जबकि मनु याज्ञवलक्य आर्ष को तीसरा और प्राजापत्य को चौथा स्थान देते हैं। मनु याज्ञवलक्य और दूसरे स्मृतिकार तथा अधिकांशतः गृहसूत्राकार राक्षस को सातवां और पैशाच को आठवां स्थान देते हैं, पर आश्वलायन गृहसूत्र में पैशाच को सातवां और राक्षस को आठवां स्थान प्राप्त हैं।

वशिष्ठ द्वारा राक्षस को क्षात्र और आसुर को मानुष नाम दिया गया है। याज्ञवल्क्य प्रजापत्य को काम विवाह भी कहते हैं–

स कायः पावयेत्तज्जः।[66]

विवाह के इन रूपों के नाम,क्रम आदि में भेद होने पर भी इनके लक्षणों के बिषय में समस्त धर्मसूत्राकारों का मत समान ही है।

विवाह के प्रकार :–

ब्राह्म विवाह :–

मनुस्मृति में ब्राह्म विवाह के सम्बंध में निम्नलिखित प्रकार के विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

> ''आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
> आहूय दानं कन्याया ब्रह्मो धर्मः प्रकीर्तितः।।''[67]

अर्थात् कन्या को वस्त्र, अलंकार आदि से सुसज्जित करके विद्वान शीलवान् वर को आमन्त्रित करके कन्यादान करने का नाम ब्रह्म–विवाह है। इस प्रकार के आवश्यक तीन तत्व है। माता–पिता की स्वीकृति, विवाह संस्कार का होना तथा दहेज का न देना । दहेज का न देना इसलिये क्योंकि कन्या को केवल एक वस्त्र से अलंकृत करके उसका दान दिया जाता है। आज दान में दी गयी वस्तु का दूसरा ही अर्थ लगाया जाता है लेकिन प्राचीन समय में दान का अर्थ था किसी सुपात्र को कोई वस्तु प्रदान करना। आज के अधिकांश हिन्दू विवाह इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

> ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शकत्यलंकृता।
> तज्ज पुनातयुभयतः पुरूषानेकविंशतिम्।।

(याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/58)

यह विवाह का सर्वोत्तम शुद्ध प्रकार है। यह ब्राह्मणों के योग्य है, इसलिये इसे ब्राह्म कहते हैं। इस विवाह में कन्या का पिता वेदज्ञ एवं सदाचारी विद्वानृ को स्वयं आमन्त्रित करके उसकी पूजा–अर्चना करके उसे वस्त्राभूषण से सुशोभित कन्या प्रदान करता है। याज्ञवलक्य के अनुसार ब्राह्म विवाह वह होता है, जिसमें वर को बुलाकर उसे यथाशक्ति आभूषणादि से अलंकृत कन्या प्रदान की जाती है, ऐसे विवाह से उत्पन्न पुत्र अपने पूर्व की दस,आगे आने वाली दस तथा अपनी पीढ़ी को मिलाकर इक्कीस पीढ़ियों को पवित्र करता है।[68]

2. **प्राजापत्य विवाह :-**

तुम दोनों मिलकर गृहस्थ धर्म का आचरण करना, यह कहकर वर की पूजा करके कन्यादान करना प्राजापत्य विवाह कहलाता है।

मनु के अनुसार -

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्रजापत्यो विधिः स्मृतः।।[69]

सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार वर और वधू दोनों को विवाह धर्म की वृद्धि के लिये हो, "यह कामना करना ही प्राजापत्य का आधार है।

इत्युक्त्वा चरतां धर्म सह या दीयतेर्थिने।
स कायः पावयेत्तज षट् षड्वंश्यान्सहात्मना।।[70]

(याज्ञवल्क्य स्मृति 1/60)

अर्थात् जिस विवाह में कन्या का पिता वर का पूजन करके, गृहस्थी का मिल जुलकर पालन करने के लिये, अपनी कन्या वर को प्रदान करता है, उसे प्राजापत्य विवाह कहते हैं। इससे उत्पन्न पुत्र अपनी पीढ़ी को और छः पहले तथा छः बाद की पीढ़ियों को पवित्र करता है।

ब्राह्म और प्राजापत्य विवाह में अधिक अन्तर नहीं है। ब्राह्म और प्राजापत्य एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। वशिष्ट और आपस्तम्ब दो प्रारम्भिक लेखक थे और दोनों ने प्राजापत्य का बिल्कुल उल्लेख नहीं किया है। सम्भवतः इस विवाह को बाद में सम्मलित किया गया है।

3. **आर्ष अथवा आर्य विवाह :-**

आर्ष विवाह के बारे में मनु ने लिखा है-

"एकं कोमिथुनं द्वे वा वरदादाय धर्मतः ।
कन्या प्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते।।"[71]

अर्थात् पवित्र धर्म के निर्वाह के उद्देश्य से, ऋषि से एक गाय और बैल अथवा दो घोड़े लेकर कन्या के माता-पिता उसे ऋषि की पत्नी के रूप में सौंप देते थे। ये वस्तुयें कन्या मूल्य नहीं थी बल्कि ऋषि के गृहस्थ जीवन बिताने के निश्चय की सूचक थीं।

डॉ० पी. के. आचार्य के अनुसार, आर्ष विवाह का सम्बंध ऋषि शब्द से है। बुद्धिमान और गुणवान सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से माता–पिता अपनी पुत्री का हाथ एक ऋषि के हाथ में देते थे और साथ ही साथ उसे गृहस्थ जीवन में बांधने के हेतु पशुधन भी।

आर्ष का शाब्दिक अर्थ 'ऋषि' है। ऋषि लोग प्रायः विवाह के प्रति उदासीन होते थे, लेकिन यदि किसी समय विवाह की इच्छा करे, तब उनके लिये आवश्यक है, आर्ष विवाह करना।

आदायार्षस्तु गोद्वयम्।
पुनात्युत्तरजश्च षट्।।

(याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/59)

यज्ञकार्य सम्पन्न करने के लिये वर से गायों का एक अथवा दो युगल प्राप्त करके कन्यादान करने की विधि आर्ष विवाह है।

यह विवाह ऋषि परम्परा के अनुरूप था अतः इसका नाम 'आर्ष' पड़ा। आर्ष विवाह से उत्पन्न पुत्र तीन पहले और तीन बाद की यानी छः पीढ़ियों को पवित्र करता है।[72]

4. दैव विवाह :–

प्राचीन समय में यज्ञों का विशेष महत्व था। इस दशा में कन्या के पिता द्वारा एक यज्ञ की व्यवस्था की जाती थी। जो व्यक्ति उस यज्ञ को समुचित ढंग से पूरा करता था, उसी को कन्या का दान कर दिया जाता था। इस प्रकार यज्ञ में कुशल किसी पुरोहित से अपनी कन्या का विवाह करना ही दैव–विवाह था।

दैव–विवाह के बारे में मनुस्मृति में लिखा है –

''यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलंकृत्य सतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते।।''[73]

अर्थात् दैव विवाह में वस्त्र और अलंकारों से सुसज्जित कन्या का दान उस यज्ञकर्ता 'ऋत्विज' को दिया जाता है जो किसी यज्ञशाला में किसी पुरोहित के कार्य को उचित रूप में पूरा करता है।

यज्ञस्थ ऋत्विजे देव।
चतुर्दश प्रथमजः। –

(यज्ञवल्क्य स्मृति 1/59)

याज्ञवल्क्य के अनुसार यज्ञादि कार्य देव सम्बन्धी हैं अतएव उन कार्यों से सम्पन्न होने के अवसर पर अपनी कन्या का विवाह ऋत्विज् से करना देव विवाह कहलाता है। दैव विवाह से उत्पन्न पुत्र (सात पहले के व सात बाद के इस प्रकार) 14 पीढ़ियों को पवित्र करता है।

अल्तेकर ने अपनी पुस्तक ''पोजीशन आफ वोमेन इन इंडिया'' में लिखा है, कि प्राचीन काल में गृहस्थ लोग समय-समय पर यज्ञ करवाते थे, और उस समय ऋषियों के साथ आये हुये नवयुवक पुरोहित बालकों में से किसी के साथ यजमान अपनी पुत्री का विवाह कर देता था। क्योंकि देवताओं की पूजा के समय इस प्रकार का विवाह सम्पन्न होता था। इसलिये इसे दैव-विवाह कहा गया। आपस्तम्ब के अनुसार, इस विवाह में पिता कन्या को किसी ऐसे ऋषि को प्रदान करता था जो श्रौत यज्ञ करा रहा होता था। परन्तु अल्तेकर के शब्दों में ''वैदिक यज्ञों के साथ-साथ देव विवाह भी लोप हो गये।

5. आसुर विवाह :-

मनु स्मृति के अनुसार -

''ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याःप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते।।''[74]

अर्थात् आसुर विवाह उसे कहते हैं, जब विवाह के लिये इच्छुक व्यक्ति अपनी इच्छा से कन्या के कुटुम्बियों या कन्या को धन देकर विवाह करता है। जब कन्या के माता-पिता, कन्या प्रदान करने के बदले वर से धन लेते हैं तो वह आसुर विवाह कहलाता है। वस्तुतः इस विवाह पद्धति में कन्या को खरीदा जाता है। यह एक प्रकार की आसुरी प्रवृति है इसलिये इसे आसुरी विवाह कहा जाता है। महाभारत काल में पाण्डु का माद्री के साथ विवाह इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

इसके अतिरिक्त इस काल में प्रायः धन से कन्या को खरीदकर और उसके सगे सम्बन्धियों को धन का प्रलोभन और लालच देकर विवाह सम्पन्न किया जाता था।

''आसुरो द्रविणादानाद्। ''[75]

(याज्ञवल्क्य स्मृति 1/61)

याज्ञवल्क्य के अनुसार जिस विवाह में वर पक्ष कन्या पक्ष को यथा शक्ति धन प्रदान करके,स्वेच्छा से कन्या से विवाह करता है, उसे आसुर विवाह कहते हैं।"[76]

आर्ष और आसुर विवाह में अन्तर यह था कि आर्ष विवाह में परम्परा के अनुसार गाय बैल का जोड़ा भेंट स्वरूप वर पक्ष द्वारा कन्या पक्ष को प्रदान किया जाता था। किन्तु असुर विवाह में कन्या पक्ष को मूल्य धन के रूप में चुकाया जाता था।

प्राचीन कालीन आसीरियों में विवाह प्रथा क्रय–विक्रय से सम्बन्धित थी अतः प्रतीत होता है कि आसुर शब्द किसी न किसी रूप में आसीरियों से सम्बद्ध है। यह विवाह प्रणाली समाज में अधिक प्रचलित न थी। वैदिक युग में यदा–कदा आसुर विवाह की घटनायें होती थीं। किन्तु आसुर–विवाह का सम्मान समाज में न के बराबर था। ऐसे व्यक्ति उस युग में विजामाता,अप्रतिष्ठित और पुण्य विक्रय कहे जाते थे। धर्मसूत्रों ने आसुर विवाह की प्रथा का विरोध कई प्रकार से किया। किन्तु विरोध करते हुये भी उन्होंने कई जगह दबे शब्दों में इसका समर्थन भी कर दिया। बौधायन धर्मसूत्र ने शुल्क देकर खरीदी हुई स्त्री को वैध पत्नी नहीं स्वीकार किया और उसे दासी का दर्जा दिया है। बौधायन जिसके सम्बन्ध में ऋग्वेद एवं बौधायन धर्मसूत्र में लिखा है कि जो अपनी कन्या को बेचता है वह अपने पुण्यों को बेचता है,लेकिन बौधायन यह स्वीकार करता है कि आसुर विवाह क्षत्रियों के लिये धर्मानुकूल है।

शबर और आपस्तम्ब ने स्त्रियों के क्रय–विक्रय की बात नहीं कही है। उनके अनुसार उपहार स्वरूप कन्या के पिता को गाय और रथ प्रदान करना कर्तव्य मात्र ही था।

भीष्म ने पाण्डु का दूसरा विवाह मद्र नरेश को अपार धन, कन्या के क्रय मूल्य के रूप में प्रदान करके किया था। कान्यकुब्ज नरेश गाधि की पुत्री सत्यवती को पत्नी के रूप में पाने के लिये ऋचीक भार्गव ने उसका मूल्य एक सहस्त्र श्यामवर्ण घोड़ों के रूप में चुकाया था।

"याज्ञवल्क्य तथा गौतम का विचार है, कि कन्या को खरीदना और बेंचना आसुरी प्रवृत्ति का प्रतीक है।"

बौद्ध साहित्य में भी आसुर विवाह के अनेक उदाहरण मिलते है। एक जातक कथा में लिखित है, उदयभद्रा नामक स्त्री ने कहा था कि मनुष्य अपार धन खर्च करके स्त्री को प्राप्त कर सकता है। ऐसी पत्नी के लिये बौद्ध साहित्य में ''कीतोधनेन बहुनः'' अथवा ''भरिया धनकीता'' जैसे शब्द प्रयुक्त हुये हैं। एक जातक में उल्लिखित है कि एक ब्रहमण को एक सहस्त्र कर्षापण के बदले एक कन्या प्राप्त हुयी।

कैकेयी को राजा दशरथ ने क्रय करके ही अपनी पत्नी बनाया था। प्राचीन साहित्य में ऐसे उदाहरण अत्यन्त अल्प ही हैं। साधारणतः ऐसी विवाह पद्धति हिन्दुओं में आदृत और सुरूचि पूर्ण नहीं मानी जाती थी, इसलिये समाज में इसका मान नहीं था। विवाह के निमित्त द्रव्य से क्रय की गयी ऐसी स्त्री को हिन्दू समाज में पत्नी नहीं कहा जाता था। महाभारत में स्वयं भीष्म ने इस विवाह की निन्दा की है –

''पंचानां तु त्रयो धर्म्याः द्वावधर्म्यौ युधिष्ठर।
पैशाचश्चासुरसचैव न कर्तव्यो कथंचन।।''[77]

कन्यादान करते हुये शूद्र को भी कन्या का मूल्य नहीं लेना चाहिये क्योंकि ऐसा करने वाला कन्या को बेचने वाला होता है।

पद्म पुराण में उल्लेख है कि, बुद्धिमान व्यक्ति कन्या विक्रय करने वालों का मुख न देखे यदि अज्ञान से उसका मुख देख लें तो सूर्य दर्शन कर उस पाप से मुक्ति प्राप्त करें। इस प्रकार के विवाह की प्रथा समाज में बहुत कम प्रचलित थी। जो प्रचलित भी थी उसका कारण बाल विवाह एवम् स्त्री शिक्षा की कमी थी। परिणाम स्वरूप धन के प्रलोभन में आकर कुछ अभिभावकों ने कन्यायों का विक्रय करना प्रारम्भ कर दिया था।

''डा0हाबिट ने आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों के सम्बंध में लिखा है कि उनमें यह आम रिवाज है कि माता-पिता अपने लड़कों के लिये दूसरे घरों से लड़कियां लाते है और उसके बदले अपनी लड़कियां विवाह के लिये भेज देते हैं, जहाँ से वे लड़कियां लाये थे। कई बार युवक यह अदला बदली स्वयं करते हैं। वे अपनी बहिन या

किसी दूसरी लड़की को दूसरे कुल में देकर वहां से अपने लिये पत्नी प्राप्त करते थे। आस्ट्रेलिया में अत्यन्त निर्धनता के कारण पत्नी पति के लिये मूल्यवान सम्पत्ति होती है। भारत में विनिमय और विक्रय द्वारा प्राप्त होने वाले विवाहों की कमी नहीं है। ''पंजाब में बट्टा-सट्टा इसी प्रथा का रूप है।''

6. गान्धर्व विवाह :-

गान्धर्व विवाह उस विवाह को कहते हैं, जिसमें पारस्परिक आसक्ति से आकर्षित होकर वर व कन्या दम्पत्ति बन जाते हैं। इस विवाह का दूसरा नाम 'प्रेम विवाह' भी है। यह विवाह कन्या व वर के पारस्परिक प्रेम का परिणाम है। इसके अन्तर्गत दोनों पक्ष अपनी माता-पिता की अनुमति के बिना ही एक-दूसरे को पति और पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। इसके बाद धार्मिक कृत्यों के करने पर ही ऐसा विवाह समाज द्वारा मान्य होता है। ऐसे विवाह में प्रेमी और प्रेमिका के बीच शारीरिक सम्बंध शादी से पहले स्थापित हो जाते हैं। बौधायन ने ऐसे विवाह को सर्वोत्तम माना है। क्योंकि इसमें कन्या व वर दोनों को ही इच्छानुसार जीवन साथी प्राप्त हो जाता है।

इसी कारण कुछ गृहसूत्रों में ऐसे विवाहों को सुखी पारिवारिक जीवन के लिये अधिक महत्वपूर्ण बताया है।

गान्धर्वः समयान्मिथः ।

(याज्ञवल्क्य स्मृति 1/61)

याज्ञवल्क्य के अनुसार गान्धर्व विवाह उसे कहते हैं, जिसमें स्त्री-पुरूष पारस्परिक प्रणय के वशीभूत होकर स्वेच्छा से मिलते हैं। परस्पर प्रेम होने पर जो विवाह होता है, उसे गान्धर्व विवाह कहते हैं।[78]

मनु स्मृति के अनुसार -

इच्छयायोन्यसंयोगः कन्यायाश्चः वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः।।[79]

इस प्रकार के विवाह में पुरूष और स्त्री दोनों अपनी इच्छा के अनुसार पति और पत्नी चुन लेते हैं। और पति पत्नी के रूप में रहने लगते हैं, और बाद में अपने परिवार और समाज से उसकी स्वीकृति लेते हैं।

सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार अनियम,असमय किसी कारण से दोनों की इच्छा पूर्वक वर कन्या का परस्पर सहयोग होना गान्धर्व विवाह है। प्राचीन काल में गान्धर्व नाम की एक जाति थी जो अत्यन्त कामुक थी। उसके लिये कहा गया है– 'स्त्रीकामाः वे गन्धर्वाः'' अर्थात् स्त्री की कामना गान्धर्व लोगों की विशेषता है। यही कारण है कि कामवासना पर आश्रित इस प्रकार के विवाह को स्मृतिकारों ने 'गान्धर्व विवाह का नाम दिया'' है।

वात्सायन और बौधायन इस प्रथा के बहुत बड़े पोषक हैं। बौधायन के अनुसार यह विवाह पुरूष–स्त्री की इच्छाओं पर आश्रित है इसलिये आदर्श है।

एक अन्य मत के अनुसार गान्धर्व विवाह का अर्थ है, गन्धर्वों की जाति में होने वाला विवाह। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि गन्धर्व स्वर्ग लोक में गायकों की एक विशेष देव योनि है। इस जाति के लोग संगीत, वाद्य और नाट्य कला में प्रवीण और अत्यन्त रूपवान् होते हैं। गन्धर्व शब्द का अर्थ ही गाने वाला है। ब्राह्मण ग्रन्थों में गन्धर्वों को स्त्री प्रेमी बताया गया है। गन्धर्वों के स्त्रीप्रेमी होने से उनमें प्रणय विवाह की प्रथा का होना स्वाभाविक है।[80]

प्रेम विवाह में प्रेमी–प्रेमिका अपने माता–पिता की अनुमति नहीं लेते हैं। जैसे पाश्चात्य, देशों में में प्रेम विवाह चल रहे हैं। आज से 70 वर्ष पूर्व हिन्दू विवाह की दशा को देखते हुये श्री रिजली ने लिखा था–'' इस बिषय पर विचार करते हुये हमें अनुरंजन के सब विचार अपने दिल से निकाल देने चाहिये। रिजली के मत में 'प्रेम विवाह' यूरोप की विशेषता है,, किन्तु यह मत ठीक प्रतीत नहीं होता है। जब तक हमारे देश में बाल विवाहों का रिवाज नहीं चला था, उस समय तक प्राचीन भारत में प्रणय विवाह होते थे। ऋषियों के आश्रमों में सरिताओं के कूलों पर वेतस कुंजों में प्रेमी–प्रेमिका का मिलन होता था। वे एक–दूसरे के प्रति सत्य सन्ध रहने की प्रतिज्ञा करते थे।

वैदिक कालीन साहित्य में प्रणय विवाहों का बड़ा मधुर वर्णन है। ऋग्वेद में जुआरी यह शिकायत करता है कि मैं जुआ न खेलने का

संकल्प करता हूँ, किन्तु जब पासों के पड़ने की आवाज आती है तो मैं जुऐ के स्थान पर उसी तरह चला जाता हूँ, जैसे प्रेमिका प्रेमी से मिलने के लिये निश्चित संकेत स्थान की ओर जाती है। सोम के प्रकरण में उपमारूप से कहा गया है, कि उंगलियां सोम को उसी तरह दबाती है जैसे कन्या प्रेमी से प्यार करती है। ऋग्वेद में भी स्त्री का प्रेमी के पास जाने का वर्णन है। केवल स्त्रियां ही पुरूषों के पास जाकर, उनके प्रणय प्राप्त करने का यत्न नहीं करती, अपितु पुरूष भी स्त्रियों से प्रेम पाने की इच्छा रखते और प्रेमी प्रेमिका एक दूसरे को प्राप्त करने के लिये नाना प्रकार के यत्न करते थे। अथर्ववेद के कामात्मा और कामिनी–मनोभिमुखीकरण (प्रेमिका के मन को अपनी तरफ आकृष्ट करना) नामक सूक्तों के मन्त्रों में है कि "मेरी प्रेमिका मुझे चाहने वाली हो। मेरे से दूर हटकर जाने वाली न हो" अथर्ववेद में प्रेमी प्रेमिका से उस तरह के आलिंगन की मांग करता है, जैसा आलिंगन लता वृक्ष के साथ करती है। एक दूसरे सूक्त में पुरूष अपनी कामिनी या प्रेमिका के प्रेम को प्राप्त करने के लिये नाना प्रकार के उपायों का आश्रय लेता है। वह अश्वनियों से सहायता मांगता है। औषधि का प्रयोग करता है और अन्त में सफल होकर कहता है कि तू मेरे पास पति की इच्छा से और मैं तेरे पास पत्नी की इच्छा से आया हूँ। हिनहिनाते घोड़े की तरह ऐश्वर्य के साथ तेरे पास आया हूँ। कामात्मा सूक्त (अथर्ववेद 6/9) में भी पुरूष ने इस प्रकार की अभिलाषा व्यक्त की है – हे कामिनी, तू मेरे शरीर, पैर, आँख की कामना कर, क्योंकि तेरी आँखें और केश रूपातिशय से मुझे जला रहे हैं। हे कामिनी, मैं बाहों में लगी हुई तुझकों अपनी प्रेमलता बनाता हूँ, ताकि तू मेरी इच्छा (संकल्प) वाली हो और मेरे चित्त को प्राप्त करे। अभिसौमनस्य सूक्त और स्मरसूक्तों में भी प्रेमी ने कामिनी के प्रति अपने प्रेम की विह्वलता एवं आतुरता को प्रकट किया है–"अश्विनी, जैसे– यह घोड़ा सारथी की इच्छा से आता जाता है। (अर्थात् पूर्णरूप से उसके अधीन हो जाता है) हे कामिनी, उसी तरह तेरा मन मेरी ओर

आये जाये (पूर्ण रूप से मेरे अधीन हो)" छठे काण्ड के स्मरसूक्त की व्याख्या यह है – हे देवो (मेरी कामिनी या प्रेमिका के पास) काम देवता को भेजो ताकि वह मेरी ही चिन्ता करती रहे उसके पास देवताओं का, गन्धर्वों का अप्सराओं का काम भेजो (ताकि मेरी प्रेमिका) मुझे प्यार करने लगे, मेरा प्रेमी मुझे याद करने लगे। हे अग्नि, हे इन्द्र, हे अन्तरिक्ष, तुम मेरी प्रेमिका को इस तरह उन्मत्त बनाओ कि वह मेरा ही ध्यान करे। युवक युवती के प्रेम का उदय होने पर कई बार माता–पिता उसमें बाधक होते हैं। गान्धर्व विवाह की दूसरे विवाहों से यह विशेषता है कि इसमें माता पिता की परवाह नहीं की जाती। अथर्ववेद 3/25 में प्रेमी अपनी प्रेमिका के प्रति काम के इतने जबरदस्त बाण फेंकता है कि उसकी प्रेमिका माता के पास हो या पिता के पास, किन्तु वह प्रेमी के वश में हो जाती है, "हे कामिनी अपने (प्रेम के चाबुक) से मेरी ताड़ना कर, मैं ऐसी प्रेरणा करता हूँ कि चाहे तू माता के पास हो या पिता के, तू मेरे संकल्पवाली हो और मेरे चित्त को प्राप्त करे। "प्रेमी चाहता है कि उसका प्रेमबाण ऐसा प्रबल हो कि प्रेमिका उससे विद्ध होकर रात को सोने की इच्छा न करे वह बाण उसके हृदय को सुखा दे और उससे विद्ध होकर उसका तालु बिल्कुल सूख जाये और वह प्रेमी के पास प्रियवादिनी होकर बैठ जाये। शिव ने कामदेव का विध्वंश ज्ञान के तीसरे नेत्र से किया था।

वैदिक युग में कन्यायें अपने प्रेमी से मिलने को आतुर रहती थी तथा समारोहों में अपना पति स्वयं चुन लेती थी और ऐसी कन्याओं का मातायें स्वयं अलंकरण करती थी।

कभी–कभी माता–पिता की अनुज्ञा करके कन्यायें अपने मन के अनुसार जीवन साथी का चुनाव करती थी। दुष्यंत और शकुन्तला का विवाह गान्धर्व विवाह ही था।

महाभारत में भी इस विवाह को मान्यता दी गयी है। बौद्ध साहित्य से भी गान्धर्व विवाह के प्रचलन पर प्रकाश पड़ता है। महात्मा

बुद्ध के समकालीन उदयन और वासवदत्ता की प्रेमकथा अत्यन्त प्रसिद्ध है।[81] जातकों में ऐसे विवाह के अनेक उदाहरण मिलते है। ऐसे जातक में ऐसे विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसे जातक में उल्लिखित है कि वाराणसी के आचार्य के एक शिष्य ने स्थानीय युवती से प्रेम हो जाने पर उससे परिणय कर लिया।

विष्णु पुराण में वर्णिता पुरूरबा और उर्वशी का प्रणय विख्यात है। यही कथा वायु पुराण एवं मत्स्य–पुराण में भी वर्णित है सतरूपा ने प्रेम के वशीभूत होकर मनु को पति के रूप में स्वीकार किया था। ''कादम्बरी'' में चन्द्रापीड और कादम्बरी तथा पुण्डरीक और महाश्वेता के प्रणय–विवाह का वर्णन किया है ''मालती माधव नाटक को माधव और मालती के गन्धर्व–विवाह का विस्तृत चित्रण है, उसमें एक स्थान पर कहा गया है कि परिणय के लिये वर–वधू का परस्पर प्रेम ही सर्वोत्कृष्ट मंगल है जिसमें वर–वधू के मन सदा मिले रहते हैं। उसी में उन्नति है।

मनु के अनुसार गान्धर्व विवाह सभी वर्गो के लिये धर्म समाज का और वात्स्यायन के मत के अनुसार तो यही अनुरागमय,सुखद और सर्वश्रेष्ठ था।

कई बार व्यक्ति धनहीन और गुणहीन होने पर उसका विवाह नहीं होता है। वात्स्यायन के अनुसार यदि कोई युवक बचपन में किसी कन्या का अनुरंजन करे वह उस कन्या के साथ फूल चुने,माला गूँथे, गुड़ियों के खेल खेले,रसोई बनाये, तरह–तरह के जुऐं खेले, बीच की उंगली बनाने के तथा अन्य खेलों को जो उस देश में प्रमाणित हो तथा कन्या की आयु के अनुसार हो तो वह व्यक्ति उसके साथ गान्ध ार्व–विवाह कर सकता है।

गान्धर्व विवाह करने से पूर्व प्रेमिका को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये प्रेमी कई प्रकार की मनोरंजक कथायें सुनाकर उसके चित्त को अपनी ओर आकर्षित करे, उसे कई वीरतापूर्वक खेल दिखाकर उसे आश्चर्य में डाले, अपनी कला और प्रतिभा की कौशलता प्रकट करे। यदि गाना सुनने का शौक हो,तो उसे विभिन्न प्रकार के गाने

सुनायें तथा फूल के गुलदस्ते,अंगूठी तथा गजरा आदि भेंट करें। जिससे प्रेमिका के हृदय में गान्धर्व विवाह करने की प्रेरणा जाग्रत हो।

7. राक्षस विवाह :-

राक्षस विवाह का अर्थ है " छीनकर या कपट से कन्या से विवाह कर लेना। प्राचीन समय में ऐसे विवाहों का प्रचलन बहुत अधिक था। उस समय जीते हुये राजा पराजित राज्यों से अनेक सुन्दर कन्याओं का अपहरण कर लेते थे। कभी-कभी स्त्रियों को प्राप्त करने के लिये भी युद्ध किये जाते थे। ऐसे विवाह विशेषकर क्षत्रियों में ही हुआ करते थे, इस कारण ऐसे विवाहों को *'क्षत्र-विवाह'* भी कहा जाता है।[82] उदाहरण के लिये हम पृथ्वीराज व संयोगिता विवाह को ले सकते हैं, जिसमें हरण के द्वारा संयोगिता से विवाह किया गया था।

मनु के अनुसार -

"हत्वा छित्त्वा च भित्वा च क्रोशन्ति रूदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं रक्षसो विधिरूच्यते।"[83]

अर्थात् राक्षस विवाह में विजेता कन्या पक्ष के लोगों को मार-काट कर उनका घर छोड़कर विलाप करती हुई कन्या को उसके घर से ही लाता है। श्रीकृष्ण का रूक्मणी से विवाह इसी प्रकार से हुआ था। इस विवाह को क्षत्रिय भी कहते हैं। क्योंकि लोग युद्ध करते और विजयी होने पर शत्रु की कन्याओं को भी पारितोषक स्वरूप उठा ले जाते थे। राक्षस विवाह उस काल की प्रथा है जबकि स्त्रियां युद्ध की पारितोषक मानी जाती थीं।

राक्षसो युद्धहरणात्।[84]

(याज्ञवल्कय स्मृति, 1/61)

याज्ञवल्क्य के अनुसार कन्यापक्ष के व्यक्तियों को मार-पीटकर रोती चिल्लाती हुई कन्या को बलपूर्वक अपहरण करके ले जाया जाता है, उसे राक्षस विवाह कहते हैं।[85]

यह विवाह प्रकार सम्भवतः आदिम एव असभ्य जातियों में पाया जाता था। क्योंकि इस विवाह में अमानवीयता का प्रदर्शन किया जाता था। इसके साथ-साथ विभिन्न अस्त्रों और शस्त्रों से शक्ति एवं

बल का प्रयोग किया जाता था, महाभारत काल में स्त्रियों को बल पूर्वक हरकर ले जाना क्षत्रियों के लिये उत्तम माना जाता था। उपहरत कन्या को पूर्णतया अविवाहित माना गया और दूसरे के साथ उसका विवाह होना समुचित माना गया है। अपहरण अधिकतर अविवाहित कन्या का ही होता था सुभद्रा, अम्बा अम्बालिका, अम्बिका आदि कुमारियां भी थीं। यदि इनमें से कोई अपने मन में किसी पति का वरण कर ले तो उसे बहुधा अपने पति के पास जाने दिया जाता था। अम्बा मन से शाल्वराज का वरण कर चुकी थी। अतः भीष्म ने उसे शाल्वराज के पास जाने की अनुमति दे दी।

राक्षस विवाह के प्राचीन उदाहरण मिलते है। भीष्म ने काशीराज की कन्याओं का बलपूर्वक अपहरण कर विचित्रवीर्य से विवाह सम्पन्न कराया था। श्रीकृष्ण ने रूक्मी को पराजित कर उसकी पुत्री रूक्मणी से विवाह किया था। अर्जुन ने श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का अपहरण कर विवाह किया था जिसमें श्रीकृष्ण की पूर्ण सहमति थी।

राक्षस एवं पैशाच नामक दोनों प्रकारों में कन्या का अपहरण किया जाता था। स्मृतिकारों ने इन विवाहों की घोर निन्दा की है। मनु ने पैशाच को अधम विवाह कहा है। इन विवाहों के नाम ही इस बात को सूचित करते हैं कि शास्त्रकार इन्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे। राक्षस और पिशाच दोनों ऐसी जातियों के नाम है जो प्राचीनकाल में घृणा तथा निन्दा की दृष्टि से देखी जाती थीं। कहा जाता है कि इन जातियों में इन विवाहों का विशेष प्रचार था,अतएव इन्हें ऐसा नाम दिया गया था।

8. पैशाच विवाह :–

सर्वाधिक निन्दनीय और अप्रशस्त विवाह पैशाच विवाह कहा जाता था। इस प्रकार के विवाह में सोती हुई, मदहोश, उन्मत्त, मदिरापान की हुई अथवा मार्ग में जाती हुई कन्या को जब व्यक्ति कामयुक्त होकर अपनाता था तो इस प्रकार का विवाह पैशाच विवाह कहलाता था।

मनु ने पैशाच विवाह की निम्न अभिव्यक्ति दीः–

"सुप्तां मुत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।।"[86]

अर्थात् सोयी हुई, मद से मतवाली या जो कन्या पागल हो उसके साथ एकान्त में सहवास करना विवाह में अत्यन्त निकृष्ट पापों से भरा हुआ विवाह माना जाता था।

यह विवाह के सभी तरीकों में अधम कोटि का है ऐसे विवाह को भी समाज स्वीकार कर लेता है यदि बाद में समुचित धार्मिक कृत्य पूरे कर लिये जायें। मनु ने इसे अधम और सबसे पापिष्ठ विवाह माना है वशिष्ठ और आपस्तम्ब ने इस प्रकार के विवाह को विवाह की श्रेणी में ही रखने में आपत्ति की है परन्तु मनु ने कुछ सामाजिक कार्यों से इसे विवाह की श्रेणी में रखा है।

पैशाचः कन्यकाच्छलात् ।

(याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/61)

याज्ञवल्क्य के अनुसार इस विवाह में छल–कपट पूर्वक कन्या पर अधिकार करके विवाह सम्बन्ध किया जाता है। उसे पैशाच विवाह कहा जाता है।

आश्वालायन गृहसूत्र पैशाच विवाह को राक्षस से पहले स्थान देता है और उसे राक्षस से अधिक उत्कृष्ट समझता है। इसका कारण यह है कि वह पेशाच का लक्षण मनु से सर्वथा भिन्न करता है। उसके मत में पैशाच का अर्थ चोरी से वधू का अपहरण करता है, अतः पैशाच विवाह राक्षस की अपेक्षा अधिक उत्तम है।[87]

धर्म शास्त्राकारों ने इस विवाह भेद की अत्यन्त जघन्य, अप्रशस्त, अधर्म्य, गर्हित,निन्दित और अधम माना है।

ब्राह्मणों के लिये यह विवाह सर्वथा अनुपयुक्त और वार्जित था। द्विज, क्षत्रिय, वैश्य,शूद्र के लिये ही ऐसा विवाह विहित बताया गया है। इस विवाह का सम्बन्ध असभ्य और असंस्कृत जातियों से था किन्तु बाद में शक्तिशाली और पराक्रमी जातियों ने इसका अनुसरण किया। पराक्रम युद्ध और शौर्य प्राचीन काल से क्षत्रिय जाति का प्रधान गुण रहा है इसलिये यह विवाह पद्धति क्षत्रियों में यदा–कदा अपनाई जाती रही है। कुछ शास्त्रकारों ने इस विवाह प्रथा को उचित नहीं माना है। किन्तु इसे विवाह के प्रकारों में स्थान अवश्य दिया है। आपस्तम्ब और वशिष्ठ जैसे लेखकों ने अपने धर्म सूत्रों में ऐसे विवाह को बिल्कुल स्थान नहीं दिया है।

हमारे समाज में प्राचीन काल के समय विनिमय विवाह भी कही कही प्रचलित थे। विनिमय विवाह अधिकतर गरीबी में होते थे।

प्राचीन काल में विवाह के आठ प्रकारों के अतिरिक्त विवाह का एक अन्य प्रकार भी राजवंशों में प्रचलित था। जिसे स्वयंवर कहते थे।

स्वयंवर विवाह – हिन्दू समाज में स्वयंवर विवाह प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। इसमें वधू स्वयं अपने वर का चुनाव करती थी। विशेषकर शासक वर्ग में इसका अधिक रिवाज था। स्वयंवर विवाह जैसा कोई संस्कार धर्मशास्त्रों में उल्लिखित नहीं है। यद्यपि स्वयंवर विवाह गान्धर्व विवाह से कुछ मिलता जुलता है। अन्तर यह है कि स्वयंवर विवाह में केवल कन्या अपनी इच्छा के अनुसार वर का चुनाव करती है। जबकि गान्धर्व विवाह में वर और कन्या दोनों अपने मन के अनुसार विवाह करते थे। पूर्व वैदिक काल में कन्या स्वयं अपने पति को चुन लेती थी। जो स्वयंवर प्रथा के प्रारम्भिक स्वरूप की ओर इंगित करता है। उत्तर वैदिक काल तक आते आते यह प्रथा समाज में काफी प्रचलित हो चुकी थी।इस प्रकार का विवाह आयोजित करते समय अनेक प्रकार की प्रतिज्ञायें और शर्ते भी लगायी जाने लगी। जो स्वयंवर विवाह का अंग बन गयी।रामायण में उल्लिखित है कि राजा जनक ने सीता का स्वयंवर आयोजित करते समय शिव के धनुष को तोड़ने की शर्त रख दी और अपने प्रण की यह घोषणा की कि जो भी इस धनुष को तोड़ देगा,उसी को सीता अपना वर चुनेगी। राम धनुष तोड़ने पर प्रण फलीभूत होने पर ही सीता ने उन्हें अपना पति स्वीकार किया। इसी प्रकार के उदाहरण महाभारत से मिलता है जिसमें द्रोपदी के स्वयंवर का उल्लेख तथा मत्स्य का लक्ष्यभेद करने वाले को ही द्रोपदी ब्याहने की बात थी। अर्जुन ने प्रण के इस प्रतिबन्ध को तोड़कर द्रोपदी से विवाह किया। बिना किसी शर्त के कुन्ती का स्वयंवर आयोजित किया गया था जिसमें उसने पाण्डु को अपना पति स्वीकार किया था। दमयन्ती का स्वयंवर आयोजित किया गया था जिसमें उसने पाण्डु को अपना पति स्वीकार किया था। दमयन्ती का स्वयंवर भी इसी प्रकार का था उसमें से अनेक लोगों में से नल को अपने पति के रूप में वरण

किया। बौद्ध ग्रन्थों में भी स्वयंवर विवाह पर प्रकाश पड़ता हैं। असुर राज वेपचिति की पुत्री ने अपना मनोकूल वर चुना,कुणाल जातक ने पॉचों पाण्डवों को अपना पति चुना। परिवर्ती साहित्य कृतियों में स्वयंवर विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं। रघुवंश में इन्दुमति के स्वयंवर का विशद वर्णन है। पूर्व मध्य युग में भी स्वयंवर का आयोजन भव्य रूप में कराया जाता था। करहाट के शिलाहार राजा की पुत्री चन्द्रलेखा ने कल्याण नरेश चालुक्य विक्रमांकदेव को अपना पति चुना था। पृथ्वीराज रासो में संयोगिता के स्वयंवर का वर्णन अत्यन्त मधुर और शब्दावली में किया गया है।

धर्मशास्त्रों में साधारणतः इस बात का अनुमोदन किया है कि अगर पिता अपनी कन्या के लिये वर नहीं चुन पाता तो वह तीन ऋतुकाल बीत जाने पर स्वयं अपना पति चुन ले। पति चुनने की यह अनुज्ञा निश्चय ही धर्मशास्त्रकारों ने बड़ी कठिनाई और विकट स्थिति को देखते हुये प्रदान की है।

स्वयंवर विवाह राक्षस विवाह का विलोम था। राक्षस विवाह में पति को चुनाव करने का अधिकार था,किन्तु स्वयंवर में कन्या स्वयं अपने पति को चुनती थी। 17 वीं शती का 'वीरमित्रोदय' इस कल्पना को पुष्ट करता हुआ कहता है कि स्वयंवर को गान्धर्व विवाह का अंग ही समझना चाहिये वास्तव में यह बात ठीक नहीं है। गान्धर्व विवाह में युवक युवती दोनों एक दूसरे को समान रूप से चाहते हैं और विवाह में दोनों की सहमति आवश्यक हो जाती है। किन्तु स्वयंवर में अन्तिम अधिकार कन्या का है। स्वयंवर की पद्धति क्षत्रिय राजाओं में विशेष रूप से प्रचलित थी। सावित्री,सीता, दमयन्ती राजाओं की कन्यायें थी। ब्राह्मणों में इस पद्धति का रिवाज बहुत कम था, अतः ब्राह्मणों द्वारा लिखी गयी स्मृतियों में स्वयंवर का उल्लेख भी नहीं है।

स्वयंवर पद्धति को विकास की दृष्टि से तीन अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है। 1. इसमें अत्यन्त प्राचीन काल में कन्याओं को पति चुनने की पूरी स्वाधीनता होती थी।2. स्वयंवर में कोई शर्त रख दी जाती थी। इस शर्त को पूरा करने वाले पुरुष को ही कन्या वरण

करती थी। 3. जब पिता रजस्वला हो जाने पर भी कन्या की निश्चित अवधि तक शादी नहीं करता था तो स्मृतियों ने इस दशा में कन्या को अपना वर स्वयं तलाश करने की या स्वयंवर करने की आज्ञा दी थी।

1. पहली अवस्था के स्वयंवर का सर्वोत्तम उदाहरण कुन्ती और दमयन्ती हैं। यह प्रथा बहुत प्राचीन थी। वैदिक काल में वधुयें,पतियों का स्वयं वरण करती थी।[88] महाभारत में ऐसे वर्णन विस्तार से उपलब्ध होते हैं। कुन्तिभोज ने पृथा या कुन्ती के स्वयंवर में राजाओं को बुलाया। कुन्ती ने रंगभूमि में राजाओं में शार्दूल,महाबली एवं सूर्य की तरह सब राजाओं की प्रभा को ढापने वाले पाण्डु को देखा और उसने कामभाव विह्वल होकर लजाते हुये अपनी माला पाण्डु के गले में डाल दी।

महाभारत में नल–दमयन्ती उपाख्यान वनपर्व में बड़े विस्तार से दिया गया है। दमयन्ती के पिता विदर्भराज ने भी अपनी कन्या को प्राप्त यौवना देखकर,राजाओं, को स्वयंवर का निमन्त्रण भेजा। राजा नल का प्रणय–संदेश दमयन्ती के पास हंस द्वारा पहुँच ही चुका था। दमयन्ती हृदय से नल को चाहती थी। दमयन्ती के अत्यन्त रूपवती होने के कारण इन्द्र,अग्नि, वरूण, और यम लोकपाल चाहते थे कि दमयन्ती उन्हें प्राप्त हो। ये लोकपाल नल को अपना दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजते हैं। पर दमयन्ती नल को ही पति रूप में वरण करने का दृढ़ निश्चय करती है। यहां दमयन्ती को अपना पति चुनने की पूरी स्वाधीनता मिली थी।

चन्दरबरदाई ने संयोगिता के स्वयंवर का बड़ी ओजस्विनी भाषा में वर्णन किया है। पृथ्वीराज चौहान का कन्नौज के राजा जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता के साथ विवाह आधा स्वयंवर और आधा राक्षस विवाह है।

2. स्वयंवर का दूसरा रूप यह था कि कन्या के विवाह के लिये कोई शर्त या पण निश्चित कर दिया जाता था। उस शर्त को जो राजा पूरा करता था, उसके साथ उस कन्या का विवाह कर दिया जाता था। इसमें कन्या के चुनाव का कोई प्रश्न नहीं था। इसमें क्षत्रियों की शक्ति या वीर्य की परीक्षा होती थी। जो क्षत्रिय वीरता और शूरता में सबसे

अधिक बढ़ा–चढ़ा होता था,वही कन्या के साथ विवाह के लिये योग्य समझा जाता था। अतः ये वीर्यशुल्क स्वयंवर कहलाते थे। द्रौपदी को अर्जुन के साथ और सीता का रामचन्द्र के साथ विवाह करना पड़ा था। उन्होने यह विवाह इसलिये नहीं किया कि वे अर्जुन और श्रीराम को चाहती थीं, किन्तु इसलिये किया था, कि उन्होने मत्स्यभेद और शिवजी का धनुष उठाने की शर्तें पूरी की थीं।

स्वयंवर की इस पद्धति के प्रचलित होने के कारण दिखई देता है कि पति का चुनाव कन्या पर छोड़ देने पर,कन्या जिस राजा को स्वयमेव वरण करती थी, दूसरे राजा उससे डाह और ईर्ष्या करते थे। दमयन्ती के मामले में तो राजा हाहाकार करके ही चुप हो गये थे किंतु कई बार भीषण युद्धों की नौबत आ जाती थी। इन युद्धों से बचने का यह तरीका था कि कोई ऐसी शर्त रख दी जाये जिसे पूरा करने पर विवाह किया जाये।

३. तीसरी कोटि के वे स्वयंवर है जो लाचारी में किये जाते थे। जब माता–पिता कन्या के लिये वर नहीं ढूढ़ सकते थे तो लाचारी में वे कन्या को स्वयं अपना पति ढूढ़ने की अनुमति देते थे। सावित्री के पिता जब वृद्ध हो गये तो उन्होंने सावित्री को अपना पति स्वयं खोज लेने के लिये कहा। सावित्री ने बहुत देशों में भ्रमण कर लेने के बाद सत्यवान को अपना पति चुना । गौतम और विष्णु धर्मसूत्र यह व्यवस्था करते हैं कि यदि माता–पिता कन्या के रजस्वला होने के बाद तीन महीने तक विवाह न कर सके। तो कन्या स्वयं अपने पति का वरण कर ले।

ऋग्वेद में विवाह के प्रकारों का उल्लेख नहीं है। किन्तु जिस परिस्थतियों में यह विवाह होते थे उनसे निम्नलिखित प्रकार के विवाहों का अनुमान लगाया जा सकता हैं।

1. आसुर विवाह –

कन्या के पिता को कुछ धन देकर वर कन्या से विवाह करता है।[89]

2. प्राजापत्य विवाह –

पति – पत्नी का कभी विच्छेद न हो दोनो संयुक्त रूप से परिवार के कर्तव्यों की पूर्ति करें।[90]

3. *स्वयंवर –*

कन्या स्वयं अपने पति को चुनती है।[91]

4. *राक्षस विवाह –*

विमद की कथा से इस प्रकार के विवाह का आभास मिलता है।[92]

5. *गान्धर्व विवाह –*

वर एवं कन्या स्वयं अपनी इच्छा से विवाह करें।[93]

6. *संविदात्मक –*

यदि संविदा की शर्तों की पूर्ति न हो तो विवाह विच्छेद सम्भव था। प्रारम्भिक गृहसूत्रों में केवल एक प्रकार के विवाह का वर्णन मिलता है। जिसका उन्होंने कोई विशिष्ट नाम नहीं दिया। मानव गृह सूत्र बाद की रचना है। उसमें वाद्य और शौल्य दो प्रकार के विवाहों का वर्णन है। केवल आश्वलायन गृह–सूत्र में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है।

आवाह और विवाह –

आवाह का अर्थ है आमंत्रण। यह भी विवाह का एक प्रकार है अर्थात आमंत्रित करके जो विवाह सम्पन्न किया जाये उसको आवाह यानी आमंत्रित करके किया गया विवाह कहते हैं। इस कोटि में ब्राह्म विवाह आता है।

मनुस्मृति के अनुसार –

आच्छाद्य चाचयित्वा त्व श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्म धर्मः प्रकीर्तितः।।

वर कन्या दोनों ब्रम्हचर्य से पूर्ण, विद्वान, धार्मिक और सुशील हो, उनका परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना ब्रह्म विवाह कहलाता है। इस प्रकार के विवाह में कन्या के माता पिता अपनी प्रसन्नता और विवेक से एक विद्वान और योग्य वर को अपनी कन्या के लिये चुनते हैं। उसे अपने घर पर आमंत्रित करते हैं। और कन्या को वस्त्र, अलंकार आदि से सुसज्जित करके उसे वर को दान देते हैं। आवाह विवाह का सर्वोत्तम रूप है।[94] इसमें वर पक्ष को अपने यहाँ आने के लिये कन्या पक्ष आमंत्रण देता है।

वशिष्ट ने राक्षस विवाह को क्षात्र विवाह और आसुर विवाह को मानुष विवाह कहा है। इसके आधार पर जावाली का मत है कि ब्राह्म विवाह ब्राह्मणों में, राक्षस क्षत्रियों में और असुर वैश्यों में प्रचलित था। परन्तु वास्तविकता में यह प्रतीत होता है कि विवाह का कोई प्रकार किसी जाति विशेष के लिये न था।

धर्म और अधर्म विवाहों का स्त्रीधन पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता था। उदाहरण स्वरूप याज्ञवल्क्य का मत है कि यदि कन्या का धर्म विवाह हुआ और उसकी कोई सन्तान न हो तो उसकी सम्पत्ति उसके पति को मिलनी चाहिये और यदि अधर्म विवाह हुआ हो तो सम्पत्ति उसके पिता को मिलना चाहिये कौटिल्य के अनुसार धर्म विवाह में विशेष परिस्थतियों में पति– पत्नी के स्त्रीधन का उपयोग कर सकता था। यदि अधर्म विवाह हो तो पति को पत्नी का धन ब्याज सहित लौटाना होगा।

दोनों प्रकार के विवाहों का प्रभाव सन्तान पर भी पड़ता था। मनु के अनुसार धर्म –विवाहों की सन्तान गुणी प्रशंसनीय और वैदिक ज्ञान में प्रवीण होती है, और अधर्म विवाह की संतान क्रूर, झूठी और ब्राह्मण धर्म विरोधी होती है।

इसी प्रकार श्राद्ध पक्ष में भी धर्म –विवाह वाली पत्नी को विशिष्ट स्थान दिया जाता था। उसके मरने पर पति स्वयं चावल पिण्ड देता था।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जिन विवाहों में वर और कन्या माता पिता की सहमति से, बिना धनादि के लालच से विवाह करते थे। उसे समाज में धर्म कहा गया है। और जिनमें धनादि लालच या बल पूर्वक या वर और कन्या बिना माता पिता के सहमति से विवाह करते थे उसे अधर्म कहा गया है।

हिन्दू विवाह अनेक आदेशों और अनुदेशों से सम्बद्ध है। ऐसा माना जाता है कि वैदिक युग में विवाह से सम्बन्धित ये मान्यतायें अधिक महत्वपूर्ण नहीं थी अथवा उनके प्रति लोगों का दृष्टिकोण अधिक उदार था। परन्तु कालान्तर में विवाह से सम्बन्धित नियम जीवन के अनिवार्य

अंग बन गये। हिन्दू विवाह की मान्यताओं को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. बहिर्विवाह 2. अन्तर्विवाह 3. अनुलोम विवाह 4. प्रतिलोम विवाह

1. बहिर्विवाह –

विवाह के सभी समाजों में विवाह से सम्बन्धित कतिपय नियमों का पालन किया जाता है। प्राचीन भारतीय समाज में भी जीवन साथी के चुनाव को नियमित करने की दृष्टि से विवाह सम्बन्धी अनेक नियम पाये जाते थे। विवाह सम्बन्धी इन नियमों को चार भागों में बाँटा जा सकता है। हिन्दू समाज में जहाँ एक ओर अन्तर्विवाह के आदेश दिये गये है, वहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपने गोत्र, प्रवर और पिण्ड के सदस्यों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। इस प्रकार बर्हिविवाह वह नियम है जिसके द्वारा व्यक्ति पर एक विशेष समूह तथा क्षेत्र में विवाह सम्बन्ध स्थापित करने पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। मुख्य रूप से बर्हिविवाह चार प्रकार के माने जाते हैं। 1. संगोत्र विवाह 2. सप्रवर बर्हिविवाह

3. टोटम बर्हिविवाह 4. पिण्ड बर्हिविवाह

बहिर्विवाह के प्रकार

1. संगोत्र विवाह –

गोत्र के सम्बन्ध में विभिन्न विचार मिलते हैं। विश्वामित्र, जमदाग्नि, अगस्त्य, भारद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, कश्यप नामक आठ ऋषियों की सन्तानों को गोत्र के नाम से पुकारा जाता है। वैदिक साहित्य में गोत्र शब्द का प्रयोग गायों की रक्षा के लिये बनाये गये बाड़े के रूप में किया गया है।

डा0 ए.एस. अल्तेकर के अनुसार –

ईसा के 600 वर्ष पूर्व संगोत्र विवाह पर निषेध नहीं था। पुराणों में भी इस प्रकार के विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं पाया जाता है। साधारणतः गोत्र का अर्थ उन व्यक्तियों के समूह से लगाया जाता है, जिनकी उत्पत्ति एक ही ऋषि पूर्वज से हुयी है।

वैदिक साहित्य में गोत्र शब्द का प्रयोग गायों की रक्षा के लिये बनाये गये बाडे के रूप में किया गया है। मैक्समूलर भी इस धारणा के अनुसार मानते हैं, कि जिन लोगों की गायें एक स्थान पर बाधती थी, वे उस स्थान पर रहने वाले एक पूर्वज ऋषि की संतान समझे जाने लगे। पाणिनी ने अपने एक सूत्र में पोते तक की संतान को गोत्र कहा है। पतंजलि के महाभाष्य से स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य पालन करने वाले 30 हजार ऋषि हुये, किन्तु उनमें केवल 8 ऋषियों की ही संतान गोत्र कहलाती है। मेधातिथि, जो मनुस्मृति के सबसे बड़े टीकाकार थे, ने लिखा है कि गोत्र का अर्थ यह नहीं है कि वे किसी विशेष समय में उत्पन्न हुये ऋषि की सन्तान हैं, परन्तु जैसे परम्परा के अनुसार कुछ को ब्राहमण माना जाता है वैसे ही गोत्र भी परम्परागत वंश का नाम है। विज्ञानेश्वर के अनुसार वंश-परम्परा में जो नाम प्रसिद्ध होता है, वह उस वंश का गोत्र कहलाती है। बौधायन ने गोत्र की संख्या करोड़ों में बताई है। मिताक्षरा-न्याय के अनुसार गोत्र का अर्थ रक्त की निकटता है। 'गोत्र' शब्द का पर्याय एक घेरे में रहने वाले तथा एक विशेष समूह के व्यक्तियों के लिये किया गया है। इसी धारणा के अनुसार आपसी विवाह सगोत्र विवाह को वर्जित कर दिया गया जो बाद में चलकर बहिर्विवाह की प्रथा का कारण बन गया। इसलिये हिन्दुओं में संगोत्र कन्या से विवाह का निषेध है।

मनु स्मृति के अनुसार

असपिण्डा च या मातुरसगाना च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ।।[95]

अर्थात् जो कन्या माता की सात पीढ़ी के भीतर की न हो, पिता के सगोत्र की न हो, वह द्विजातियों के बिहाने और संतानोत्पादन करने योग्य होती है।

करन्दीकर के अनुसार :-

ऋग्वैदिक काल में गोत्र का सम्बन्ध परिवार से नहीं था, फिर भी इसमें समूह की चेतना शनैः शनैः संलग्न होती गयी एवं छान्दोग्य उपनिषद् में तो यह शब्द निश्चय ही परिवार के अर्थ में आया है।

कपाडिया ने ''हिन्दू किनशिप'' नामक पुस्तक में अनेक प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि वैदिक काल में गोत्र विवाह निषिद्ध नहीं थे।इस काल में स्वयंवर के अतिरिक्त गन्धर्व–विवाह भी होते थे तथा ऐसे विवाहों में गोत्र सम्बन्धी निषेध का होना सम्भव नहीं था।[96] धर्म शास्त्रों में यह कहा गया है कि द्विजों (ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य) को कलियुग में सगोत्र विवाह से बचना चाहिये बौद्ध युग आते–आते विवाह के लिये गोत्र का महत्व बढ़ चुका था। ''मज्झिम निकाय में उल्लिखित है कि अगर कोई पुरूष किसी स्त्री से प्यार करता है तो उसका गोत्र तथा जाति जानना चाहिये।

सभी धर्म शास्त्रों में समान गोत्र वाली कन्या से विवाह करना वर्जित माना गया है। धर्मसूत्रकारों का कथन है कि द्विजातियों को अपने गोत्र से बाहर विवाह करना चाहिये।

ऐसा माना जाता है कि छठी सदी ई0पू0के बाद संगोत्र विवाह के प्रति हिन्दू समाज में प्रतिबन्ध बढ़ता गया जो कालान्तर में कठोर होता गया पूर्व मध्ययुग में भी संगोत्र विवाह पूर्ववत् वर्णित थे।

अलबरूनी का कथन है कि हिन्दुओं में अपनी वंशजा अर्थात् पोती या परपोति तथा अपनी पूर्वजा माता,दादी या पर दादी दोनों प्रकार की सगोत्र स्त्रियों के साथ विवाह वर्जित है। धर्मशास्त्रिकारों ने सगोत्र विवाह से मातृवत् व्यवहार करने के लिये निर्दिष्ट किया है।अगर कोई व्यक्ति संगौत्र कन्या से विवाह करता था तो उसे अनेक प्रकार के प्रायश्चित, व्रत आदि करने पड़ते थे तथा ऐसा व्यक्ति समाज में निन्दनीय समझा जाता था। सगोत्र कन्या से विवाह पर चान्द्रायण विवाह की व्यवस्था की गयी है तथा समान गोत्र प्रवरा कन्या से विवाह करने वाले ब्राहमण को चांडाल उत्पन्न करने वाला कहा गया है।

मनु वे बुआ,मौसी और नाना की कन्या से विवाह करने वाले को नरकगामी कहा है।

इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि संगोत्र विवाह हिन्दू समाज में निन्दनीय माना जाता था।

2. सप्रवर बहिर्विवाहः–

"प्रवर" शब्द "वृक्ष वरणो" अथवा वृ धातु से बना है। वर का अर्थ है 'चुन' लेना' 'प्र' का अर्थ है – विशेष रूप से, अर्थात् जिसे विशेष रूप से यज्ञ के लिये चुन लिया जाये उसे प्रवर कहते हैं। श्री पाण्डुरंग वामन काणे का कथन है कि यज्ञ करते समय पुरोहित कुछ प्रसिद्ध, यज्ञस्वी ऋषियों को चुनकर उनके नाम से यज्ञ में आहुति देता था, और प्रार्थना करता था, कि मैं अग्नि में वैसे ही आहुति देता हूँ जैसे भृगु ने दी थी, जैसे अंगिरा ने दी थी, अत्रि ने दी थी। इस प्रकार चुने गये ऋषि जो प्राचीन ऋषियों में से चुने गये थे, 'प्रवर' कहलाते थे। बाद में प्रवर ऋषियों की संख्या निश्चित कर दी गयी यह संख्या 49 है। वैदिक इन्डेक्स के अनुसार प्रवर का अर्थ आहवान करना होता है। डॉ0 प्रभु के अनुसार "इण्डो आर्यन लोगों में अग्नि–पूजा और हवन करने का प्रचलन था। हवन करते समय पुरोहित अपने प्रमुख और श्रेष्ठ, ऋषि पूर्वज का नाम लेते थे। इस प्रकार प्रवर के अन्तर्गत एक व्यक्ति के उन पूर्वजों का समावेश है ये अग्नि आहवान करते है।"

धीरे–धीरे इसके साथ–साथ सामाजिक धारणा भी जुड़ गयी और इन ऋषि पूर्वज का महत्व अनेक घरेलू और सामाजिक संस्कारों में भी हो गया। जिसमें विवाह संस्कार प्रमुख है। इस रूप में हम कह सकते हैं कि वह सभी वयक्ति एक सामान्य ऋषि पूर्वज की सन्तान मानने के कारण आपस में विवाह नहीं करते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि प्रवर का कोई भी सम्बन्ध रक्त सम्बंध से नहीं है बल्कि यह एक धार्मिक या आध्यात्मिक या संस्कार सम्बन्धित समूह है। "

वास्तव में 'प्रवर' भी प्राचीन ऋषियों का नाम है। विज्ञानेश्वर के अनुसार केवल ब्राहमणों के ही वास्तविक गौत्र प्रवर होते है। क्षत्रिय और वैश्यों के गोत्र और प्रवर उनके पुरोहितों पर आश्रित होते हैं। शूद्रों के कोई गोत्र और प्रवर नहीं होते हैं। पाण्डुरंग वामन काणे ने गोत्र और प्रवर का अन्तर बतलाते हुये कहा है कि गोत्र उन अति प्राचीन ऋषियों के नाम है जो परम्परा द्वारा अनेक पीढ़ियों से किसी वंश या व्यक्ति के पूर्वज माने जाते हैं किन्तु प्रवर वे अति प्राचीन ऋषि है जो बड़े यशस्वी थे और गोत्र चलाने वाले ऋषियों के पूर्वज थे।

उच्च जातियों में सप्रवर विवाह को भी वर्जित माना गया है। वे सभी सप्रवर होते है जो यज्ञ में एक ही ऋषि का नाम उच्चारण करते है। इस प्रकार प्रवर एक प्रकार का धार्मिक और आध्यात्मिक सम्बन्ध है। सप्रवर विवाह प्राचीन काल में वर्जित नहीं थे जैसा कि अल्तेकर और डांगे ने कहा है इस प्रथा का प्रादुर्भाव शायद गृह्य तथा धर्मसूत्रों के समय में हुआ।

गौत्र के समान ही प्रवर की धारणा सर्वप्रथम ब्राह्मणों में पायी जाती थी। ब्राह्मण ही पुरोहित के रूप में यज्ञ करते समय अपने ऋषियों का नाम उच्चारण करते थे। यज्ञ करने वाले यजमानों ने भी अपने पुरोहितों के ऋषि पूर्वजों अर्थात् उनके प्रवरों को अपना लिया एवं समान प्रवर वाले आपस में वैवाहिक सम्बंध स्थापित नहीं कर सकते थे और यदि समान प्रवर से विवाह हो जाता तो हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में इसे गुरुतल्पारोहण सदृश्य पाप माना जाता था।

डा0 पी0वी0काले के अनुसार :-

''सगोत्र किसी व्यक्ति के अन्तिम पूर्वज से अथवा अन्तिम पूर्वजों में से कोई एक है जिसके नाम से उसका परिवार कई पीढ़ियों से प्रसिद्ध रहा है। जबकि प्रवर के चलाने वाले वे प्रसिद्ध ऋषि अथवा ऋषिगण है जो प्राचीन काल में हुये।

यह प्रथा कदाचित् ऋग्वेद काल में ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी। कोषितकि ब्राह्मण का कथन है कि प्रवर विहीन जातियों के हवन को देवता स्वीकार नहीं करते हैं। इसी से प्रत्येक के लिये प्रवर नामोच्चारण आवश्यक था। आपस्तम्ब के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को अपना प्रवर ज्ञात न हो तो आचार्य के प्रवर का प्रयोग कर सकता है। विद्वानों की मान्यता है कि सप्रवर विवाहों पर धर्म सूत्र काल या मनु के समय कोई कठोर प्रतिबन्ध नहीं थे। किन्तु बाद में यह प्रथा कठोर हो गयी। प्रवर विवाह करने वाले ब्राह्मण को चाण्डाल उत्पन्न करने वाला कहा गया है।

श्री काले का कथन है कि सप्रवर विवाह पर निषेध तीसरी शताब्दी से प्रारम्भ हुये और नवीं शताब्दी के बाद तो ऐसे विवाह को अक्षम्य समझा जाने लगा।

प्रवर में प्रायः तीन ऋषियों के नाम आबद्ध होते थे। कभी-कभी पाँच ऋषियों के नाम भी जुड़े मिलते हैं। धर्मसूत्रों में प्रवर से सम्बन्धित किसी एक मत का प्रतिपादन नहीं किया गया है, बल्कि मतभेद ही मिलते हैं।

3. टोटभ बहिर्विवाह –

" भारतीय जन जातियों में टोटम के आधार पर ही विवाह होता है। एक टोटम के ही मानने वाले अपने समूह में विवाह नहीं कर सकते। वे दूसरे टोटम मानने वालों के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। टोटम किसी वनस्पति या जानवर को कहते हैं। जिससे कोई जन-जाति विशेष सम्बंध मानती है। गोंडा में बहिर्विवाह अर्थ वंश कहलाते हैं। इन वंशो का वर्गीकरण पूजे जाने वाले वर्ग देवताओं की संख्या पर निर्भर है। सात देवता पूजने वाले वर्ग के व्यक्ति अपने वर्ग से बाहर पाँच, चार, या तीन देवता पूजने वाले वर्गों में ही विवाह कर सकते हैं। ये वर्ग टोटभ वाले अन्य बहिर्विवाही उपवर्ग में बंटे होते हैं। इनमें दूध-भाई या मामाभाई का सम्बंध माना जाता है और अन्तर्विवाह वर्जित होता है।[97]

4. संपिण्ड बहिर्विवाह :–

हिन्दू समाज में सपिण्ड विवाह भी वर्जित है। सपिण्ड की परिभाषा भी भिन्न है। मिताक्षरा सम्प्रदाय के अनुसार सपिण्ड उन लोगों को कहते हैं। जिनके शरीर में एक ही पिण्ड या शरीर का अंश हो। इस प्रकार सपिण्ड में वे सभी आ जाते हैं जिनके माता-पिता,दादा-दादी, नाना-नानी, एक ही होते हैं। बृहस्पति के अनुसार माँ की पांच और पिता की सात पीढ़ियाँ सपिण्ड के अन्तर्गत आती है। बौधायन के अनुसार मामा और बुआ की सन्तानों में भी विवाह होना अनुचित माना गया है। परन्तु भारत में अनेक ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि सब स्थानों में सपिण्ड का विचार एक सा नहीं है। दक्षिण में नम्बूदरी ब्राहमणों के अतिरिक्त अन्य ब्राहमणों में मामा की सन्तान से सम्बंध स्थापित करना अच्छा माना जाता है। मद्रास की वेलम जाति में भांजी से तथा ब्राहमणों में साली की लड़की से विवाह करना अच्छा माना जाता है।

भारत में गाँव के बाहर विवाह करना उत्तम माना जाता था। साधारणतया एक गाँव का व्यक्ति अपने गाँव में विवाह नहीं करता। छोटा नागपुर की मुण्डा और अन्य जन जातियों में भी एक प्रथा प्रचलित हैं। आसाम में नागा जन जातियां 'खेल' में बँटी होती है।खेल एक विशेष स्थान पर रहने वाले नागाओं को कहा जाता है। एक खेल का व्यक्ति अपने खेल में विवाह नहीं कर सकता। गारो जन-जाति मूरक और संगम नाम दो जातियों में बँटी होती है जिनमें अन्तर्विवाह वर्जित है। इसी प्रकार बहुत सी अन्य जन जातियों में अन्तर्विवाह वर्जित है।

सपिण्ड बहिर्विवाह निषेध के अनुसार उन लोगों में वैवाहिक सम्बंध नहीं हो सकता है जो एक दूसरे के पिण्ड के हो। लेकिन किन-किन लोगों को एक दूसरे का सपिण्ड माना जाये कितनी पीढ़ियों तक के लोगों को सपिण्डता के आधार पर एक दूसरे से विवाह करने का निषेध किया जाये, इस सम्बंध में काफी अस्पष्टता थी। याज्ञवल्क्य स्मृति टीकाकार विज्ञानेश्वर कृत मिताक्षरा और जीमूतवाहन कृत दायभाग दोनों में सपिण्ड का विचार किया गया है।

मिताक्षरा व्यवस्था के प्रवर्तक विज्ञानेश्वर के अनुसार पिण्ड का अर्थ रक्त की निकटता से या समान रक्त कणों से है। अर्थात् वे व्यक्ति एक दूसरे के सपिण्ड है। जिनमें एक ही पूर्वज का रक्त पाया जाता है। एक ही वंशानुंक्रम, एक ही शरीर या निकट और रक्त सम्बंध के आधार पर समान शारीरिक अवयव रखने वाले व्यक्ति सपिण्ड होत हैं और आपस में विवाह नहीं कर सकते हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार सपिण्डता का यह सम्बन्ध पिता की ओर सात पीढ़ियों तक तथा माता की और पाँच पीढ़ियों तक माना जाता है। और इसके अन्तर्गत आने वाले व्यक्तियों में आपस में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता।

दायभाग हिन्दू उत्तराधिकार की व्यवस्था के अनुसार मृतक का पिण्ड तर्पण करने वाले व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त करने का अधिकार होता है। मृतक की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी ही उसे पिण्ड दान करते है। क्योंकि वे एक दूसरे के

सपिण्ड होते है। किसी हिन्दू पुरूष या स्त्री की मृत्यु पर उसकी रक्त सम्बन्धी सन्तान (साधारणतः पुत्र सन्तान) चावल के आटे का गोला बना कर गंगा में या अन्य किसी पवित्र नदी अथवा तालाब में तर्पित करती है। पिण्ड तर्पण का यह कार्य धार्मिक श्राद्ध के समय भी किया जाता है।

इस प्रकार दायभाग के प्रवर्तक जीमूतवाहन के अनुसार पिण्ड का अर्थ चावल या जौ के आटे के उन गोलों से है। जो श्राद्ध के समय पूर्वजों को अर्पित किये जाते है। पिण्डदान करने वाले आपस में सपिण्ड होते हैं और इसीलिये उनकी सन्तानों में आपस में विवाह नहीं हो सकता। पिण्ड शब्द का प्रयोग ऋग्वेद तथा तैतरीय सहिता में है। शतपथ ब्राहमण में इसका प्रयोग पितरों को दिये जाने वाले चावल के पिण्ड के अर्थ में किया गया है। परन्तु सम्पूर्ण वैदिक संहिता में कहीं पर भी सपिण्ड का उल्लेख नहीं मिलता । किन्तु इतना अवश्य था कि उस युग में कन्या का ममेरे,चचेरे, मौसेरे तथा फुफेरे भाई बहिनों में विवाह हुआ करता था। ऐसे वेदमंत्र है, जो इनकी पुष्टि करते है।

सपिण्ड विवाह शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम धर्मसूत्रों में उपलब्ध होता है और वह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप में। धर्म सूत्रों में सपिण्ड विवाह का स्पष्ट निषेध किया गया है। सपिण्ड के नियमों का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति जाति भ्रष्ट एवं पतित हो जाता है। गोभिल गृहसूत्र तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार सपिण्ड कन्या के साथ विवाह नहीं हो सकता । मनु ने भी सपिण्ड विवाह का विरोध किया है।

इस दिशा में कोई भी विवाह उपयुक्त नहीं हो सकता है यही कारण है कि अनेक नियामकों ने सपिण्ड सम्बंध का अर्थ परिमित कर दिया है। गौतम के अनुसार सपिण्ड माता के पक्ष में 5 पीढ़ियों तक रहता है। वशिष्ठ और याज्ञवलक्य ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।

इसी आधार पर व्यवस्थाकारों ने मातुल्य दुहिता आदि के साथ विवाह कार्य निषिद्ध ठहराया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार इनके साथ सम्भोग पतनीय है। बौधायन सूत्र के अनुसार दक्षिण भारत में मातुल्य एवं पितृस्वसा की सुताओं के साथ विवाह का प्रचार था, परन्तु गौतम तथा बौधायन इस प्रणाली के विरोधी थे।

सपिण्ड बहिर्विवाह के नियम का पालन हिन्दु समाज में सर्वभौम रूप से नहीं हुआ है। महाभारत काल में इस बिषय में कोई कठोर नियम नहीं थे। कुमारिल भट्ट ने बताया है कि श्रीकृष्ण ने अपने मामा की लड़की रूक्मणी तथा अर्जुन ने अपने मामा की लड़की सुभद्रा से विवाह किया था। श्रीकृष्ण ने सत्यभामा से भी विवाह किया था। जो कि उनके पिता की पांचवी पीढ़ी में थी। उग्रसेन की बहन सुतनु का विवाह वासुदेव के साथ हुआ था जो पिता की ओर से पांचवीं छठीं पीढ़ी के सम्बन्धी थे।

श्री के0 एम0 कपाड़िया ने लिखा है, पांचवीं छठी और सम्भवतः चौथी पीढ़ी में भी विवाह की यह परम्परा यादव कुल में थी तथा भारतीय आर्यों के इतिहास में इसे आदर की दृष्टि से देखा जाता था। यह बात महत्वपूर्ण है। वशिष्ट और गौतम के आदेश होने पर भी यह काफी सम्भव है कि पांचवीं पीढ़ी में विवाह अनुचित नहीं माना जाता था। बौद्ध साहित्य में भी ऐसे विवाहों के उदाहरण मिलते हैं। जैसे मगध नरेश अजातशत्रु का विवाह अपने मामा कौशल नरेश की पुत्री बजीरा के साथ हुआ था।

इस प्रकार के कुछ उदाहरण जैन साहित्य में भी उपलब्ध होते है। महावीर स्वामी के अग्रज नन्दिवर्धन ने अपनी मातुल दुहिता ज्येष्ठा से पाणिग्रहण किया था। एक साक्ष्य से पता चलता है कि मातुल दुहिता के साथ विवाह करना यद्यपि उत्तरापथ में वर्जित था तथापि वह लाट और दक्षिणापथ में प्रचलित था। कही-कहीं पर बुआ अथवा बहिन की पुत्री के साथ विवाह के दृष्टांत भी मिलते है। परन्तु इस प्रकार के उदाहरण नियम की अपेक्षा अपवाद के रूप मे लिये जाने चाहिये। इस प्रकार के सपिण्ड विवाह केवल राजकुलों में ही प्रचलित थे, किन्तु साधारण जनता में ऐसे विवाह अनजाने न थे।

स्मृतियों पर भाष्य लिखने वाले पूर्व मध्य युगीन लेखकों ने असपिण्डता का तार्किक समर्थन किया है। ऐसे लेखकों के दो वर्ग है। एक उत्तर के दूसरे दक्षिण के उत्तर के टीकाकारों ने सपिण्डता का विरोध किया तथा दक्षिणी के टीकाकारों ने समर्थन किया है। चूंकि दक्षिण में सपिण्ड विवाह बहुत पहले से प्रचलित थे इसलिये देवगण

भट्ट, पराशर,माधव जैसे भाष्यकारों ने सपिण्डता का समर्थन किया है। मेघातिथि,विश्वरूप और विज्ञानेश्वर आदि भाष्यकारों ने इसका प्रबल प्रतिरोध किया है तथा ऐसे विवाह करने वालों को घोर निकृष्ट बताया है। अलबरूनी का कथन है कि सपिण्ड सम्बंधी–बहन, भतीजी,मौसी या फूफी और उनकी पुत्रियां –विवाह के लिये निषिद्ध है। यह निषिद्धता उस स्थिति में नहीं रहती जब विवाह सम्बंध स्थापित करने वाले व्यक्ति पांच पीढ़ी तक एक दूसरे से अलग रह रही हो। किन्तु इतना होने पर भी ऐसा विवाह उनमें पसन्द नहीं किया जाता है।

बहिर्विवाह के लाभ :–

बहिर्विवाह के दृष्टिकोण ने समाज को एक प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रदान किया है। साथ ही उसने सांस्कृतिक एकता में वृद्धि की है।

1. जैवकीय दृष्टिकोण से बहिर्विवाह एक उत्तम व्यवस्था है। इस विवाह में यह अवश्य कहा जाता है कि जो सन्तान होगी वह उत्तम होगी। अनेक जीवशास्त्री यह मानते है कि रक्त सम्बन्धियों के मध्य विवाह होने से बच्चों में शारीरिक दोष हो जाने की सम्भावना रहती है। दूसरी ओर बहिर्विवाह के फलस्वरूप बुद्धिमान, स्वस्थ और सुन्दर सन्तानों का जन्म होता है।
2. बहिर्विवाह के फलस्वरूप विभिन्न समूहों के लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और इससे समाज में संघर्ष कम होता है।
3. बहिर्विवाह की व्यवस्था समूह में नैतिकता बनाये रखने में उपयोगी सिद्ध हुई है,यदि रक्त सम्बन्धियों में विवाह को छूट दे दी जाती है, तो परिवार में ही अनैतिकता और अनाचार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
4. प्रो0काणे के अनुसार बहिर्विवाह के माध्यम से एक पीढ़ी को अपने दोष दूर करने का अवसर मिल जाता है क्योंकि इसके द्वारा रक्त के संयोग सदैव नवीन रूप ग्रहण करते रहते हैं। समनर ने लिखा है कि 'अन्तर्विवाह',रूढ़िवादी और बहिर्विवाह प्रगतिवादी हैं। "बहिर्विवाह समाज के लिये वास्तव में अत्यन्त उपयोगी है।

बहिर्विवाह की हानियां :-

बहिर्विवाह की प्रथा से हिन्दू में अनेक बुराइयां भी उत्पन्न हो गयी है। करंदीकर ने लिखा है कि बहिर्विवाह की प्रथा से वर-वधू के चुनाव का क्षेत्र बड़ा संकुचित हो जाता है जिससे दहेज की कुप्रथा बढ़ती है कर्ज लेकर देने पर भी कन्या सुखी नही रह पाती क्योंकि वर का मूल्य अधिक हो जाता है और कन्या को ससुराल में अनेक यातनायें सहनी पड़ती है, यहां तक कि उसे कभी-कभी आत्महत्या करनी पड़ती है। गरीबी के कारण माता-पिता कन्या को बेमेल वर से ब्याह देते है और विधवा समस्या उत्पन्न हो जाती है।

अन्त:विवाह:-

धर्मानुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही वर्ग में विवाह करना चाहिये। परन्तु आधुनिक युग में सम्पूर्ण वर्ण-व्यवस्था हजारो जातियों या उपजातियों में विभाजित है और फलस्वरूप सभी व्यक्तियों को यह निर्देश दिया जाता है कि अपनी ही जाति या उपजाति के अन्दर विवाह सम्बंध स्थापित करें। इससे भी स्पष्ट है कि अन्तर्विवाह वह वैवाहिक नियम है जो प्रत्येक स्त्री या पुरूष को अपनी ही जाति अथवा उपजाति में विवाह करने की अनुमति प्रदान करती है। फेल्सम के अनुसार अन्तर्विवाह वह नियम है जिसके अनुसार व्यक्ति को अपनी ही जाति में विवाह करना चाहिये। सेनार्ड का यही विचार है, वैदिक और उत्तर वैदिक काल में अन्तर्विवाह का क्षेत्र काफी विस्तृत था, क्योंकि उस समय तक ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य ,सभी को सवर्ण माना जाता था केवल शूद्रों को अलग समूह में रखा गया था। सवर्ण लोग सवर्ण लोगों में से अपना जीवन साथी चुन सकते थे। गुप्तकाल में सभी लोग एक दूसरे से अलग होने लगे और विवाह का अर्थ अपने ही वर्ण के स्त्री पुरूष से विवाह करने से हो गया।

अन्तर्विवाह का तात्पर्य है, अपने ही समूह में विवाह करना। यह समूह भिन्न-भिन्न हो सकता है। सभी हिन्दू प्राचीन काल से अपनी जाति में ही वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जाति का अर्थ

वर्ण से नहीं समझना चाहिये क्योंकि एक ही वर्ण में अनेक जातियां एवं उपजातियां पाई जाती है जो अन्तर्विवाह की वास्तविक इकाइयां हैं।

वैदिक तथा गुप्त काल के धर्मग्रन्थों में अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय सब द्विजों (ब्राहमण,क्षत्रिय,वैश्य) का एक वैवाहिक समूह था अर्थात् इन तीनों के लोग आपस में विवाह कर सकते थे ऐसे विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं ब्राह्मण ऋषि च्यवन ने क्षत्रिय राजकुमारी सुकन्या से विवाह किया था। श्यावाम नामक ब्राह्मण मनीषी ने क्षत्रिय शासक रथवीति दार्म्य की कन्या से विवाह किया था।

इस प्रकार द्विजों में अन्तर्विवाह का कारण यह था, कि तीनों वर्ण (द्विज) इण्डो आर्यन प्रजाति के थे और इनके प्रजातीय तथा सांस्कृतिक दृष्टि से समानता थी उस समय केवल शूद्र वर्ण ही एक पृथक समूह माना जाता था। स्मृतिकाल में यद्यपि प्रारम्भ में अन्तःवर्ण विवाहों की आज्ञा थी परन्तु जैसे-जैसे प्रत्येक वर्ण अनेक जातियों तथा उपजातियो में विभक्त होता गया,जीवन साथी के चुनाव का क्षेत्र भी सीमित होने लगा और लोग अपनी ही जाति में विवाह करने लगे। एक ही वर्ण की विभिन्न जातियों में आपस में वैवाहिक सम्बंध स्थापित होने बंद हो गये। गौतम के अनुसार असवर्ण विवाह निम्न था।

मनु याज्ञवालक्य और नारद जैसे लेखकों ने सवर्ण स्त्री से विवाह करने पर श्रेष्ठता की बात कही है।

स्मृति काल के धार्मिक समाज में रक्त की विशुद्धता और धार्मिक क्रियाओं की पवित्रता के फलस्वरूप जातियों या उपजातियों का विभाजन प्रारम्भ हो गया और इस तरह अन्तर्विवाह का अर्थ केवल अपने ही उपजाति में विवाह करने में ही सीमित रह गया धर्मशास्त्रों के युग तक अन्तर्विवाह का अर्थ केवल अपनी उपजाति के सदस्यों से विवाह करना समझा जाने लगा।

पुराणों से भी इस प्रकार के उदाहरण मिलते है जिनसे स्पष्ट होता है कि सवर्ण विवाह का समाज में अत्याधिक मान और महत्व था। मत्स्य पुराण से विदित होता है कि ब्राह्मण कन्या देवयानी ने राजकुलोत्पन्न ययाति से प्रणय विवाह के लिये प्रार्थना की थी जिसे उसने सवर्ण न होने का कारण अस्वीकार कर दिया था।

कालान्तर में जो जातियां और उपजातियां बनी, वे भी क्रमशः अपनी ही जाति में समा गईं। अपनी जाति के बाहर विवाह करने वाले निन्दनीय माने जाने लगे। स्वजाति में विवाह करना सामाजिक प्रतिष्ठा और कुलगत गौरव की बात कही गई। विवाह के सन्दर्भ में जातकों में सर्वत्र जाति एवम् कुल एक साथ विवृत हुये है। बाद में आकर सवर्ण अथवा सजातीय विवाह समाज में अत्यन्त प्रतिष्ठित माना जाने लगा तथा अपने वर्ण और जाति के बाहर विवाह करने को घोर अप्रतिष्ठा और हीनता की बात कही गई।

अन्तर्विवाह के कारण (तालिका क्र01)[98]
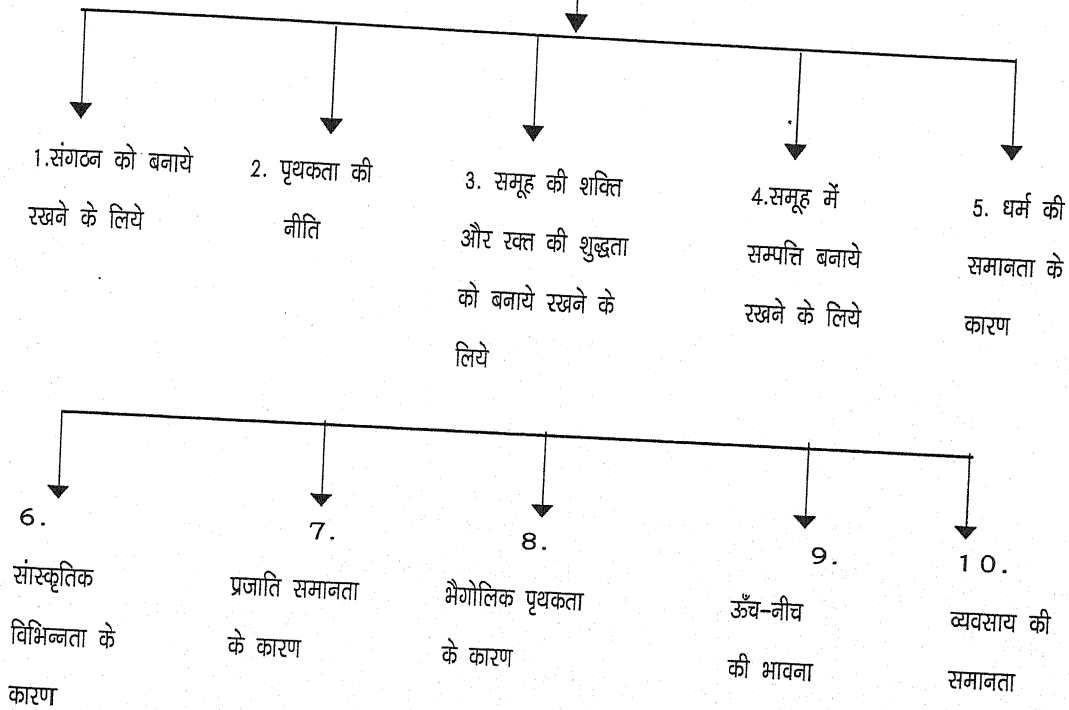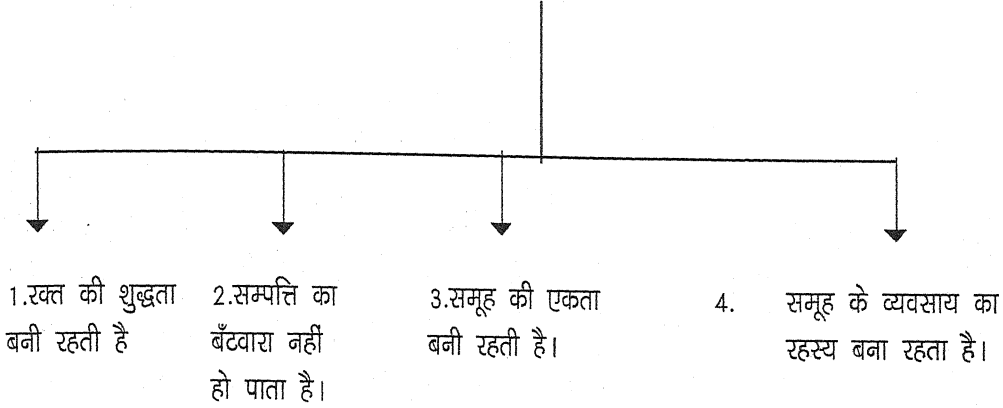
विवाह विभिन्न रूपों में :-

हिन्दू विवाह की मान्यताओं में अनुलोम और प्रतिलोम का नियम इतना महत्वपूर्ण है कि केवल इसी नियम के आधार पर भारत में उच्च वर्णों की श्रेष्ठता को इतने लम्बे समय तक बनाये रखा जा सका।

अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह –

अनुलोम वह नियम है जिसके द्वारा एक पुरूष को अपने वर्ण तथा जाति की स्थिति के आधार के बराबर अथवा उससे निम्न स्थिति की स्त्री से ही विवाह करने की अनुमति प्राप्त होती है उदा0 के लिये अनुलोम नियम के अनुसार एक ब्राह्मण का विवाह ब्राह्मण लड़की के अतिरिक्त क्षत्रिय लड़की तथा शूद्र लड़की से भी हो सकता है। जबकि क्षत्रिय लड़का अपने वर्ण तथा जाति के अतिरिक्त वैश्य तथा शूद्र लड़की से भी विवाह कर सकता है। यदि वर की अपेक्षा लड़की की जाति की सामाजिक स्थिति ऊंची हो तब ऐसे विवाह को प्रतिलोम विवाह कहा जाता है, और ऐसे विवाहों पर स्मृतिकाल के पहले से ही कठोर नियन्त्रण लगाये जाते रहे हैं।

वैदिक युग में वर्ण और जाति का कठोर बन्धन नहीं था, इसलिये इस तरह के विवाह बहुधा हुआ करते थे। इस तरह के वैदिक युगीन साक्ष्य है। भृगुवंशी ब्राह्मण ऋषि च्यवन ने क्षत्रिय राजकुमारी सुकन्या से विवाह किया था।

इसी प्रकार ब्राह्मण विमद तथा राजा पुष्यमित्र की कन्या कामधु का विवाह इसका एक उदाहरण है। ब्राहमण ऋषि अगस्त की पत्नी लोपामुद्रा क्षत्रिय थी। वैदिक युग के बाद ऐसे विवाह निन्दनीय कहे गये तथा समाज में इनका मान कम हो गया। सवर्ण स्त्री की उपस्थिति में असवर्ण स्त्री को धार्मिक कार्य सम्पन्न करने से वंचित कर दिया गया।

समाज में सवर्ण स्त्री प्रतिष्ठित और अभिशासित मानी गयी। ब्राह्मणों को सभी वर्णों की कन्याओं के साथ परिणय का अधिकार था। शास्त्रों के अनुसार अनुलोम से ब्राह्मण तीन (क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र) कन्याओं से, क्षत्रिय दो (वैश्य और शूद्र कन्याओं से) वैश्य मात्र एक (शूद्र कन्याओं से) अतिरिक्त विवाह कर सकता था।

वास्तविकता यह है कि अनुलोम का नियम आरम्भ से काफी उदार था लेकिन जैन और बौद्ध धर्म का ह्रास होने के बाद चारों वर्ण क्रमशः हजारों जातियों में विभाजित हो गये। रक्त की शुद्धता और धार्मिक पवित्रता के आधार पर इन सभी जातियों को भी एक दूसरे की तुलना में उच्च और निम्न समझा जाने लगा। इस आधार पर अनुलोम का नियम विभिन्न व्यक्तियों से सम्बन्धित न रहकर सभी जातियों और उपजातियों की उच्चतम और निम्नतम की धारणाओं से सम्बन्ध हो गया। अनुलोम विवाह का नियम कुलीन विवाह की मान्यता में बदल गया।

अनुलोम विवाह के अनेक ऐतिहासिक उदाहरण मिलते हैं। पुष्यमित्र शुंग के पुत्र अग्निमित्र का विवाह क्षत्रिय नरेश यज्ञकोन की पुत्री मालिविका के साथ हुआ था। ब्राह्मण वंशीय वाकारक नरेश रूद्रसेन द्वितीय ने चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावती से विवाह किया था। स्वकीर्ति नामक ब्राह्मण ने वैश्य कुलीन भानु गुप्ता से शादी की थी। वाकाटक राजा देवसेन के मंत्री सोमनाथ नामक ब्राह्मण ने ब्राह्मण के अतिरिक्त क्षत्रिय स्त्री से भी विवाह किया था।

मनु ने सवर्ण विवाह को सबसे उत्तम माना है परन्तु अनुलोम विवाह को भी मान्यता प्रदान की है।

अनुलोम विवाह के नियम आरम्भ में काफी उदार थे परन्तु जैन और बौद्ध धर्मों के ह्रास के बाद चारों वर्ण क्रमशः हजारों जातियों एवम् उपजातियों में बँट गये। रक्त की शुद्धता और धार्मिक पवित्रता के आधार पर इन सभी जातियों एवम् उपजातियों को भी एक–दूसरे से तुलना में ऊँचा और नीचा समझा जाने लगा। यहीं से अनुलोम विवाह के नियम कुलीन विवाह की मान्यता में बदल गये।

अनुलोम विवाह से हानियां :–

विवाह के क्षेत्र में अनुलोम के नियम ने अनेक गम्भीर सामाजिक समस्याओं ने जन्म दिया है।

1. दहेज प्रथा का प्रचलन अनुलोम विवाह की देन है।
2. कन्या मूल्य की प्रथा विकसित हो गयी।
3. अनुलोम नियम के कारण बहुपत्नी प्रथा का जन्म हुआ।
4. अनुलोम विवाह धीरे–धीरे रूढ़िवादी हो गया, बेमेल विवाहों की अधिक वृद्धि होने लगी।
5. बाल–विधवाओं की समस्या पैदा हुयी।
6. बाल–विवाह को जन्म दिया।

प्रतिलोम विवाह में अनुलोम विवाह के प्रतिकूल धारा बहती है। निम्न जाति का पुरूष उच्च जाति की स्त्री से विवाह करता है। मनु ने प्रतिलोम विवाह की अति निन्दा की है, परन्तु बाद के शास्त्रकारों ने उसे स्वीकार किया है। याज्ञवलक्य ने ब्राह्मण या क्षत्रिय को क्षत्रिय या वैश्य की लड़की से विवाह करने की अनुमति दी है। परन्तु शूद्र कन्या लेने से मना किया है। मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने ही ब्राहमण के शूद्र पत्नी से उत्पन्न पुत्र के अधिकारों का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि प्रतिलोम विवाहों की मान्यता थी।

"बाण ने लिखा है कि चन्द्रसेन और मातृषेण नामक उसके दो पारशव भाई थे जो उसके पिता की शूद्र स्त्री की सन्तान थे। कदम्बवंश के काकुत्स्थ वर्मा नामक ब्राह्मण राजा ने अपनी कन्यायें गुप्त राजाओं को दी थी। दुष्यन्त ने क्षत्रिय होते हुये ब्राह्मण पुत्री शकुन्तला से विवाह

किया था। ''प्रतिलोम विवाह की मान्यता मिलने पर और उसके कुछ उदाहरण मिलने पर यह अवश्य स्वीकार किया जायेगा कि समाज में व्यापक रूप में कभी यह प्रचलित नहीं रहा। प्रतिलोम विवाह को हिन्दुओं ने कभी भी अच्छी दृष्टि से नहीं देखा। इसके उदाहरण अपवाद रूप में ही मिलते हैं धर्मशास्त्रों में तो यहाँ तक उल्लेख मिलता है। कि प्रतिलोम विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली सन्तानों को कोई भी जाति प्राप्त नहीं है। बल्कि वे चाण्डाल या निषाद हो जाते हैं।[99]

प्रतिलोम विवाह में लड़की का कुल जाति या वर्ण लड़के से उच्च होता था। इससे उत्पन्न सन्तान को वर्णसंकर,निकृष्ट और अस्पृश्य कहा जाता था।

मनु का कथन है कि अनुलोम जातियों को तो द्विजों के संस्कारों का अधिकार है परन्तु प्रतिलोम जातियां शूद्र समान होने के कारण इन अधिकारों से वर्जित है। महाकाव्य काल में भी विवाह मूलतया सजातीय ही होते थे। कन्याओं का सवर्ण होना ही श्रेयस्कर समझा जाता था। तथापि अपवादों से स्पष्ट है कि समाज में अन्तर्जातीय विवाह भी हुआ करते थे। महाभारत में शान्तनु तथा सत्यवती का उल्लेख है। जरत्कारू ने नाग कन्या से विवाह किया था भीम ने हिडिम्बा के साथ विवाह किया था। अनुलोम एव प्रतिलोम विवाह वैदिक युग से गुप्त काल तक तथा वर्तमान समय में भी प्रचलित है।

वैवाहिक विधियां एवम् रीति–रिवाज

- वैदिक युग की वैवाहिक रीति
- मौर्य व गुप्तकाल की वैवाहिक प्रथा
- गृहसूत्रों की वैवाहिक विधियां
- विवाहोत्तर संयम

वैवाहिक विधियां एवं रीति रिवाज

1. *वैदिक युग की वैवाहिक रीति –*

विवाह संस्कार का मुख्य उद्देश्य यह है कि विवाहित होने वाले स्त्री पुरूष के सम्बंध को सार्वजनिक एवम् वैध बता दिया जाये। संस्कार के बिना नर–नारी का जो सम्बंध होता है, समाज उसे अवैध, नाजायज एवम् अपने लिये हानिकारक समझता है। ऐसा सम्बंध रखने वालों को समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। अतः न केवल हिन्दू समाज में अपितु मानव समाज के अधिकांश भागों में कुछ ऐसी विधियां आवश्यक समझी जाती है जिनके बाद ही स्त्री पुरूष पति–पत्नी बनकर रह सकते है। इस प्रकार समाज को विवाह संस्कार द्वारा का नियंत्रित किया जाता है, यह नियंत्रण कई प्रकार से हो सकता है।

वैदिक युग की विधियों का विशेष ज्ञान ऋग्वेद के सूर्यासूक्त (10/85) से तथा अथर्ववेद के चौदहवें काण्ड से होता है। इनमें विवाह की सभी विधियों पर प्रकाश डाला गया है। इनमें सबसे पहले अलंकारिक रूप में सोम का वर्णन है (ऋग्वेद 10/85/1–5), (अथर्ववेद 14/1/1–5)। ऋग्वेद में पाणिग्रहण (10/85/36) के केशमोचन (10/85/24) व कन्यादान (10/85/39–41) की विधियाँ हैं किन्तु उनमें अश्मारोहण सूर्यदर्शन, ध्रुवदर्शन आदि का वर्णन नहीं है। अथर्ववेद (14/1/48/52) में पाणिग्रहण का वर्णन है तथा अश्मारोहण का भी तरीका बताया गया है। वेदों में वधू के वस्त्रों (14/1/45) स्नान(1/27) श्वशुरालय गमन (1/60–64) के सम्बंध में बतलाया गया है, किन्तु ध्रुवदर्शन और लाजा होम का वैदिक युग में उल्लेख नहीं है।[100]

अलंकारिक रूप का वर्णन वेदों में है। वधू एवं वर का अलंकरण करने से उनकी छवि में निखार आ जाता है। जिससे उनके बाह्य शारीरिक अंगों में सुन्दरता बढ़ती है। वैदिक युग में वर एवं वधु को स्वर्ण एवं चाँदी के स्थान पर उसको वनस्पतियों से बने हुये अलंकार

पहनाये जाते थे। जिससे उनके शरीर की गरिमा बढ़ सके। अलंकारों का प्रचलन प्रमुख रूप से वैदिक युग में होने वाले विवाहों से हुआ। वैदिक विवाह–रीतियों एवं परम्पराओं का बहुत श्रेष्ठ स्थान है। आधुनिक वैवाहिक रीतियों पर उसका विशेष प्रभाव पड़ा है। वैदिक युग के अलंकार सबसे अलग और महत्वपूर्ण थे।

श्री गंगानाथ झा एवं डी0एस0त्रिवेदी ने वैदिक युगों के अलंकारों का विशेष महत्व बताया है। एडवर्ड मेयर ने भी वैदिक अलंकारों को वनस्पतियों से सम्बन्धित बताया है।

मनुस्मृति में लिखा है – जो स्त्री अपने पति से द्वेष रखती है उसकी एक वर्ष तक प्रतीक्षा करे यदि उसकी प्रकृति नहीं बदलती है, तो पति अपने दिये आभूषण एवं अलंकारों को पत्नी से वापिस लेकर उसके साथ समागम न करे।

''उन्मत्तं पतितं क्लीवमबीजं पापरोगिणम्।
न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापर्वतनम्।।[101]

यदि पति पागल,पतित,नपुसंक या कुष्ठ रोगी हो तो स्त्री को ऐसे पति से अलंकार या आभूषण नहीं लेने चाहिये क्योंकि उसके अलंकार एवं आभूषण अनुपयोगी हो सकते है।

पाणिग्रहण :–

पाणिग्रहण का तरीका वैदिक युग में अतुलनीय एवं श्रेष्ठ था, पाणिग्रहण विवाह की सबसे महत्वपूर्ण एवं आवश्यक विधि है। बिना पाणिग्रहण के विवाह अपूर्ण माना जाता है। पाणिग्रहण के द्वारा वर–वधू, स्थायी रूप से हिन्दू–वैदिक संस्कृति के अनुसार कर्मनिष्ठ हो जाते हैं जिससे उनका जीवन गौरवमयी और गरिमामयी बन सके। इस में पति पत्नी के साथ संविदा करता है कि हम दोनों वृद्धावस्था तक सुखी जीवन व्यतीत करें और देवताओं को इसका साक्षी करता है।[102] इस संस्कार में दूसरा महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य पवित्र अग्नि की परिक्रमा है। जिसका प्रमाण ऋग्वेद में मिलता है।[103]

केशमोचन :-

केशमोचन की क्रिया का विशेष महत्व है। वैदिक युग में विवाह के समय केशमोचन होता था। केश-मोचन में बालों को आकर्षक एवं प्रभावी बताया जाता था। जिससे बाल सुन्दर और स्वस्थ दिख सकें। केश स्त्री की शोभा होते हैं। बिना केशवाली स्त्री में कोई आकर्षण नहीं होता है। वैदिक युग में केशों को फूलों से सजाकर उनमें और निखार लाया जाता था। जिससे उसका वर उसको देखकर प्रसन्नचित हो। केश उसके मस्तिष्क की शोभा थी। वैदिक युग में केश को सजाने संवारने की परम्परा थी। जिससे वधू की केशों के द्वारा अलग पहचान हो।

वधू की विदाई :-

वैदिक युग में वधू की विदाई की परम्परा थी। जब वह अपने वर के घर जाती थी तो उसकी सोच में संकुचितता रहती थी। विदाई के समय वैदिक युग की वधू शालीनता, शिष्टता एवं कुलीनता का परिचय देती थी जिससे उसके संस्कारों का आभास होता था। विदाई के समय माता-पिता के द्वारा वियोग का प्रदर्शन होता था, जिससे सभी के हृदय में करूणा के भाव जाग्रत हो जाते थे। जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मानवीय भावनाओं से जुड़े हुये होते थे। विदाई का दृश्य वास्तव में एक दुःख का प्रतीक होता है। मानवीय मस्तिष्क एवं हृदय पर उसका प्रभाव पड़ता है।

वधू की विदाई माता-पिता की सहमति का प्रतीक है। विदाई एक सहधर्मिता का प्रतीक है, यह वैदिक युग का सामाजिक विधान है। विदाई के द्वारा वर एवं वधू के परिवारों की प्रतिष्ठा एवं गरिमा बनी रहती है।

श्वशुरालय प्रवेश :- "इह प्रियं प्रजया" (ऋग्वेद 10/85/20) वधू का वर के घर में प्रवेश करते समय वैदिक युग में कई प्रकार के मन्त्रों का उच्चारण कर उसको आशीष दिया जाता था। जिससे उसका जीवन सुन्दर और सुखमय व्यतीत हो सके। वैदिक युग में वधू को गृहस्थ जीवन के लिये जागरूकता पैदा करने के लिये कई प्रकार के मन्त्रों एवं ऋचाओं के द्वारा उसकी प्रवृत्ति एवं मनोवेगों को गतिशील बनाया जाता

था। जिससे वह अपने अधिकारों को जान सके एवं वर के परिवार में अपनी प्रतिष्ठा अर्जित कर सके।

वैदिक युग में आहूतियों के माध्यम से वधू को आदर्श और कर्तव्यों का बोध कराया जाता था। जिससे उसके जीवन में नई अनुभूति और अभिव्यक्ति पैदा होती थी।

वैदिक युग में श्वसुराल जाने का विशेष महत्व था, वधू अपने माता-पिता का घर त्यागकर एक नये घर में अपने जीवन की शुरूआत करती थी। वैदिक युग में श्वसुराल पक्ष का विशेष महत्व था वधू की कुछ आकांक्षायें होती थी, जिनको वह अपने वर के सामने रखती थी। वधू ससुराल पक्ष की एक नई आधारक और स्तम्बक होती थी जो मानवीय जीवन के विभिन्न पहलुओं को अपनाकर अपने जीवन को सामंजस्य पूर्ण बनाती थी। वैदिक कालीन सभ्यता और संस्कृति की वैवाहिक रीतियां अन्य युगों से भिन्न थीं, जिनकी सोच और व्यक्तित्व का विकास पूर्ण रूप से वैदिक मन्त्रों और ऋचाओं पर आधारित है। वैदिक काल की वैवाहिक रीतियां सबसे उत्कृष्ट,अनुपम और अतुलनीय मानी जाती है।

अथर्ववेद में पाणिग्रहण संस्कार का विशिष्ट वर्णन किया है। इस समय वैवाहिक रीतियां मौर्य साम्राज्य एवं गुप्तकालीन संस्कृति एवं सभ्यता से भिन्न थी। इस समय वधू को नये वस्त्र पहनाने का प्रचलन था तथा वधू को स्नान कराने की पद्धति थी। इसके बाद वधू श्वसुराल जाती थीं। अथर्ववेद की वैवाहिक रीतियाँ सबसे सर्वोत्तम और उत्तम मानी जाती है क्योंकि इस समय पूरा समाज धर्म में प्रवृत्त था। वैदिक युग की वैवाहिक रीतियाँ विशेष रूप से ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में मिलती है। ऋग्वेद की वैवाहिक रीतियां अथर्ववेद से कुछ हटकर थी। वर-वधू का जीवन स्वच्छता एवं स्वतन्त्रता मे परिसीमित रहता था। वैदिक युग में वर एवं वधू को विवाह के समय यज्ञशाला लाया जाता था। यह समस्त कार्य पुरोहित करता था, तथा वैवाहिक रीतियों की एक अनोखी परम्परा थी।

वैदिक युग की विवाह रीति वैज्ञानिक पद्धति पर थी। विज्ञान का अवष्किार नहीं हुआ था, परन्तु वैदिक वैवाहिक रीतियों की

परम्पराओं की आधारभूमि उत्कृष्ट परम्परा पर थी। विवाह में पारिवारिक एवं सामाजिक प्रधानता एवं प्रभाविता देखने को मिलती थी।

ऋग्वेद में पुरोहित वर-वधू को आशीर्वाद देता हुआ कहता था "तुम यही इसी घर में रहो, वियुक्त मत हो। अपने घर में पुत्रों पुत्री और पौत्रों के साथ खेलते हुये आनन्द मनाते हुये सारी आयु का उपयोग करो।" इस प्रथा का सम्बंध संयुक्त परिवार का प्रतीक है।[104]

ऋग्वेद में वर एवं वधू के जीवन को सामाजिक,आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक दृष्टि से सम्पन्न बनाया जाता था। वास्तव में वैदिक युग की वैवाहिक रीति एवं प्रवृत्ति भौतिकवादिता पर कम ,अध्यात्मिकता पर अधिक टिकी रहती थी। इन रीतियों में शारीरिक एवं मानसिक आनन्द प्रचुर मात्रा में था।

वैदिक युग की वैवाहिक रीतियों में धर्म का समुचित रूप से पालन किया जाता था, तथा विषय सुख की प्रधानता के स्थान पर सुखवादी विचारधारा को अधिक से अधिक व्यापक और सुदृढ़ बनाया गया, जिससे कि पति-पत्नी अपने मानवीय आदर्शों के मूल्यों की रक्षा कर सके। वैदिक युग वर-वधू के मस्तिष्क में उद्वेगात्मक और सौन्दर्यात्मक जीवन को प्रकट करता है। वैवाहिक रीतियों से मानव जीवन का लक्ष्य बनता है, तथा मानव जीवन वैवाहिक रीतियों से शाश्वत और सनातनीय बनता है।

वैदिक युग की वैवाहिक रीतियों का दृष्टिकोण उपयोगितावादी एवं भौतिकवादी नहीं था, बल्कि नैतिकवाद एवं मानवतावाद पर आधारित था।उस समय की वैवाहिक रीतियों में उत्कृष्टता एवं पराकाष्ठा का परिसीमन झलकता था। पति पत्नी जीवन को सुचारू रूप से उत्कृष्ट गति देने के लिये जीवन को साधना क्षेत्र मानते थे। वर-वधू बाद में साधक एवं उपासक बन जाते थे। जिससे उनका जीवन संयमित एवं अनुशासित रहे।

"वैदिक युग में विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति माना जाता था। वैदिक युग में पत्नी का सम्मान था। पत्नी सभी प्रकार के धार्मिक उत्सवों एवं पर्वों में भाग लेती थी"।

उनकी सोच में उत्कृष्टता एवं दृढ़ता थी। वैदिक वैवाहिक रीतियों से अपनायी गयी पत्नी का सम्मान समाज में होता था। पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। वैवाहिक रीतियों में इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है, कि विधवा-विवाह हो सकता था या नहीं।

वैदिक युग की वैवाहिक रीतियों से अपनायी गयी पत्नियों का दर्शन,विचार-धारा एवं सकारात्मकता अन्य युगों की पत्नियों से भिन्न थी। वह अपने जीवन को धार्मिक आदर्शों एवम् धार्मिक कर्म-काण्डों पर केन्द्रीभूत करती थी। जिससे पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन सफलतापूर्वक व्यतीत हो सके। वैदिक युगों की वधुओं में धार्मिक उदारता,पवित्रता एवं परिपक्वता कूट-कूट कर भर दी जाती थी। वे जीवन के कर्म सिद्धान्त पर विश्वास करती थीं। वैदिक विवाह रीतियों में हिन्दू-दर्शन,हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति का स्पष्टीकरण मिलता है।

वैदिक विवाह-रीतियों में विवाह के पहले कुल-देवी एवं कुल-देवता की पूजा की जाती थी। जिससे समस्त देवी देवता उस विवाह में आयें और समस्त कार्य सही और शुभ हो। इसमें मुख्य कारण आध्यात्मिक एवं धार्मिक पक्ष भी था जो मानवीय बिन्दु की पराकाष्ठा पर खरा उतरता था। विवाह के पहले पूर्वजों को भी याद किया जाता था जिससे उनका आशीर्वाद वर एवं वधू दोनों को प्राप्त हो। इसको करने से उनका जीवन सदाचारी, एवं सत्कर्म युक्त बन सके।

मौर्य एवम् गुप्तकाल की वैवाहिक प्रथा :-

मौर्य राजवंश तथा उसके शासन-काल का इतिहास जानने के लिये साहित्य, विदेशी विवरण एवं पुरातत्व लेख एवं अभिलेखों से जानकारी प्राप्त होती है। मौर्ययुगीन वैवाहिक प्रथा का साहित्य ब्राह्मण बौद्ध तथा जैन साहित्य की वैवाहिक प्रथाओं पर विशेष रूप से अपना प्रकाश डालते है। जिसमें ब्राह्मण साहित्य में पुराण, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस प्रमुख है।

मौर्यकाल में कोई भी व्यक्ति अपनी जाति के बाहर विवाह कर सकता था। इस समय आठ प्रकार के विवाहों की प्रथा थी। तलाक पति-पत्नी की सहमति से सम्भव था। पति के बहुत समय तक विदेश

में रहने पर, उसके शरीर में दोष होने पर, पत्नी उसका त्याग कर सकती थी। पुनर्विवाह की प्रथा थी विवाह के समय दिये गये वस्त्र ,आभूषण एवं अलंकार स्त्रीधन माने जाते थे।

"कुलीन परिवारों में बहु-विवाह की प्रथा थी। समाज में अन्तर्जातीय विवाह की प्रथा थी। उच्च जाति के व्यक्ति का अपनी नीची जाति में विवाह की प्रथा थी,तथा अनुलोम विवाह की संस्कृति थी। उच्च वर्ग की कन्या निम्न वर्ग के व्यक्ति से विवाह कर सकती थी। मौर्यकालीन समाज में अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह की प्रथा थी।"[105]

चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानी कन्या के साथ विवाह किया था जो एक नयी वैवाहिक प्रथा थी। वैवाहिक प्रथायें वैदिक कालीन संस्कृति एवं सभ्यता से बिल्कुल भिन्न थी।

प्रत्येक स्त्री कुलीन, सम्पन्न,विनीत भाव से उन्नत,सभ्य, स्थिर बुद्धि, कुशाग्र पुरूष से शादी करने की इच्छा रखती थी। विवाह करते समय मंत्रों की शक्ति का प्रयोग किया जाता था। जिससे पति -पत्नी का जीवन सुखमय व्यतीत हो। वैवाहिक प्रथाओं में शौर्य एवं वीरत्व वाले व्यक्ति को विशेष महत्व दिया जाता था।

मौर्यकालीन समाज की वैवाहिक प्रथायें अन्य राजवंशों से भिन्न थी जैसे शुंग तथा कण्व राजवंश,सातवाहन तथा चेदि,कुषाण राजवंश शक तथा पल्लव वंश।फिर भी मौर्यकालीन वैवाहिक प्रथाओं में कुछ प्रभाव वैदिक कालीन संस्कृति के समय का भी था।

(अ) स्मृति ग्रन्थ :- इसमें अनुलोम विवाह का प्रचलन था।

(ब) नारद एवं पाराशर :- इन स्मृतियों में विधवा-विवाह का समर्थन मिलता था।

गुप्त युगीन समाज में बाल-विवाह का प्रचलन था। विवाह 12-13 वर्ष की अवस्था में हो जाता था। इस समय "नारी को विवाह के समय दार्शनिकों और विद्वानों को चुनने का पूरा अधिकार था।[106] विधवा विवाह एकदम बन्द नहीं हुये थे। पति के मर जाने पर बाला को अक्षतयोनि तथा उसके पुनर्विवाह की प्रथा थी। भार्या पति की सहधर्मी मानी जाती थी। भार्याहीन गृहस्थ

का जीवन शून्य माना जाता था। 'रघुवंश'में अज ने अपनी प्रियतमा को सखी रूचित तथा प्रिया शिष्या कहा है वर के द्वारा वधू के सुख की उपेक्षा करना जघन्य अपराध माना जाता था।

विवाह धर्म का एक आवश्यक अंग था। अविवाह पाप तुल्य समझा जाता था। स्मृतियों में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है।

गुप्त कालीन समाज में विवाह के प्रकार
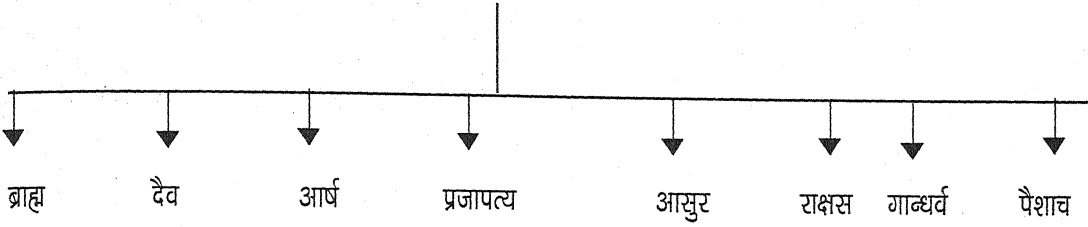
इन सभी विवाहों की प्रथायें भिन्न-भिन्न थी इनमें चार प्रकार के विवाह अप्रशस्त एवं शास्त्र विरूद्ध माने जाते थे।

वात्सायन के 'कामसूत्र' में 'कोर्टशिप' की प्रथा का उल्लेख मिलता है।[107]

गृहसूत्रों की वैवाहिक विधियां –

हिन्दू विवाह को गृहसूत्रों ने क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित किया। पुरानी विधियों में कुछ नयी विधियां जोड़ी गयी। गृहसूत्रों के अनुसार वर, वधू के घर प्रस्थान करता था जहां पर विवाह सम्पन्न होता था। आपस्तम्ब गृहसूत्र में इन विधियों का उल्लेख निम्न प्रकार से है।

1. **वर-वधू परीक्षा :-** इसमें दो बातें आती है।
   (क) वर के गुण :- कुलीनता,सच्चरित्रता,सौभाग्य,विधा,स्वास्थ्य आदि।
   (ख) वधू के गुण :- कुलीनता,निरोगता कटिक्षीणता, कुशाग्रबुद्धि लावण्य, और सौभाग्य।
2. **वर-प्रेषण :-** धर्मशास्त्रों में वर पक्ष कन्या पक्ष के पास तथा कन्या वर पक्ष के पास जाया करते थे। कोई आवश्यक नहीं कोई एक पक्ष ही इसके लिये जाये।
3. **वाग्दान :-** वर पक्ष कन्या पक्ष के पास जाये अथवा कन्या पक्ष वर पक्ष के पास जाये, वार्ता के उपरान्त अन्तिम निर्णय को वाग्दान कहते

हैं। कन्या पर उसके पिता अथवा अभिभावक का स्थान मुख्य होता था। अतएव विवाह के सम्बंध में अन्तिम निर्णय देने का अधिकार उसी को था। उसी का निर्णय अन्तिम निर्णय माना जाता था। लेकिन आजकल दशा इसके विपरीत हो गयी है। अब अन्तिम निर्णय पिता या वर के अभिभावक करते हैं।

4. **मण्डपकरण–** विवाह के पूर्व मण्डप का निर्माण किया जाता है। शास्त्रकारों ने घर के बाहर मण्डप के निर्माण की बात कही है। लेकिन आजकल मण्डप घर में बनाया जाता है। मण्डप में हल पटेला,हरा बाँस,फूस तथा मूँज का उपयोग किया जाता है।

5. **नान्दी श्राद्ध और पुरायाहर्वोचन :–** यह कार्य वर्तमान समय में पूर्णरूप से लोप हो गया है।

6. **वधू गृह गमन :–** वर कन्या के घर जाता है।उसके साथ बन्धु बान्धव तथा स्वजन आदि सभी आते हैं। आजकल इस बारात में काफी खर्च किया जाता है।

7. **मधुपर्क :–** विवाह के लिये वर बारातियों के साथ वधू के घर पर पहुँचता हैं। यह रिवाज वैदिक–काल से गृहसूत्रों के काल तक चला आ रहा है। अथर्ववेद में एक अलंकारिक विवाह का वर्णन है, उस विवाह में कौन बराती (जन्या) थे और कौन दूल्हा था। बारात के साथ साथ वर द्वारा वधू के घर पहुँचने पर उसका स्वागत किया जाता था। पारस्कर गृहसूत्र के मत में वर आदर देने योग्य (सत्कार करने योग्य) होता है। अतः जब वह द्वार पर आता है तो वधू पक्ष के लोग उससे कहते है कि आप अच्छी तरह बैठिये,हम आपका सत्कार करेंगे। वधू पक्ष वाले वर को बैठाने के लिये आसन,पांव धोने और आचमन करने के लिये जल (अर्ध) तथा मधुपर्क देते हैं।

मधुपर्क प्राचीन काल में सम्मानीय व्यक्तियों को दिया जाता था। पारस्कर गृहसूत्र में ऋत्विक, वर स्नातक,राजा और प्रिय व्यक्तियों को मधुपर्क के सम्मान के योग्य समझा गया है। बौधायन में अतिथियों को भी इसी योग्य समझा जाता है।

8. **स्नापन परिधापन और सम्नहन :–** विवाह के समय कन्या को सबसे पहले स्नान कराया जाता है। उसके पश्चात् वर–वधू को वस्त्र पहनाये जाते हैं। उस समय जरांगच्छ तथा याअकृन्तन्नवयन के मन्त्रों का पाठ करता है।दोनों मन्त्रों का अर्थ इसी प्रकार से है। हे कन्या तू वृद्धावस्था तक पहुँचने वाली हो (मेरे दिये हुये) इस वस्त्र को तू पहन कामादि से

खिंचे हुये व्यक्त्तियों के बीच में उनके अभिशाप से अपनी रक्षा करने वाली हो, 100 वर्ष तक जीवित रहे तेजस्विनी होकर धन और पुत्रों का संग्रह कर, हे आयुष्मती इस वस्त्र को धारण कर।'' दूसरे मन्त्र में कहा गया है ''ये वस्त्र वर के घर की स्त्रियों द्वारा काते और बुने गये हैं। वे तुझे बुढ़ापे तक ऐसे वस्त्र पहनाती रहे। जिन देवियों ने इस वस्त्र के सूत को काता है जिन्होंने इसके सूत फैलाये हैं जिन देवियों ने दोनों ओर ताने–बाने में इसे फैलाया है वे देवियां तुझे वृद्धावस्था पर्यन्त ऐसे ही वस्त्र पहनाती रहे। हे आयुष्मती इस वस्त्र को पहन धर्म की मेखला पहनाना काठक और पारस्कर ने आवश्यक बताया है।

9. **समंजन** :– वर–वधू का मन्त्र उच्चारण के साथ आमने–सामने बैठाकर उनके दृश्यों के समंजन की कामना की जाती है।

10. **प्रतिसरबंध** :– रोली रंजित–सूत्र कन्या की कलाई में बांधा जाता है साथ में आर्यमंजित अक्षत की छोटी पोटली बाँधी जाती है। कहीं–कहीं लोहे का छल्ला भी बांधा जाता है।

11. **वधू वर निष्क्रमण** :– घर के एकान्त स्थान में वर–वधू का निष्क्रमण मंडप में कराया जाता है।

12. **परस्पर समीक्षण** :– पारस्कर गृहसूत्र कन्यादान के समीक्षण की विधि का वर्णन करता है। आश्वलायन गृहसूत्र परिशिष्ट में परस्पर समीक्षण की विधि का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। एक अलंकृत घर में खूब मंगल गीत गाये जाते है तथा वर को पूर्वाभिमुख तथा वधू को पश्चिमाभिमुख करके दोनों के बीच में एक मांगलिक परदा (स्वास्तिका, तिरस्करिणी) डाल दें। इस समय ब्राहमण सूर्यसूक्त का पाठ करें। स्त्रियां मंगल गीत गायें और निश्चित समय पर ज्योतिर्विद परदे को उठा दे, वर एवं वधू एक दूसरे पर गुड़ जीरे को फेंके तथा विभिन्न मन्त्रों का उच्चारण करें। लघु आश्वलायन स्मृति में भी इसी तरह वर–वधू द्वारा एक दूसरे का निरीक्षण करने का वर्णन है। इसी विधि को आपस्तम्ब गृहसूत्र एवं बौधायन गृहसूत्र में भी दिया गया है।

13. **कन्यादान** :– कन्यादान का गृहसूत्रों में वर्णन है। कन्या का पिता इस अवसर पर वर से कहता है कि वह अपनी विवाहिता के प्रति ध र्म, काम में मिथ्या व्यवहार न करे। वह उत्तर देता है, मैं ऐसा न करूँगा (नाति चरामि)।[108]

कन्यादान गृहसूत्रों के अनुसार पवित्र विवाह संस्कार का एक विधान है। इसके बिना विवाह अपूर्ण माना जाता है। कन्यादान की परम्परा का वैदिक काल से लेकर आज भी समाज में महत्व बना हुआ है कन्यादान को वधू पक्ष के परिवार के लोग ही सम्पन्न करते हैं। आश्वलायन गृहसूत्रों के अनुसार, वर कन्या को लेते समय कहे कि तुझे धर्म और प्रजा की प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूँ (धर्म प्रजा सिद्ध्यर्थ त्वा प्रतिगृहणामि) इस समय कन्या का पिता वर से कहता है। "तू इस पत्नी के प्रति धर्म,अर्थ,और काम के कर्तव्यों को पूरा करने में कोई उपेक्षा या ढील नहीं करना।

14. **अग्नि स्थापना और होम :-** अग्नि स्थापना विवाह की आवश्यक विधियों में से एक है। अग्नि देवता को साक्षी बनाकर किये गये विवाह अविच्छेद समझे जाते थे। होम को इतना महत्व देते हुये उसकी आहुतियों के स्वरूप और संख्या में मतभेद है। पारस्कर के मत में अग्निहोम की सामान्य आहुतियों के बाद राष्ट्रभृत होम की 12 आहूतियाँ दी जाती हैं, फिर जापाहोम की 13 आहूतियां और अभ्यातान होम की 18 आहूतियां दी जाती है। राष्ट्रभृत का अर्थ है राष्ट्र का पोषण करने वाला, अभ्यातान का अर्थ है वैयक्तिक सर्वांगीण विकास करने वाला। राष्ट्रभृत परार्थ के लिये है, अभ्यातान स्वार्थ के लिये। इन दोनों के समन्वय से विजय प्राप्त होती है। यहाँ पहले सामूहिक प्रार्थना की गयी है और बाद में वैयक्तिक याचना इससे यह स्पष्ट होता है। कि हमें राष्ट्रहित को वैयक्तिक हित से ऊँचा रखना चाहिये।"

पणिग्रहण होम के बाद पाणिग्रहण होता है :-

पाणिग्रहण विवाह की इतनी आवश्यक विधि है कि पाणिग्रहण और विवाह एक दूसरे के पर्याय समझे जाते है। इस विधि में वर-वधू एक-दूसरे का हाथ पकड़ते हुये जीवन भर एक दूसरे के साथ इकट्ठे रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। पति पत्नी से कहता है, देवताओं ने तुम्हारा शरीर मुझे इस लिये दिया है कि मैं तुम्हारे साथ गृहस्थ के कर्तव्यों को पूरा कर सकूं।[109] पाणिग्रहण केवल हिन्दू विवाह की ही विशेषता नहीं हैं, अपितु रोमन तथा जर्मन जातियों में भी इस प्रथा का प्रचलन है। यह विधि वर-वधू के सम्बंध को दृढ़ बनाने वाली समझी जाती है।

पाणिग्रहण के सम्बंध में आश्वलायन गृहसूत्र की विधि सबसे अधिक संक्षिप्त है। उसका पहले वर्णन करके फिर गोभिल गृहसूत्र की विधि का वर्णन किया गया है। आश्वलायन की विधि में यह बात मनोरंजक है कि वह पुत्र और पुत्री प्राप्त करने के लिये विभिन्न प्रकार के पाणिग्रहणों का वर्णन करता है वह कहता है कि अग्नि प्रतिष्ठापन के बाद पत्थर को रखकर उत्तर पूर्व में पानी का घड़ा रखे,फिर वह आज्याहुति दें, वह पूर्व दिशा में मुख किये हुये,पश्चिम की ओर मुख करके बैठी हुई वधू के अंगूठे को 'गृहणामि ते सौभागत्वाय' मंत्र के पाठ के साथ पकड़े। यदि वह यह चाहता है कि उसकी सन्तानें पुत्र ही पैदा हों तो वह वधू का अंगूठा पकड़े यदि वह पुत्री चाहता है। तो उसकी अंगुली पकड़े। यदि वह लड़का-लड़की दोनो चाहता है तो बाल वाली तरफ से (हथेली की उल्टी ओर से) वधू के अंगूठे सहित हाथ पकड़े। पाणिग्रहण के मन्त्र का पूरा अर्थ इस प्रकार है-''मैं तेरा हाथ सौभाग्य के लिये पकड़ता हूँ । तुम मुझे पति के साथ बुढ़ापे तक पहुँचाने वाली हो,आर्यमा,सविता और पुरंध्रि देवताओं ने गृहस्थ के कर्तव्यों का पालन करने के लिये मुझकों तेरा दान किया है। ''गोभिल में भी पाणिग्रहण की विधि में यह मंत्र पढ़ने का वर्णन है।

गृहसूत्रों में विभिन्न प्रकार के मन्त्रों से पति पत्नी के बीच में समन्वय और सामंजस्य की प्रक्रिया को एवम् विधान का परिसीमन किया जाता था। गृहसूत्रों के समस्त मन्त्र विवाह पद्धति के लिये उपयोगी हैं एवम् उद्देश्यपूर्ण हैं। इनमें पति पत्नी से कहता है कि मैं तुझे गार्हपत्य या सन्तानोत्पत्ति रूपी गृहस्थ के प्रधान कर्तव्य के लिये ग्रहण करता हूँ, तू धर्मपूर्वक मेरी पत्नी है। सन्तानोत्पत्ति धर्म है और उस धर्म के पालन के लिये तू मेरी पत्नी बनी है,भोग विलास या काम वासना पूर्ति के लिये पत्नी नहीं बनी है। पति का दूसरा मुख्य कर्तव्य यह है, कि वह पत्नी और बाल बच्चों का पोषण करे। परिवार का पालन पति का एक आवश्यक कर्तव्य है। इसलिये वह पत्नी को अपने द्वारा पोषित होने वाली (ममेयमस्तु पोष्या)कहता है।

पति और पत्नी मानसिक दृष्टि से एक और अभिन्न होते हैं और उनमें यह अभिन्नता इतनी अधिक होती है कि वर कहता है–किसी भी प्रकार का संकट उपस्थित होने पर मैं चोरी से या अलग कभी किसी वस्तु का उपभोग नहीं करूँगा।

अग्निपरिणयन (फेरे) –

आश्वलायन के अनुसार वर अग्नि और जल के घड़े को अपनी दायीं तरफ रखता हुआ वधू से अग्नि की प्रदक्षिणा करवाता है। इन प्रदक्षिणाओं के समय वह "अमोऽहमस्मि" के मंत्र का पाठ करता हैं इस मन्त्र का यह अर्थ है–मैं यह हूँ,तू वह है मैं यह हूँ। हम दोनों एक दूसरे के प्रति प्रेम रखते हुये उत्तम मनवाले होकर 100 वर्ष तक जीयें। "अग्नि की प्रदक्षिणा विवाह का आवश्यक अंग है। यह प्रदक्षिणा लाजाहोम के समय और उसके बाद भी की जाती है। इन परिक्रमाओं की संख्या चार है। अग्नि के चारों ओर परिक्रमा करते समय कन्या का भाई जलकलश लेकर उनके पीछे चलता है। अग्निकांड से रक्षा के अतिरिक्त इसका गम्भीर अर्थ यह है कि यदि कभी किसी आकस्मिक कारण से पति–पत्नी में कलहअग्नि प्रज्वलित होगी तो घर के आदमी इस शीतल जल की तरह ठंडे दिमाग से काम लेते हुये मधुर, सात्वनादायक एवं शीतल वचनों से उस अग्नि को बुझाने का यत्न करेंगे। परिक्रमा की प्रथा अन्य देशों में भी पायी जाती है। फेरे के समय पत्नी को देवी रूप में समझा जाता है ताकि ब्रह्म लोक में पहुँच सकें, पति को पतिलोक के रूप में और पत्नी को ब्रहमलोक के रूप में देखा जाता है। वास्तव में दोनों का एक ही अर्थ है क्योंकि दोनों धारायें मिलकर एक नवीन संस्कृति का निर्माण करती हैं।

अस्मारोहण –

अग्नि प्रदक्षिणा करते हुये प्रत्येक फेरे में वर –वधू को पत्थर की शिला पर चलाया जाता है और वर कहता है "कि इस पर चढ़,पत्थर की तरह स्थिर रह,शत्रुओं पर विजय पा,शत्रुओं को कुचल ।"[110] अस्मारोहण की विधि का आशय यह है कि "हे वधू तू पाषाण के समान दृढ़ हो, अपने पर आक्रमण करने वाले व्यक्ति का दृढ़तापूर्वक मुकाबला कर,उसे और उसे इस पत्थर की तरह अपने पाँव के नीचे रौंद

डाले तथा शत्रुओं को मुँहकी दे।'' अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में तू पुरुष पर ही आश्रित मत रहना,अपने आप भी इस कार्य में समर्थ बनना और इस कार्य के लिये अपने शरीर को पत्थर के तुल्य मजबूत बनाना । अश्वालायन में इसका वर्णन इस प्रकार है, तेरा प्रेम मेरे प्रति इतना दृढ है जितना कि वह पाषाण शिला है।[111]

लाजाहोम तथा केशमोचन–

आश्वलायन के मतानुसार वधू का भाई या भाई के स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति खीलों को वधू की अंजलि में दो बार डालता है,यदि वर का गोत्र जमदग्नि है तो तीन बार वधू की अंजलि में खीलों को डालता है। इस समय वर यह मन्त्र पढ़ता है–कन्या ने अर्यमा देवता का यज्ञ किया हैं अर्यमा इस कन्या को यहाँ (पितृगृह) से मुक्त करे। वहाँ (पतिगृह) से मुक्त न करें कन्याओं ने वरूण देवता का यज्ञ किया, वह इस कन्या को यहाँ से छुड़ा दे,वहाँ से न छुड़ाये,कन्याओं ने पूषा देवता का यज्ञ किया है इन मन्त्रों के साथ वधू की अंजलि को बिना खोले वर खीलों को डालता है,अग्नि की प्रदक्षिणा किये बिना चौथी बार मौनभाव से खीलों की आहुति देता है। इसके बाद वह वधू के बालों की दो लटों को यदि वे बंधी है तो खोलता है। दाहिनी लट को ऋग0मन्त्र 10/85/24 के मंत्र से तथा बायी लट को 'प्रेतों मुच्चाभि'(ऋग010/85/25) के मन्त्र से खोलता है।

पारस्कर गृहसूत्र में लाजाहोम के सम्बन्ध में यह बात विशेष बतायी गयी है कि लाजा में शमी के पत्ते भी मिला देने चाहिये। आश्वलायन गृहसूत्र के मन्त्र के अतिरिक्त उसने दो मंत्रों का और विधान किया है। इनका यह अभिप्राय है कि मेरा पति आयुष्मान हो और मेरे भाई–बन्धु बढ़ें। हे पति,मैं तेरी समृद्धि करने वाली इन खीलों को अग्नि में डालती हूँ। मेरा और तेरा जो अनुराग है, अग्नि देव उसकी अनुमति दें। लाजाहोम में वधू अर्यमा, वरूण, पूषा, अग्नि देवताओं के लिये अग्नि में खीलों की आहुति देती थी जिससे उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय हो।[112]

सप्तपदी –

लाजाहोम के बाद विवाह की अत्यन्त महत्वपूर्ण सप्तपदी विधि

प्रारम्भ होती है। वर वधू को पूर्वोत्तर दिशा (अपराजितादिक) में सात कदम ले जाता है और प्रत्येक कदम के साथ वह यह वचन कहता है–

1) अन्न के लिये एक कदम उठाने वाली हो,
2) बल के लिये दूसरा कदम उठाने वाली हो,
3) सम्पत्ति के पोषण के लिये तीसरा कदम,
4) आनन्दमय होने के लिये चौथा कदम,
5) सन्तान के लिये पांचवां कदम,
6) ऋतुओं (नियम पालन या दीर्घ जीवन) के लिये छठा कदम,
7) तू मेरी मित्र बनने के लिये सातवां कदम उठा,

तू मेरे अनुकूल व्रत रखने वाली या मेरा अनुसरण करने वाली हो । हम बहुत से पुत्रों को प्राप्त करें, वे बुढ़ापे की आयु तक पहुँचे। सप्तपदी के समय वर कहता है कि जीवन की स्फूर्ति, शक्ति, सन्तान, दीर्घ सौभाग्यपूर्ण जीवन के लिये हम यह सात कदम रख रहे हैं। तुम मेरी जीवन संगिनी बनो जिससे हम दीर्घायु होकर धार्मिक कृत्य कर सकें और सन्तान उत्पन्न कर सकें।[113]

सप्तपदी विवाह का महत्वपूर्ण अंग है। इसमें वर को गृहस्थ के आवश्यक कर्तव्य बताये गये है। गृहस्थ में सबसे पहले अन्न की प्राप्ति के लिये यत्न करना पड़ता है, अन्न प्राप्ति के अभाव में धर्म कार्य तो क्या,जीवन यात्रा का निर्वाह कठिन हो जाता है, अतः सबसे पहले अन्न आवश्यक है किन्तु वह ऐसा होना चाहिये जिससे शरीर को बल पुष्टि और शक्ति मिले। इसके अतिरिक्त गृहस्थ को धन के लिये भी यत्नशील होना चाहिये और वह धन सुखमय बनाने वाला हो। ये बातें पहले चार मंत्रों में कही गयी हैं। पाँचवें पग में गृहस्थ के मुख्य लक्ष्य सन्तानोत्पादन की ओर संकेत किया गया है। छठे पग में सब कामों की नियमपूर्वक समय पर करने का संकल्प है और सातवीं प्रतिज्ञा सबसे महत्वपूर्ण है कि पत्नी पति की सखी या मित्र बनकर रहे।

मूर्धाभिषेक –

इसमें केवल वधू के सिर पर जल छिड़कते हैं।[114] सातवां पद पूर्ण होने पर दोनों के सिर मिलाकर आचार्य उनके सिर पर पानी के

घड़े से पानी छिड़कता है। वधू को उस रात को ऐसी ब्राह्मणी के घर रहना चाहिये जिसका पति और पुत्र जीवित हो (आश्वलायन गृहसूत्र 1/7/20–21 यह नियम उसी दिशा में लागू होता है। जब वर दूसरे गांव का हो और वधू को उसी रात अपने घर न ले जा सकता हो। आश्वलायन गृहसूत्र (1/8/5) व गोभिल गृहसूत्र में भी यह विधि पायी जाती है। पारस्कर 'आपहः शिवानः, आपो हिष्ठाः'' मन्त्रों के साथ इस विधि को करने का आदेश देता है। पारस्कर के टीकाकार जयराम के अनुसार जल छिड़कने वाला वर,आश्वलायन गृहसूत्र के टीकाकार के अनुसार आचार्य और गोभिल गृहसूत्र के मत में पानी का घड़ा उठाने वाला होता है।

सूर्यदर्शन व हृदयस्पर्श–

पारस्कर गृहसूत्र के अनुसार जल सेचन और ध्रुवदर्शन के बीच में सूर्यदर्शन और हृदयस्पर्श की दो विधियां और हैं। पारस्कर गृहसूत्र में कहा गया है–इसके बाद वर वधू 'तच्चक्षुर्देवहितं' मंत्र के साथ सूर्यदर्शन कराये। सूर्य दर्शन के समय वर–वधू यह संकल्प करते है कि हम सौ वर्ष तक नेत्र शक्ति सम्पन्न रहें,100 वर्ष तक जियें 100 वर्ष तक श्रवण और वाणी की शक्ति से युक्त हो, सौ वर्ष तक अदीन होकर रहें और 100 वर्ष से अधिक आयु तक ये सब कर्म करें।''

हृदयस्पर्श में वर–वधू के दायें कन्धे पर से अपना दायां हाथ ले जाते हुये उससे वधू के हृदय को स्पर्श करते हुये''मम व्रते ते हृदयं दधामि'' मंत्र का पाठ करता है। पूरे मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है–''हे वधू मैं तेरे हृदय को अपने व्रत के अनुकूल धारण करता हूँ। मेरे चित्त के अनुकूल तेरा चित्त रहे। तू एकाग्र मन से मेरी सेवा कर। प्रजा का पालन करने वाला परमात्मा तुझे मेरे लिये नियुक्त रखे''।

हृदय स्पर्श के बाद वर–वधू के मस्तक पर हाथ रखकर लोगों से 'सुमंगलीरियं वधू'' के मन्त्र द्वारा यह कहता है कि इस कल्याणकारिणी वधू को आशीर्वाद देकर अपने–अपने घर जाओ। आश्वलायन गृहसूत्र ने इस विधि को ध्रुवदर्शन के बाद लिखा है,वास्तव में यह पहले होनी चाहिये,क्योंकि हृदयस्पर्शी के बाद पहली विधि समाप्त हो जाती है।

आश्वलायन गृहसूत्र जल सेचन के बाद पूर्वविधि को समाप्त कर देती है और कहता है कि वे दूसरे ग्राम को जाते हुये रात को ब्राह्मण के घर में ठहरें।

पारस्कर इसके बाद वधू को सुरक्षित घर में बिठाने तथा अपनी जाति में प्रचलित अन्य विधियों को करने का आदेश देता है वे गांव के लोगों,वृद्धों और स्त्रियों द्वारा कही गयी बातों का पालन करें,क्योंकि विवाह में और श्मशान में गांव वालों के वचन को प्रमाण मानना चाहिये,ऐसा श्रुति में कहा गया है। इसके बाद वर ब्राह्मण होने पर आचार्य को गौ का, क्षत्रिय होने पर ग्राम का,वैश्य होने पर घोड़े का दान करे।

ध्रुवदर्शन–

जब वधू अरुन्धती और सप्तर्षि को देखे तो वह यह कहे कि मेरा पति जीवित रहे और मैं सन्तान प्राप्त करूँ। ध्रुवदर्शन विधि को आश्वलायन गृहसूत्र की अपेक्षा पारस्कर और गोभिल गृहसूत्र ने अधिक स्पष्ट किया है। पारस्कर गृह सूत्र के अनुसार वर सूर्यास्त होने पर वधू को ध्रुवदर्शन कराता है और वह कहता है कि'' तू ध्रुव है, मैं तुझे निश्चल या स्थिर देखता हूँ गृहस्थ धर्म में स्थिर रहने वाली तेरा मैं पालन करूँगा। मुझमें तू बुद्धि को प्राप्त हो। इसीलिये बह्मा ने मुझे तेरा दान किया है। अतः तू मुझ पति के साथ पुत्र पौत्र युक्त होती हुई 100 वर्ष तक जीवन बिता। '' गोभिल गृह सूत्र (2/3/8–32) के अनुसार पति–पत्नी को ध्रुव का दर्शन करायें।ध्रुव दर्शन एक प्राचीन परम्परा है जिसमें कि वर और वधू के जीवन को एक निश्चित और निश्चल श्रेणी के सोपानों में बांधा जाता है। पौराणिक ग्रन्थों में ध्रुवदर्शन का वर्णन मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में ध्रुवदर्शन के उद्‌देश्य को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि जैसे यह ध्रुवलोक स्थिर है, पृथ्वी निश्चित है, यह सारा जगत अविचल है, यह पर्वत अपनी स्थिति में स्थित है, वैसे ही यह स्त्री पति कुल में स्थिर हो।

इस विश्व में सबसे अधिक स्थिर वस्तु ध्रुव है और उसके आदेश को दिखाते हुये वर–वधू से कहा गया है कि वे अपने गृहस्थ धर्म में स्थिर बने रहें।

वधू की विदाई और रथारोहण –

आश्वलायन के मत में यदि (वर और वधू को दूसरे गांव तक जाने के लिये) यात्रा करनी हो तो "पूषा त्वेतो नयतु" (ऋ010/85/26) मन्त्र के साथ वधू को रथ पर बिठाये (आश्वलायन 1/8/9) पूरे मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है,"हे कन्या ,पूरा हाथ पकड़कर तुझे यहां (पितृगृह) से ले जायें। अश्विनी तुझे रथ से अच्छी प्रकार ले जाये,तू अपने पति के घर को जा ताकि तू घर की स्वामिनी बने, पति को वश में करने वाली और यज्ञ,सभा आदि में अच्छी तरह बोलने वाली हो। " यदि मार्ग में नदी पड़ती हो तो 'अश्मन्वती रीयते' (ऋ010/53/8) के पूर्वार्ष से वधू को नाव पर चढ़ाये और उत्तराधि से वधू को पार कराये। इस मन्त्र का आशय इस प्रकार है– "हे मित्रों,पथरीली नदी बह रही है उत्साह युक्त होओ,उठो,नदी को अच्छी तरह पार कर जाओ। जो कुछ दुखदायक तथा अमंगल है हम उन्हें यहीं नदी पर छोड़ते है हम कल्याणकारी पदार्थों को प्राप्त करते हैं।"यदि वधू पितृ गृह से विदा होने पर रोये तो"जीवं रुदन्ति" (ऋ010/40/10) का पाठ करे। वे विवाह की अग्नि को निरन्तर आगे ले जाते है। सुन्दर प्रदेश,वृक्ष चौराहा आने पर " मां विदन्परिपन्पिनः" (ऋ010/85/32) चोर,डाकू, बदमाश प्राप्त न हो) के यन्त्र का पाठ वर वधू करे। मार्ग में प्रत्येक बस्ती में दर्शकों को "सुमंगलीरियम वधूः" (ऋ010/85) के मन्त्र के साथ वधू को दिखाये (आश्व0गृ0सू0 1/8/2-7)

वधू का श्वशुरालय प्रवेश :–

'इह प्रियं प्रजया' (ऋ010/85/20) मंत्र के साथ वर-वधू को अपने साथ घर में प्रविष्ट कराये। इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार है – हे वधू इस पतिकुल में सन्तान के साथ तेरा सुख खूब बढ़े। इस घर में तू गृहस्थ के कार्यों के लिये सदा जागरूक रहे। तू इस पति के साथ अपने पति का संसर्ग कर,वृद्धावस्था को प्राप्त होते हुये, तुम दोनो पति पत्नी ज्ञानगोष्ठियों में बोलने वाले होओ।" इसके बाद (समिधाओं से) विवाह की अग्नि को प्रदीप्त कर पश्चिम दिशा में बैल का चर्मासन बिछाये। उसके बालों वाले हिस्से को ऊपर रखे और उनकी गर्दन पूर्व की ओर रखे। वधू उस आसन पर बैठ जाये और वर के हाथ पकड़

ले। वर चार ऋचाओं से चार आहुतियाँ दे। ये चार आहुतियां 'आ नः प्रजां जनयतु'(10/85/43-46) आदि चार मंत्रों से होती है। इनमें गृहस्थ का आदर्श और कर्तव्य भली-भाँति अभिव्यक्त हुये हैं। इन मंत्रों का अर्थ इस प्रकार है,"हे वधू प्रजापति हमारी सन्तान को उत्पन्न करे। अर्यमा देवता जरावस्था तक जीने के लिये हमें समर्थ बनायें। हम मंगल प्राप्त करें। मनुष्य और चौपायों के लिये सुखवार हो। पति का हनन न करने वाली तथा प्रायः प्रिय दृष्टि बाली,वीरों को उत्पन्न करने वाली,देवर की कामना करती हुई सुख वाली हे वधू,तू हम मनुष्यों व हमारे चौपायों के लिये मंगलकरिणी हो। हे ऐश्वर्ययुक्त वर, तू इस वधू को उत्तम पुत्र युक्त और सुन्दर सौभाग्य वाली बना। हे वधू,तू ससुर के लिये सम्यक् प्रकाशमान या रानी हो, सास,व नन्द और देवरों के साथ रानी बनकर रह।"

'फिर वर 'विश्वेदेवाः' मन्त्र के साथ कुछ दही खायें और बाकी दही वधू को दे दें अथवा यज्ञ से बचे हुये घी को वह अपने तथा वधू के हृदय पर लगायें। 'विश्वदेवाः'मन्त्र का अर्थ यह है – सब देवता हमारे हृदयों को मिलायें उन्हें संगत करे, वायु देवता तथा उत्तम उपदेश करने वाला धाता हम दोनों का जीवन सम्यक् प्रकार से धारण कराये। "यह विधि वर-वधू के अभिन्न या एक होने को सूचित करती है।

त्रिरात्रवृत या विवाहोत्तर संयम –

आश्वलायन के अनुसार इसके बाद पति-पत्नी क्षार और लवण न खायें। ब्रहमचारी रहें, आभूषण न धारण करें और जमीन पर सोयें। विवाह के बाद 3 या 2 रात तक इस नियम का पालन करे अथवा कुछ आचार्य एक वर्ष तक इस नियम के पालन का उपदेश करते हैं। वे आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार एक ऋषि जैसा पुत्र उत्पन्न होगा। इस प्रकार व्रत पूरा करने पर वर सूर्यासूक्त को जानने वाले को वधू वस्त्र दान करे। ब्राहमणों को दान दें तथा उनसे स्वस्तिवाचन का पाठ करायें। आश्वलायन गृहसूत्र की अन्तिम विधि का पारस्कर गृहसूत्र में भी समर्थन किया गया है।

विवाहोत्तर संयम –

विवाह के उपरान्त पति तथा पत्नी को संयमित एवं अनुशासित रहना चाहिये जिससे उनका जीवन सुन्दर व स्वच्छ गुजरे संयम बरतने से अच्छी हुष्ट–पुष्ट एवं कुलीन सन्तान पैदा होगी। जिससे परिवार में हंसी–खुशी होगी। पति और पत्नी एक–दूसरे के पूरक है। सहचर्य करने के वैदिक साहित्य में विभिन्न प्रकार के मंत्र एवं पद्धतियां बतायी है कि किस प्रकार से आपस में मिलें कि संयम और अनुशासन, जीवन का श्रेष्ठ गुण हो,बिना संयम और अनुशासन के जीवन अपूर्ण माना जाता है। सयमित जीवन से स्वास्थ्य सुन्दर व स्वच्छ होता है। जीवन में किसी भी प्रकार के मनोविकारों का जन्म नहीं होता है।

संयम जीवन का प्रमुख श्रेष्ठतम गुण है। संयमित जीवन का वर्णन ऋगवेद,अथर्ववेद, में दिया गया है संयमित जीवन में किसी प्रकार की बाधायें नहीं आती हैं। विवाहोत्तर संयम का प्रमुख प्रभाव पति पत्नी के कार्यप्रणाली पर पड़ता है एवं जीवन की रूपरेखा पर पड़ता है। असंयमित जीवन अपूर्ण माना जाता है। संयम से पति पत्नी जीवन की पराकाष्ठा एवं उच्चतम बिन्दुओं को प्राप्त कर सकते हैं। जिससे जीवन में सुख और शान्ति रहे। जीवन में संयम विवेचनात्मक एवं विश्लेषात्मक कार्य–प्रणाली है। जो जीवन को वैभवमयी बनाती है।

विवाहोत्तर संयम से पति–पत्नी के बीच में आकर्षण एवं लगाव रहता है। संयमित जीवन वास्तव में आनन्द की पराकाष्ठा एवं दिव्य अनुभूति प्रदान करता है। संयम एक योग है। जिस तरह कर्मयोगी अपनी जीवन को सुव्यवस्थित बनाता है। उसी प्रकार से पति–पत्नी भी अपने जीवन को व्यवस्थित करके उच्च आकांक्षाओं को प्राप्त कर सकते है।

संयमित संतान का व्यक्तित्व एवं कृतित्व उच्च कोटि का एवं सार्थकमयी होता है। जिससे जीवन वैभवमयी एवं गौरवमयी की दिग्विजय की श्रेणी प्राप्त कर लेता है। उसकी सोच आचार–विचार और व्यवहार सौर्यपूर्ण कलाओं से परिपूर्ण होता है। संयमित पति–पत्नी की संतान जीवन की कसौटियों पर खरी उतरती है। वह हमेशा परिवार एवं

सार्थकता का प्रचार-प्रसार कर वह परमभागवत उपाधि को धारण कर लेता है।

संयमित पति-पत्नी हमेशा विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजर कर जीवन को संगठित एवं संयमित एकतन्त्रात्मक एवं वंशानुगत की सीढ़ियों से गुजर कर वास्तविक नई अवधारणाओं को जन्म देते है। जिससे पुत्र भी उनके अनुकूल और संयमित हो। उसे अच्छे-बुरे का ज्ञान हो और जीवन "अचिन्त्य हो"।

संयमित पति-पत्नी हमेशा जीवन के विभिन्न सोपान प्राप्त कर लेते हैं उनके जीवन में संयम उनका धर्म एवम् संरक्षकता होती है। संयमित पति-पत्नी को विवाह के बाद अपनी बुरी आदतों का उन्मूलन कर देना चाहिये।

संयमित विचारधारा के पति-पत्नी प्रतिष्ठित माने जाते थे। संयमित होना बहुत आवश्यक है। जितने अधिक पति और पत्नी संयमित होगे उतनी ही सन्तान युक्तिसंगत एवं गम्भीर होगी। संयम के द्वारा मानवीय रोचकता विकसित होती है। संयम एवं अनुशासन जीवन के दो अग्रगामी पथ है। संयमित सन्तान में श्रेष्ठता,प्रभुता एवं वरेण्यता जैसे गुण पाये जाते हैं।

संयमित दृष्टिकोण से जीवन सुलभ और सरल होता है। संयमित और अनुशासित विचारधारा से परिवार और समाज में दिन प्रतिदिन गुणों व बुद्धि का विकास होता है पति और पत्नी को संयम के महत्व को जानना चाहिये जिससे होने वाली सन्तान में गुणात्मक और मात्रात्मक परिवर्तन हो इसके अतिरिक्त उसमें शौर्य और वीरत्व की विचारधारा उसको शक्तिशाली और ओजस्वी बनाये।

"संयमित पति पत्नी की सन्तान में ओजस्विता और तेजस्विता जैसे गुण दिखलाई पड़ते है जिस कारण से उनका जीवन प्रतिदिन नवीन और नवयौवन से परिपूर्ण दिखलाई पड़ता है।

"मनु स्मृति के अनुसार संयमित सन्तान में सामाजिकता,सरलता और सरसता के गुण दृष्टि गोचर होते है जिससे उनका जीवन लोकप्रियता को अर्जित करता है।

‘‘महाभारत में भी संयमित और अनुशासित जीवन पर अधिक से अधिक जोर दिया है संयमित सन्तान हमेशा हृष्ट–पुष्ट और निरोगी होती है।

‘‘माता–पिता को विवाहोत्तर संयम रखते समय विभिन्न प्रकार की वैज्ञानिक और धार्मिक अवधारणाओं और मतों को भी मानना चाहिये जिससे उनमें जीवन में क्रमबद्धता के सूत्र और श्रेष्ठता के आयाम आ सकें। विवाहोत्तर संयम मानवीय जीवन में परम आवश्यक है जो उनके लिये नई सोच और नई दिशा तैयार करके उनको प्रगतिशील बनाता है।

‘‘आपस्तम्भ धर्मसूत्र में विवाहोत्तर संयम पर अधिक से अधिक जोर दिया गया जो पति पत्नी के लिये विकासात्मक पक्ष के लिये आवश्यक है।

महात्मा बुद्ध ने भी संयम,साधना,और अनुशासन को अलंकार और आभूषण बताया है। संयम से परिवार सीमित बनता है संयमित परिवार हमेशा सुखी और सम्पन्न होता है संयमित जीवन में निरोगता और जटिलता कम होती है अधिकतर जीवन विभिन्न प्रकार की नरकीय यातनाओं से मुक्त होता है। संयमित सन्तान भी अनुशासन प्रिय और धर्म प्रिय होती है। महात्मा गाँधी के अनुसार संयम मनुष्य का सर्वोत्तम गुण है। जिससे मानव सर्वोत्तम ऊँचाइयों को अर्जित कर सकता है, संयमित दृष्टिकोण और व्यवहार से नई पीढ़ी में चरित्र और आचरणों का दिन प्रतिदिन विकास होता है।

विवाहोत्तर संयम हमेशा जीवन को गतिशील और गत्यात्मक बनाने के लिये प्रेरणा का श्रोत है जो मानवीय विचारधारा का शुद्धीकरण करके जीवन का प्रमाणीकरण करता है।

पुनर्विवाह

- वैदिक काल में स्त्री का पुनर्विवाह
- गुप्तकाल में स्त्रियों का पुनर्विवाह
- मनु की अवधारणा
- कौटिल्य का मत
- कौटिल्य व मनु की तुलना
- सम्बन्ध विच्छेद या तलाक
- वर्तमान समाज में तलाक

पुनर्विवाह

हिन्दू समाज में यह विश्वास पाया जाता है कि विवाह एक अविच्छेद सम्बंध है, पति–पत्नी के जीवन काल में विवाह–विच्छेद नहीं हो सकता, मृत्यु भी इस सम्बंध को भंग नहीं कर सकती,सती स्त्रियाँ जन्म–जन्मांतरों में भी अपने पति को प्राप्त करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह विश्वास पिछले काल के धर्मशास्त्रों से तथा पुराणों से प्राप्त होता है,किन्तु यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो मालूम होगा कि दूसरी शताब्दी ई0पू0से मनुस्मृति तथा इसके बाद की अन्य स्मृतियों ने विवाह को अविच्छेद सम्बंध के रूप में प्रतिपादित किया। स्त्रियों का एक विवाह हो जाने के बाद उन्हें कुछ विशेष अवस्थाओं में दूसरा विवाह करने का अधिकार था। मनु स्मृति के बाद की कुछ स्मृतियों ने भी स्त्रियों का यह अधिकार स्वीकृत किया किन्तु बाद में हिन्दू समाज में स्त्रियों की दशा गिरती गई और उनसे यह अधिकार छिन गया।

वैदिक काल में स्त्री का पुनर्विवाह :–

वैदिक युग में पति के मर जाने पर पत्नी को दूसरा विवाह करने का अधिकार निश्चित रूप से था।

को वां शत्रुता विधवेव देवरम्। (ऋग010/40/2)
उदीर्ष्व नार्यभि 'जीवलोकं गतासुमेत भुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वभि सं बभूथ (ऋग10/18/8)

यदि पति–पत्नी का सम्बंध स्थायी है, तो पत्नी को दूसरे विवाह का अधिकार नहीं होना चाहिये। उसे आमरण वैधव्य का जीवन बिताते हुये अपने मृत पति की भक्ति करनी चाहिये। यह भी पाया गया कि जिस समय से हिन्दू समाज में विवाह को अविच्छेद सम्बंध सिद्धान्तपूर्ण रूप से माना जाने लगा,उसी समय से स्त्रियों का दूसरा विवाह बन्द हो गया। किन्तु वैदिक साहित्य में स्त्रियों के पुनर्विवाह के कुछ संकेत मिलते हैं। अथर्ववेद में मृत पति की चिता के पास बैठी

विधवा से कहा गया है कि उसके निकट आओ जो तुम्हारा हाथ पकड़ता है और तुम्हें प्रेम करता है। तुम अब उससे पत्नी के सम्बन्ध में प्रविष्ट हो चुकी हो।[115] आपस्तम्ब ने स्त्री और पति के भाई के मध्य यौन सम्बन्ध का संकेत किया है।[116] अथर्ववेद के एक मन्त्र में स्त्री के पुनर्विवाह की चर्चा है–''जो पहले पति को प्राप्त करने के 'पश्चात्' दूसरे पति को प्राप्त करती है, वे दोनों 'पंचौदन अज' कहलाते थे। वैदिक युग में 'पंचौदन अज' की परंपरा थी, तथा पतियों के स्थानान्तरण होने पर यह प्रक्रिया दोहरायी जाती थी।

इससे स्पष्ट यह है कि स्त्रियों को कुछ विशेष दशाओं में पुनर्विवाह का अधिकार था। वेदों से पुनर्विवाह की विशेष दशाओं पर कुछ अधिक प्रकाश नहीं पड़ता।

या पूर्व पति हित्वा अथान्यं विन्दते पतिम्।
पंचौदन च तावज ददातो न वियोषत्।।
समानलोको न भवति पुनर्भुवा परः पतिः।
योअजे पंचौदनं दक्षिणा ज्योतिषं ददाति।।

धर्मसूत्र और पुनर्विवाह :–

वैदिक युग के बाद मनुष्यों के आचार को वेदानुकूल एवं उत्तम बनाने के लिये धर्मसूत्रों की रचना हुई। इन धर्मसूत्रों में विवाह सम्बंधी आचारों का भी प्रतिपादन है। वेदों में स्त्रियों के पुनर्विवाह के अधिकारों की विशेष दशाओं पर पर्दा पड़ा हुआ है। धर्मसूत्रकारों ने उस परदे को थोड़ा सा उठा दिया है स्त्रियों के पुनर्विवाह की अवस्थाओं में प्रवास मुख्य है। वशिष्ठ धर्मसूत्र में इस बिषय का विस्तार से प्रतिपादन है और वह इस प्रकार है–'प्रेषित पत्नी (जिसका पति विदेश चला गया हो।) पाँच वर्ष तक प्रतीक्षा करके,उसके बाद पति के पास जाये। यदि धार्मिक व आर्थिक कारणों से उसके पास न जा सके तो उसे इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये कि उसका पति मर चुका है संतानवती ब्राह्मणी पाँच वर्ष तथा निःसंतान चार वर्ष, संतानवती क्षत्रीया पाँच वर्ष तथा निःसंतान तीन वर्ष, संतानवती वैश्य चार वर्ष और निःसंतान दो वर्ष तथा संतानवती शूद्रा दो वर्ष और निःसंतान एक वर्ष पति की विदेश

से लौटने की प्रतीक्षा करे इसके बाद में पति के समान जाति पिण्ड व गोत्र वाले व्यक्ति से विवाह करे। इसमें पहला व्यक्ति पिछलों से अधिक गौरव वाला है।

प्रोषिपली पचवर्षाण्युपासीत्! ऊर्ध्व पंचेभ्यो वर्षेभ्यो भर्त सकाशं गच्छेत्। यदि धमार्थाभ्यं प्रवासे प्रत्यनुकामा व स्याद्यथा प्रेत एव वर्तितव्यं स्यात्। एवं प्रजाताप्रजाता चत्वारि..! अत उर्ध्व समानार्थ जन्मपिण्डोदकगोत्राणां पूर्वः पूर्वोगरीयान्।[117]

वशिष्ट की इस व्यवस्था से स्पष्ट है कि क्रेसित पति का पत्नी को ब्राह्मण वर्ण की होने पर पाँच वर्ष बाद दूसरा पति वरण करने का अधिकार था। इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिये कि वर्तमान युग में यातायात एवं पत्र व्यवहार के साधन वशिष्ठ धर्म सूत्र के समय की अपेक्षा बहुत उन्नत हो गये हैं, तो भी इंग्लैण्ड के 1936 के 'दि मैट्रिमोनियल कॉंजेज एक्ट'' (The Matrimonial Causes Act) में यह अवधि सात वर्ष रखी गयी है। 1955 में हिन्दू विवाह कानून में भी यह अवधि सात वर्ष है। किन्तु वशिष्ठ ने इसे अधिक से अधिक ब्राह्मणी के लिये पाँच वर्ष तथा शूद्रा के लिये कम से कम दो वर्ष रखा है। वशिष्ठ धर्मसूत्र ने पाँच अन्य अवस्थाओं में भी पत्नी को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है—ये पति का नपुसंक होना, जातिच्युत होना, मर जाना आदि है!''जो अपनी कुमारावस्था में भर्ता को छोड़कर दूसरे व्यक्तियों में विचरण करके उस परिवार में आ जाती है वह 'पूनर्म' है। जो नपुसंक जाति से भ्रष्ट या उन्मत पति को छोड़कर अथवा पति के मरने पर दूसरे पति को प्राप्त करती है वह भी 'पूनर्म' होती है।'' बौधायन धर्मसूत्र केवल नपुसंकता और जातिभ्रंश को ही स्त्री के पुनर्विवाह का कारण समझता है। इस प्रसंग में यह भी कह देना उचित है कि विवाह संस्कार के समय यदि पति मर जाता है 'तो ऐसी अक्षतयोनि कन्या के पुनः संस्कार का दोनों धर्मसूत्रों में विधान है।[118]

कौटिल्य तथा पुनर्विवाह :–

धर्मसूत्रों के बाद कौटिल्य अर्थशास्त्र में इस विषय की विस्तार से चर्चा है कि पति के प्रवास एवं विदेश गमन से उत्पन्न परिस्थितियों

तथा विवाह विच्छेद के सम्बंध में कौटिल्य ने बहुत सुन्दर तथा न्यायपूर्ण विधान बताया है। कौटिल्य के अनुसार स्त्रियों की कुछ अवस्थाओं में जब वे अपने पति से व्युप्त हो जाती है। यदि पुर्नविवाह का अधिकार न दिया जाये तो समाज में दुराचार,व्यभिचार, अनाचार, एवं अधर्म बढ़ जायेगा। प्राणियों के लिये प्रकृति से प्राप्त सहज और प्रेरणा के आवेग को यदि उचित मार्ग नहीं मिलेगा तो वह अनुचित मार्ग अपनाकर अपनी यौन तृप्ति को पूरी करेगी इसलिये ''कौटिल्य नें स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है। स्त्री के ऋतुकाल का उपरोध व ऋतुकाल में पुरुष के संगम का न होना धर्म का वध है।

''तीर्थोपरोधो हि धर्मवध इति कौटिल्या''

कौटिल्य ने पुनर्विवाह के सम्बन्ध में अपनी धार्मिक मान्यतायें दी। इस मूल सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुये आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया, चाहे वे प्रशस्त हो या अप्रशस्त। आज कल हिन्दू समाजों में धर्म विवाहों को महत्व दिया जाता है और उसे अविच्छेद माना जाता है अतः इन विवाहों के विषय में कौटिल्य की व्यवस्था अधिक उपयोगी है।

कौटिल्य के मतानुसार (3/4/33-41) धर्म विवाह से परिगृहीत कुमारी यदि आपत्ति ग्रस्त हो और पति उससे बिना कहे विदेश चला गया है, तो स्त्रियों को सात तीर्थो, सात मासिक धर्मो'' तक प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि कहकर गया हो तो 2 तीर्थो 2 मासिक धर्म'' तक उसकी प्रतीक्षा करे। यदि पति के विदेश जाने पर कोई समाचार न मिले तो पाँच तीर्थो ''5 मासिक धर्मो'' और मिलने पर 10 तीर्थो ''10 मासिक धर्मो'' इसके बाद धर्माधिकारियों की आज्ञा पाकर वह अपना पुनर्विवाह कर सकती है। थोड़े समय के लिये बाहर जाने वाले पतियों की पुत्रहीन स्त्रियों को एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी चाहिये और पुत्रवती स्त्रियों को इससे अधिक समय तक। यदि पति अपनी पत्नी का भरण-पोषण का प्रबन्ध कर गये हैं, तो दुगुने काल तक प्रतीक्षा करनी चाहिये उसके पश्चात् पुनर्विवाह की सोच जाग्रत हो। पढ़ने के उद्देश्य से गये ब्राह्मणों की स्त्रियों को 10 वर्ष तक अपने पति की प्रतीक्षा करनी चाहिये और राज्य कार्य करने के लिये गये पतियों की पत्नियों

को आयु पर्यन्त प्रतीक्षा करनी चाहिये परन्तु आयु पर्यन्त की प्रतीक्षा बहुत लम्बी होती है। इस तरह यदि आयु पर्यन्त प्रतीक्षा करने वाली स्त्री का सम्बंध किसी समान वर्ग से हो जाता है तो वह निन्दनीय नहीं है।

कौटिल्य के अनुसार पति के दीर्घ प्रवासी एवं सन्यासी होने पर स्त्रियों को पुनर्विवाह कर लेना चाहिये। पुनर्विवाह एक सामाजिक और धार्मिक प्रथा है, जिसके द्वारा समाज में व्यभिचारिता और अनाचारिता को रोका जा सकता है। हमारे समाज में पुनर्विवाह की प्रथा कुछ जातियों में है, सवर्ण वर्ग में पुनर्विवाह की प्रथा कम है जबकि निम्न वर्ग में अधिक है। पुनर्विवाह एक पश्चाताप भी है जिसमें स्त्री एक पति को भूलकर दूसरे पति को अपने हृदय और मस्तिष्क में स्थान देती है जिस कारण उसमें मनोवैज्ञानिक, धार्मिक और नैतिक प्रवृतियां भी बदल जाती है। पुनर्विवाह वाली स्त्रियों की गरिमा प्रतिष्ठित परिवारों में अच्छी नहीं होती है, उनको हीन दृष्टि से देखा जाता है। उनकी सोच आम स्त्रियों से भिन्न होती है। उन स्त्रियों को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सामन्जस्य करना पड़ता है।

गुप्त युग में स्त्रियों का पुनर्विवाह :-

गुप्त युग में स्मृतिकार नारद ने पति के नपुसंक होने की दशा में पत्नी को दूसरे विवाह का अधिकार दिया है।

अपत्यार्थ स्त्रियः सृष्टांः स्त्रीक्षेत्रं बीजिनो नराः ।
क्षेत्र बीजवते देयं नाबीजो क्षेत्रमर्हति ।। (नारद)

गुप्त काल में स्त्रियां अपने पतियों को छोड़ सकतीं थी, इसका प्रबल प्रमाण यह है कि समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी ने अपने पति को छोड़कर चन्द्रगुप्त के साथ विवाह किया''

मध्यकाल में कलियुग के लिये प्रमाणिक मानी जाने वाली पराशर स्मृति (4/30) ने भी पति के लापता,मृत,क्लीब, पतित और सन्यासी होने पर पहले पति को छोड़कर दूसरे पति के साथ विवाह की अनुमति दी।

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।।[120]

(पाराशर स्मृति 4/30)

किन्तु हिन्दू स्त्रियों की स्थिति इतनी गिर चुकी थी कि वे अपने अधिकारों का उपयोग करने में असमर्थ हो गयी। स्त्रियों के पुनर्विवाह के विरूद्ध हिन्दू समाज में प्रबल लोकमत उत्पन्न हो गया। इस लोकमत की प्रबलता का अनुमान इसी तथ्य से हो सकता है कि विधवा विवाह को पास हुये एक शताब्दी से अधिक समय हो गया है,किन्तु हिन्दू समाज में विधवाओं की संख्या अभी तक यथापूर्ण है और इनका पुनर्विवाह बहुत कम होता है।

गुप्त काल में स्त्रियाँ पुनर्विवाह कर सकती थी। इसका प्रबल प्रमाण नारद की पूर्नभू स्त्रियों में है। पुर्नभू या अन्यपूर्वा स्त्री उसे कहते हैं, जो एक पति से शादी करने के बाद उसके मर जाने पर या किसी अन्य कारण से दोबारा पुनः विवाह करके दूसरे पति को प्राप्त करती है। पुनर्म शब्द का अर्थ है जो दोबारा किसी व्यक्ति के साथ पत्नीव्रत प्राप्त करे और अन्यपूर्वा का मतलब है पहले पति से भिन्न भर्ता से विवाह करने वाली स्त्री से है।

पुनर्भू स्त्री, पुनर्भवति जायात्वेन।
एकेन व्यूढाया पुनरन्यगृहीतायाम् भार्यायाम्।[121]

(वाचस्पत्य कोष के पृष्ठ सं0 4/363)

नारद के मतानुसार, सात प्रकार की ऐसी (परपूर्वा) स्त्रियाँ है, जिनकी एक पुरूष से शादी होने के बाद दूसरे पुरूष से शादी होती है। इनमें तीन प्रकार की पुनर्म है और चार प्रकार की स्वैरिणी। वैदिक साहित्य में स्वच्छन्द सम्भोग के कोई उदाहरण नहीं है।[122] ऋग्वेद में कुछ ऐसे संदिग्ध प्रकरण हैं जिनसे गुप्त रूप से प्रेम व्यवहार करते[123] और गुप्त रूप से संतान के जन्म देने का संकेत मिलता है।[124] प्राचीन काल में उद्धालक के पुत्र श्वेतकेतु ने स्वैरिता को समाप्त कर दिया और यह नियम बनाया कि सभी पतिवृत धर्म का पुरूष पतिवृता पत्नी के प्रति अपना कर्तव्य पूरा नहीं करेगा तो दोनों पाप के भागी होंगे।[125]

देश धर्म पर विचार करके गुरूओं द्वारा जो कन्या किसी को दी जाती है, किन्तु वह अपनी इच्छा से नियम भंग करके व्यभिचार द्वारा दूसरे पति के पास चली जाती है उसे दूसरे प्रकार की पुनर्भू कहते है। तीसरे पुनर्भू वह है जो पति के मरने पर, देवर के न होने पर मृत व्यक्ति के सुवर्ण और सापिण्ड पुरूष को दिये जायें। तीन प्रकार की पुनर्भू स्त्रियों में पहली वह है जो अक्षतयोनि है, किन्तु विवाह संस्कार

से दूषित है। इसको दोबारा संस्कार हो सकने के कारण पुनर्भू कहते हैं।

1. पति के जीवित होने पर उसको चाहे सन्तान हो न हो, वह काम वश दूसरे के पास जाती है।
2. जो अपने विवाहित पति को छोड़कर दूसरे के घर चली जाये और फिर अपने पति के पास वापस आ जाये।
3. पति के मरने पर देवर आदि के साथ पत्नी रूप में रहने वाली स्त्री।
4. रक्षा की इच्छा से आयी हुई,पैसे से खरीदी हुई या फिर भूख प्यास से सताई हुई जो स्त्री, मैं तेरी हूँ, यह कहते हुये किसी पुरूष के पास आये, नारद के मतानुसार पहली पुनर्भू बाद की पुनर्भू स्त्रियों की अपेक्षा अच्छी होती है।

पूर्व मध्ययुग में स्मृतिकारों ने पुनर्भू स्त्रियों का उल्लेख बड़ी निन्दा और तिरस्कार के साथ किया। स्मृति चन्द्रिका (खण्ड-1, पृष्ठ 75) में कश्यप तथा बोधायन द्वारा गिनाई गई पुनर्भू स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। इनमें अधिकांश अक्षतयोनि से सम्बन्धित रहती है। बोधायन के अनुसार इन स्त्रियों को ग्रहण नहीं करना चाहिये, परन्तु कश्यप के अनुसार इन स्त्रियों को ग्रहण करने पर ये समस्त कुल में आग लगा देती है तथा वे उस कुल को जलाकर नष्ट कर देती है।

पुनर्भू से उत्पन्न होने वाले पुत्र को पौनभर्व पुत्र कहते थे और उसके पति को पौनर्भव पति कहा जाता था। स्त्रियों के पुनर्विवाह की चर्चा अधिकांशतः स्मृतियों के दाय भाग में पौनर्भव पुत्रों की चर्चा देखने को मिलती है।

वशिष्ट धर्मसूत्र (17-19-20) गौतम धर्मसूत्र (19/2)बौधायन (2/2/31) महाभारत (1/120/3536) और नारद (13/45) में पुनर्विवाह से उत्पन्न पुत्रों को हमेशा सामाजिक दृष्टि से उपेक्षा की जाती है। जो कि धार्मिक दृष्टि से अशुद्ध और अछूत माना जाता है।

पुरूषों को पुनर्विवाह तथा बहुर्विवाह की सुविधा देने से स्त्रियों के लिये भीषण दुखों और अत्याचारों का सूत्रपात हुआ। ऋग्वेद में पारस्परिक दाम्पत्य निष्ठा पर बल दिया गया है। मनु ने भी लिखा है

कि पति–पत्नी पारस्परिक निष्ठा का उल्लघंन न करें।[126] दूसरी स्त्री के आ जाने पर पहली स्त्री की दशा बड़ी दयनीय और सोचनीय हो जाती है। पति उसका सम्मान नहीं करता है अतः सौतियन दाह पहली स्त्री के जीवन को नरक बना देता है। अधिकांश घरों में पहली स्त्रियां दासियां बनकर ही अपना जीपन यापन कर सकती हैं।

"याज्ञवल्क्य के अनुसार यह लोक तथा परलोक में कीर्ति प्राप्त करने का साधन बताया है कि उन्हें किसी प्रकार दूसरे के पास में नहीं जाना चाहिये किन्तु वही याज्ञवल्क्य पतियों के लिये भिन्न व्यवस्था करते हैं। पत्नी को तो पति के मरने पर भी उसका ध्यान करना चाहिये, किन्तु पति को पत्नी के मरते ही दूसरा विवाह कर लेना चाहिये। यह स्त्रियों के अधिकारों का कितना क्रूर उपहास है जिस कारण से नारी सम्मान को, उसकी गरिमा को समाज में कितनी ठेस पहुंचती है।

दाहयित्वाऽग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवती पतिः।
आहरेद् विधिवधारानग्नीं चौवाविलम्बयन्।।

(याज्ञवल्क्य स्मृति)

मध्यकाल में स्त्री की अवस्था मनु के अनुसार उत्तम साथी के उच्च धरातल से गिरकर दासी तक पहुंच गयी। मनु ने पत्नी को आदेश दिया था, चाहे उसका पति दुश्शील, पर स्त्री गामी,गुणहीन क्यों न हो परन्तु पत्नी को उसकी देवता मानकर पूजा करना चाहिये।

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देव वत्पतिः ।।

पाराशर स्मृति के अनुसार जो पत्नी दरिद्र, रोगी या धूर्त पति का अपमान करती है। वह बार–बार निन्दा के योग्य है।

स्त्रियों के लिये पति के साथ सती हो जाने से उनका समाज में आदर्श और गौरव बढ़ जाता है और पति के मरने के बाद सती प्रथा ने अधिकतर अवस्थाओं में पत्नी को जबरदस्ती सती होने के लिये मजबूर किया।

"हिन्दू समाज में पुनर्विवाह, मनु काल से गुप्त काल तक विभिन्न प्रकार की कुरीतियों और विसंगतियों से आच्छादित रहा। आज भी वर्तमान

समय में ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्यों में पुनर्विवाह की प्रथा कम है जबकि शूद्र वर्ग में पुनर्विवाह का अधिक प्रचलन है। पुनर्विवाह की सोच में स्त्रियों और पुरूषों की मनोदशा में काफी अन्तर पाया जाता है। स्त्री अपने भविष्य के बारे में सोचती है कि पुनर्विवाह द्वारा प्राप्त पति कैसा होगा। उसकी सोच कैसी होगी और उसकी विचारधारा कैसी होगी। पुनर्विवाह हमेशा शंका और सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। पुनर्विवाह से धार्मिक और नैतिक मूल्यों पर भी प्रभाव पड़ता है, लेकिन पुनर्विवाह समाज में दुराचार और व्यभिचार रोकने की परम्परा है।

मनु की अवधारणा :-

मनु की अवधारणा, हिन्दू धार्मिक मान्यताओं के लिये एक विशाल वट वृक्ष की तरह है। इसकी शाखायें तथा प्रा शाखायें भारतीय सनातन धर्म की मूल स्तम्भ है। मनु की अवधारणा धार्मिक मूलाधार का स्तम्भ है। समाज में प्रचलित मान्यतायें रूढ़ियाँ, परम्परायें कहीं न कहीं धार्मिकता से जुड़ी हुयी हैं। हिन्दू जीवन में जन्म से मृत्यु तक अनेक संस्कार पाये जाते है, जिसका सम्बंध मनु स्मृति से सम्बन्धित मनु संहिता और मनु अवधारणा से जुड़ा हुआ है। हमारे संस्कारों की शुरूआत मनु की अवधारणा की देन है। जिन्होंने भारतीय संस्कारों को भला बुरा कहकर मनुष्य को शक्तिशाली और अचूक साधन दिये है।

मनु के अनुसार दूसरे धर्मों की तरह हिन्दू धर्म भी यह मानता है कि अशुभ आत्मायें मनुष्य को दूषित करती है और उसे पवित्र और परमार्थ के रास्ते से हटाकर भटका देती है। दूषित वृत्तियों को दूर कर शुभ विचारों की बढ़ोत्तरी के लिये सर्व शक्तिमान प्रभु से प्रार्थना की जाती है। संस्कार इसी प्रार्थना और संकल्प के प्रतीक है, जिससे मनुष्य परोपकारी बनके देवत्व को प्राप्त करता है।[127]

मनु, पुनर्विवाह का अधिकार पुरूषों को देते है। विवाह के बाद पत्नी में शारीरिक,मानसिक व गुप्त दोष होने पर पति उसे छोड़ सकता है किन्तु पति में शारीरिक, मानसिक दोष होने पर पत्नी उसे नहीं छोड़ सकती। मनु के अनुसार पति के पागल,उन्माद, विकलांग एवं क्लीव होने पर पति आशा करता है कि वह जीवन पर्यन्त सहभागिनी

और सहधर्मिणी की तरह जीवन व्यतीत करती रहे। यदि वह पति की सेवा का उल्लंघन करती है तो उसके साथ यह रियायत की गयी है, कि पति को उसका त्याग नहीं करना चाहिये। बल्कि उसे प्रेम और इज्जत से अपने घर में रखना चाहिये।

मनु स्मृति, भारतीय संस्कृति में पुनर्विवाह और तलाक तथा सम्बंध विच्छेद पर विभिन्न प्रकार की मूल अवधारणाओं का प्रतिनिधित्व करती है। जो विभिन्न प्रकार की वैवाहिक पद्धतियों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव डालती है''

''विवाह मानवीय जीवन की सबसे आवश्यक और विचित्र विडम्बना है जीवन या मरण,चिर आनन्द या चिर स्थायी दुख विवाह की परिधि में आबद्ध है।

युवा वर्ग विवाह के मधुर स्वप्नों की दुनियां में खोया रहता है पर होता वही है,जो बहुत पूर्व विधाता ने पहले ही निश्चित कर रखा है, विवाह वंश वृक्ष की वाटिका में प्रवेश करने का प्रथम सोपान है।[128]

मनु स्मृति में पति और पत्नी के बीच पुनर्विवाह का उल्लेख मिलता है। वैदिक काल से लेकर मौर्यकालीन एवं गुप्त कालीन समाज में कई प्रकार की वैवाहिक स्थितियों में कई प्रकार से परिवर्तन हुआ। मनु स्मृति में स्पष्ट लिखा है कि स्त्रियों के अप्रिय वादी होने की दशा में पति को पुनर्विवाह का अधिकार है। इसका परिणाम पुरूष तथा स्त्रियों के लिये घातक हुआ, जिसका गृहस्थ आश्रम पर प्रभाव पड़ा। विवाह संस्कार में विभिन्न रस्मों और परम्पराओं का विशेष महत्व है। मनु तथा कौटिल्य की अवधारणा में विवाह विच्छेद और तलाक के सम्बंध में अलग-अलग विचार धारायें और मत है, जहाँ पर स्त्री और पुरूष की श्रेष्ठता और निम्नता की पराकाष्ठा का स्पष्टीकरण किया गया है।

मनु की अवधारणा हिन्दू मान्यताओं का धार्मिक मूल स्तम्भ है। धर्म को धारण करने वाले, धर्म को अपने जीवन के आचरण रूप में लाने वाले, और धर्म के आधार पर अपने व्यवहारिक जीवन को सुन्दर और स्वच्छ करने के लिये निष्पादित की जाती है। जो तलाक की

व्यवस्था,पति–पत्नी के सम्बंध विच्छेद और जीवन को संयमित और असंयमित करने के लिये बहुत उपयोगी है।

हिन्दू समाज में तलाक की व्यवस्था एक अभिशाप है। इस व्यवस्था को उदारवादी और सोचनीय बनाना चाहिये। वर्तमान में मनु की अवधारणा और कौटिल्य के मतों में काफी भिन्नतायें हैं। आधुनिक समाज में मनु और कौटिल्य की विचारधारा में काफी परिवर्तन आ गया है क्योंकि पति–पत्नी के बीच सत्य, संयम,त्याग और ब्रह्मचर्य जैसी आस्थाओं में दिन प्रतिदिन गिरावट आ रही है जिससे हिन्दू व्यवहारिक जीवन कपटों और कलंक से परिपूर्ण है।

मनु की अवधारणा में पत्नी के अधिकारों को कमजोर और अस्थायी बताया गया है जबकि पति के अधिकारों को अधिक मजबूत और श्रेष्ठ। वस्तुतः आज समाज में तलाक का दुरूपयोग हो रहा है तथा समाज में अनैतिकता और अनाचार में वृद्धि हुई है जिससे दाम्पत्य जीवन सबसे अधिक प्रभावित है।

मनुष्य सम्भवतः एक जिज्ञासु प्राणी है। सनातन हिन्दू धर्म में बहुत सारी मान्यतायें मनु स्मृति पर टिकी हुई है जो जनमानस को सही एवं सच्चे अर्थों में उद्घाटित करती है।

कौटिल्य का मत :–

पुनर्विवाह तथा तलाक के सम्बंध में कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि नीच, प्रवासी,राजद्रोही, घातक (जाति अथवा धर्म के आचार से) पतित,नपुसंक पति स्त्री के लिये त्याज्य है।

नीचत्वं परदेशं च प्रस्थितो राजकिल्विषी।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबोअपि वा पतिः।।

यह नियम चार प्रकार के ब्रह्मादि धर्म विवाहों के लिये है। परन्तु दूसरे विवाहों के लिये कौटिल्य बहुत उदार है। प्राचीन धर्मशास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह बताये गये है। ब्रह्म,प्रजापत्य,आर्ष,दैव, गन्धर्व,आसुर,राक्षस, और पैशाच इनमें पहले चार धर्म विवाह कहलाते थे, इन विवाहों के उपरान्त तलाक या विवाह विच्छेद सम्भव था, तथा बाद के चार प्रकार के विवाहों में वह एक–दूसरे से द्वेष होने की अवस्था में तलाक की अनुमति प्रदान करते हैं।

विवाह के पश्चात् कई बार पति-पत्नी के बीच में द्वेष उत्पन्न हो जाता है। कई बार यह द्वेष इकतरफा होता है और कई बार दोनों ओर से यह द्वेष उत्पन्न हो जाने पर विवाह एक भार मालूम होने लगता है और पति पत्नी वैवाहिक बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं। यदि पति बिना पर्याप्त कारण के पत्नी को छोड़ दे तो राजा को उसे चोर की भांति दंण्ड देना चाहिये।[129]

कौटिल्य परस्पर द्वेष,ईर्ष्या, अहम् के आधार पर पिछले चार प्रकार के गन्धर्व,राक्षस आसुर तथा पैशाच नामक विवाहों में स्त्री पुरूष को मोक्ष अर्थात् तलाक का अधिकार देता है। कौटिल्य (3/3/17-19)ने इस विषय में स्त्री-पुरूष के अधिकार तुल्य ही रखे हैं। पति की इच्छा न होने पर उसके साथ द्वेष रखती हुई स्त्री उसका त्याग नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था में पति भी अपनी पत्नी का परित्याग नहीं कर सकता। दोनों का एक-दूसरे के साथ द्वेष होने पर ही परित्याग सम्भव है।

वर्तमान काल में पश्चिमी जगत के बर्टेण्ड रसेल के अनुसार अमेरिका,जर्मनी,स्वीडन,डेनमार्क,बेल्जियम तथा स्विटजरलैण्ड जैसे देशों में तलाक का प्रतिशत कई गुना बढ़ा है। अमेरिका में प्रति वर्ष 54 प्रतिशत तलाक दिये जाते हैं। 1954 में भारत के विशेष-विवाह कानून में विवाह विच्छेद की अनुमति दी गयी है।

कौटिल्य ने धर्मसूत्रकारों की तरह विवाह को संस्कार नहीं माना। उनकी सम्मति में यह एक अनुबन्ध या ठेका है, जैसे आजकल पाश्चात्य देशों में माना जाता है। वर-वधू या उसके अभिभावक इसे करते हैं और अन्य अनुबन्धों की भांति शर्तें न पूरी होने पर यह तोड़ा भी जा सकता है। कौटिल्य (3/16/17) ने वस्तुओं के क्रय-विक्रय प्रकरण में विवाह का उल्लेख किया है और यह विधान बताया कि प्रथम तीन वर्णों में पाणिग्रहण हो जाने पर भी यदि स्त्री-पुरूष के प्रथम शयनकाल में किसी भी (स्त्री या पुरूष) में कोई दोष मालूम पड़े तो विवाह सम्बन्ध तोड़ा जा सकता है। कन्या के किसी गुप्त दोष को छिपाकर यदि कोई उसका विवाह करता है तो उसे 69 पण के दण्ड का विधान है। जो वर के दोषों को छिपाता है उसे 112 पण दण्ड का। दोनों अवस्थाओं में स्त्री-धन व शुल्क जब्त कर लिया जाता था।

कौटिल्य का पुनर्विवाह और तलाक के सम्बन्ध में अलग–अलग मत था। उनकी सोच मनु के विपरीत थी। वैवाहिक जीवन की स्थिरता से परिवार और समाज में स्थिरता, निश्चलता, अटलता तथा परिपक्वता आती है। तलाक के द्वारा परिवार की स्थिरता अस्थिरता में बदल जाती है। किन्तु हिन्दू समाज आज भी तलाक के काफी विरूद्ध है। क्योंकि पति–पत्नी का जीवन असन्तुलित और असंयमित हो जाता है।

महाराजा पुष्य मित्र के नेतृत्व में ब्राह्मण धर्म का अभ्युदय हुआ और इसी समय मनुस्मृति के अधिकांश भाग का सम्पादन हुआ। अर्थशास्त्र के नियमों के विरूद्ध धर्मसूत्रकारों ने आवाज उठायी और कौटिल्य के नियमों में बहुत परिवर्तन किया, स्मृतिकार अर्थशास्त्रियों की भांति विवाह को ठेका या अनुबन्ध (Contract) मात्र नहीं मानते थे, अपितु एक धार्मिक बन्धन समझते थे। कौटिल्य ने स्त्री को जिन हालातों में मोक्ष का अधिकार दिया था, मनुस्मृतिकार ने उस अधिकार को सीमित कर दिया।

कौटिल्य के प्रोषित पतिका के नियमानुसार यदि पत्नी पुत्रवती हो, तो उसे पति के लौटने की अधिक से अधिक 8 वर्ष तक प्रतीक्षा करना चाहिये। यदि पत्नी निःसंतान हो तो चार वर्ष तक पति के लौटने का इन्तजार करना चाहिये। इसके बाद वह धर्म विवाह में इच्छानुसार पति का वरण कर सकती थी। यदि वह कुमारी हो तो कुछ मास प्रतीक्षा करके पुनर्विवाह का अधिकार पा लेती थी।

मनु ने अर्थशास्त्र की इन व्यवस्थाओं के स्थान पर अपनी वह व्यवस्था दी कि प्रोषित पतिका को यदि पति उसके निर्वाह के लिये वृत्ति दे गया हो तो वह निर्वाह करे। यदि वृत्ति नहीं दे गया तो समाज में निन्दनीय समझे जाने वाले शिल्पों से अपना निर्वाह करे।

इस प्रकार निर्वाह करती हुयी पत्नी धर्म कार्य से पति के विदेश जाने पर 8 वर्ष प्रतीक्षा करे, विद्या के लिये जाने पर 6 वर्ष, अन्य कार्य के लिये जाने पर 3 वर्ष प्रतीक्षा करे। (मनु 9/75–6) इस प्रतीक्षा के बाद यदि उसका पति न लौटे तो पत्नी क्या करे,इस विषय पर मनु ने कोई तथ्य या तर्क प्रस्तुत नहीं किये।

वशिष्ठ ने प्रतीक्षा की अवधि व्यतीत होने पर पति के पास जाने या पुनर्विवाह करने की आज्ञा दी थी और कौटिल्य ने इच्छानुसार वरण का अधिकार दिया था। किन्तु मनु ने इस बिषय पर कुछ भी व्यवस्था नहीं की न उसके सम्बंध में कुछ विचार प्रस्तुत किये।

नन्दन में लिखा है कि स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार है किन्तु मेघातिथि ने इसका विरोध किया है। दूसरे टीकाकार कहते है, कि पत्नी को पति की खोज के लिये जाना चाहिये। मनु के समय में स्त्रियों से पुनर्विवाह व तलाक का अधिकार छिन गया और पुरूषों ने एक स्त्री के रहते हुये दूसरी स्त्री के साथ विवाह करने के नियम अथवा विच्छेदन के अधिकार का उपयोग किया।

कौटिल्य के अनुसार जो अल्पचित्त पुरूष स्त्री के मुख देखने में ही व्यग्र रहते हैं, उनकी सब चेष्टायें उनकी युवावस्था के सहित समाप्त हो जाती हैं।

स्त्री मुखालोकतनया व्यग्राणमल्पचेतसां।
ईहितानि हि गच्छन्ति यौवनेन सह क्षयम्।।[130]

कौटिल्य के अनुसार चाहे स्त्री का सेवन करे, और थोड़ी मात्रा का मधसेवन करे, परन्तु धृत और मृगया का कभी सेवन न करे यह महाव्यसन है।

''कामं स्त्रियं निषेवेत पानं वा साधुमात्रया।
न धृतमृगये विद्वान्नात्यंतव्यसने हि ते ।।[131]

कौटिल्य तथा मनु की तुलना -

कौटिल्य ने पति-पत्नी में कोई दोष प्रकट होने पर दोनों को तलाक या मोक्ष का अधिकार दिया,किन्तु मनु यह अधिकार पुरूषों तक ही सीमित कर देता है। विवाह के बाद पत्नी के दोष ज्ञात होने पर वह उसे छोड़ सकता है, किन्तु पत्नी, पति के दोष प्रकट होने पर उसे नहीं छोड़ सकती है।

पति के नपुसंक व राजद्रोही होने की दशा में कौटिल्य पत्नी के पुनर्विवाह के अधिकार को स्वीकृत करता है, किन्तु मनु पति के

उन्मत या क्लीब होने पर भी पत्नी से यह आशा करता है कि वह पति की सेवा करेगी,यदि वह पति की सेवा नहीं करती, तो उसके साथ यही रियायत की गयी है, कि पति को उसका त्याग नहीं करना चाहिये। मौर्य कालीन भारत में पत्नी को अधिकार था कि वह ऐसे पति को मोक्ष (तलाक) देकर दूसरा पति स्वीकार करे। शुंग वंश के समय पत्नी पर यह अनुग्रह किया गया कि ऐसे पति की सेवा न करने वाली स्त्री का पति त्याग न करे। मनुस्मृति में पति के साथ एक बड़ी उदारता दिखायी गयी है कि उसके उन्मत, पतित या क्लीव होने पर भी पत्नी उसे छोड़ नहीं सकती, किन्तु यदि पत्नी पति के साथ एक वर्ष से अधिक द्वेष रखे तो पति को उसका अलंकारादि छीनकर उसका त्याग कर देना चाहिये। जो स्त्री धुतादि व्यसन ग्रस्त,मदिरोन्मत या रूग्ण पति की सेवा न करके उसका अपमान करती है, पति उससे अलंकार छीन कर उसका तीन महीने के लिये त्याग करे। पत्नी के मद्यप, दुः शील, प्रतिकूल, रूग्ण, हिंसक तथा अपव्ययी होने पर पति को दूसरा विवाह कर लेना चाहिये। स्त्री बन्धया हो तो आठवें वर्ष,उसकी सन्तानें पैदा होकर मर जाती हो, तो 10 वें वर्ष, लड़कियाँ ही उत्पन्न होती हो तो 11 वें वर्ष तथा अप्रियवादिनी होने पर पति को एकदम दूसरा विवाह कर लेना चाहिये।

पुरूषों को अधिवेदन या दूसरे विवाह की इतनी सरल छूट देने का,स्त्रियों की स्थिति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। कौटिल्य के समय तक दोनों के अधिकार में कोई विशेष अन्तर नहीं था। स्त्री नपुसंक और पतित पति को छोड़ सकती थी। मनुस्मृति में पत्नी से अधिकार छीन लिया गया और साथ ही पति को दूसरा विवाह करने की खुली छूट दी गयी। प्रायः यह कहा जाता है कि दूसरे विवाह का अधिकार स्मृतिकारों ने पुत्र न होने की दशा में ही दिया किन्तु मनुस्मृति के उपर्युक्त श्लोकों से यह स्पष्ट है कि अन्य अनेक अवस्थाओं में, स्त्री के अप्रियवादी होने की दशा तक में, पति को पुनर्विवाह का अधिकार है। इसका परिणाम पुरूषों तथा स्त्रियों,दोनों के लिये घातक हुआ। पुरूष एक पत्नीव्रत के उच्च आदर्श को भूलने लगे और स्त्रियों की दशा जो उस समय से गिरनी शुरू हुइ, वह मध्यकाल में निरन्तर गिरती रहीं।

सम्बन्ध विच्छेद या तलाक :-

प्राचीनकाल में तलाक या विवाह-विच्छेद के ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम मिलते हैं। तलाक की परम्परा हमारे समाज के लिये एक अभिशाप है।

विवाह एक ऐसा नाजुक सम्बंध होता है जहाँ पूर्णरूप से अपरिचित दो व्यक्ति जीवन भर साथ रहने का वादा करते हैं। परस्पर अपरिचित वर और कन्या परस्पर विवाह बन्धन में बंधकर आजन्म सुख-दुख के साथी बन जाते है। कन्या अपने चिर-परिचित माहौल तथा चिर-परिचित व्यक्तियों को छोड़कर एक नई जगह आ जाती है जहां का माहौल तथा जहां के लोग उसके लिये पूर्णतः अपरिचित होते हैं। साथ ही वह भी उस माहौल तथा उन लोगों के लिये पूरी तरह अपरिचित होती है।[132]

विवाह के समय की खुशियाँ कभी-कभी गम में बदल जाती है। तलाक या विवाह विच्छेद के द्वारा दाम्पत्य जीवन क्लेश और भ्रमणकारी बन जाता है।

वर्तमान समाज में तलाक :-

वर्तमान में बम्बई व कलकत्ता हाईकोर्टो ने विभित्र जातियों में रिवाज द्वारा होने वाले इन पुनर्विवाहों की वैधता स्वीकार की है। उनके फैसलों के अनुसार शूद्रों में इसका अधिक रिवाज है। किन्तु उच्च जातियों में इनका रिवाज कम नहीं है।

अहमदाबाद के सोमपुरा ब्राह्मणों मे तालाक प्रचलित है एवं दक्षिण के लिगायत बनियों मे तालाक दिये जाते है।

बम्बई प्रान्त में ऐसे विवाहों का विशेष प्रचलन है। स्त्रियाँ पहला पति जीवित होते हुये अथवा विधवा होने पर दूसरा विवाह कर सकती है। महाराष्ट्र में इस विवाह को पाट कहते है। पाट निम्न कारणों से किया जाता है।

1. **जाति की विभिन्नतायें या गोत्र की समानता** – यदि कन्या के युवती होने या बच्चा होने से पहले विजातीयता या संगोत्रता का पता चल जाये

तो,पति पत्नी को छोड़ चिट्ठी दे देता है और पत्नी दूसरा विवाह कर सकती है।

2. **नपुसंकता** – पति की नपुसंकता का ज्ञान होने पर पंचायत की अनुमति से पत्नी की दूसरी शादी हो जाती है।
3. **पारस्परिक सहमति** – जब तलाक पति–पत्नी दोनों की सहमति से होता है,उस समय पति–पत्नी की गले की माला या आभूषण के दो टुकड़े करता हुआ उसे छोड़ चिट्ठी दे देता है।
4. **दुर्व्यवहार** – तलाक देने का कारण कई बार यह भी होता है कि पति, पत्नी के साथ बुरा बर्ताव करता है और उसे कष्ट देता है। स्त्री के पुनर्विववाह को विधवा विवाह की अपेक्षा अधिक बुरा समझा जाता है इस विवाह से उनकी सामाजिक स्थिति नीची हो जाती है। ऐसी स्त्रियों को किसी के विवाह के समय उपस्थित नहीं होने दिया जाता तथा पर्वो पर वे भोजन आदि नहीं बनाती । पहले पति की सम्पत्ति पर उनका अधिकार जाता रहता है और पहले पति से उत्पन्न बच्चे भी उनसे छिन जाते है। किन्तु पुनर्विवाह से उत्पन्न बच्चे जायज माने जाते है और सम्पत्ति में उन्हें विवाह द्वारा परिणीत स्त्रियों के बच्चों के तुल्य अधिकार मिलता है।

विवाह विच्छेद की कानूनी व्यवस्था की मांग :–

1955 का हिन्दू विवाह कानून पास होने से पहले वर्तमान समय में हिन्दू विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार एवं अविच्छेद बन्धन था। हिन्दू समाज के निम्न वर्ग की कुछ जातियों में ही रिवाज के आधार पर तलाक की व्यवस्था थी, किन्तु उच्च वर्ग में तलाक की कोई व्यवस्था नहीं थी। बीसवीं शताब्दी में भारत में समाज सुधार के आन्दोलनों के परिणामस्वरूप जो अभूतपूर्व नारी जागरण तथा नवीन सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई उसके परिणामस्वरूप हिन्दू विवाह में तलाक की मांग कई कारणों से की जाने लगी। पहला कारण स्त्री जाति के साथ समान व्यवहार की आकांक्षा थी। हिन्दू नर–नारियों के वैवाहिक अधिकारों में विषमता स्त्रियों के प्रति अन्यायमूलक थी। उपयुक्त कानून पास होने से पहले हिन्दू समाज में पुरूषों को यथेच्छ विवाह (अधिवेदन) करने का अधिकार था। अतः यदि किसी पुरूष को पहली पत्नी में कोई दोष प्रतीत होता था, उससे वह किसी कारण सन्तुष्ट नहीं था, तो वह

दूसरा विवाह कर सकता था, इस प्रकार विवाह उसके लिये अविच्छेद बन्धन नहीं था। किंतु नारी एक बार विवाहित होने पर किसी भी प्रकार दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं रखती थी वह अपने घोर दुखमय विवाहों से मुक्ति किसी भी दशा में नहीं पा सकती थी। इस प्रकार दोनो वैवाहिक अधिकारों में उग्र वैषम्य था। इसे दूर करने के लिये नर–नारी पर समान रूप से एक–विवाह का बंधन लगाने तथा दुखःमय विवाहों से मुक्ति पाने के लिये हिन्दू समाज में तलाक की व्यवस्था की प्रबल माँग की जाने लगी। यह माँग देश की जाग्रत महिला वर्ग की ओर से विशेष रूप से की गयी। इसका कारण विवाह को सुखमय बनाना तथा उसके मूल उद्देश्यों को पूरा करना था।

यदि पति नपुसंक हो, सन्तान उत्पन्न न कर सकता हो, लापता हो जाये, घोर क्रूरता और दुर्व्यवहार के कारण पत्नी के प्राणों को संकट में डाल दे तो इस दशा में विवाह के प्रधान प्रयोजन पूरे नहीं होते। पत्नी के लिये दाम्पत्यजीवन नरकतुल्य हो जाता है। इस बिषम स्थिति में उसका उद्धार करने के लिये तथा वैवाहिक जीवन के प्रधान प्रयोजनों को पूरा करने की दृष्टि से तलाक की मांग की जाने लगी। इसके परिणाम स्वरूप 1955 के "हिन्दू विवाह कानून" द्वारा इसकी व्यवस्था की गयी है।

हिन्दू विवाह कानून की तलाक सम्बंधी व्यवस्था :–

कानून के खण्ड 13 (Section) में वर्तमान हिन्दू समाज में पहली बार तलाक की व्यवस्था की गयी है। इससे पहले कानूनी स्थिति यह थी कि एक बार सम्पन्न हुये हिन्दू विवाह को किसी प्रकार से भंग नहीं किया जा सकता था। धर्म के परिवर्तन से जाति के च्युत,और बहिष्कृत होने से किसी पक्ष के व्यभिचारवत् होने से,पति द्वारा पत्नी को छोड़ देने से या पत्नी के वैश्या बन जाने पर भी हिन्दू विवाह भंग नहीं हो सकता था। इस कानून के अनुसार कोई भी विवाह,चाहे वह इस अधिनियम के पास होने से पहले हुआ हो या बाद में हुआ हो, पति या पत्नी में से किसी भी अदालत में प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित कारणों से भंग किया जा सकता है।

1. व्यभिचार :–

यदि दोनों में से कोई एक पक्ष व्यभिचाररत रहते हुये जीवन

व्यतीत करता है। (धारा 1) इसका यह अभिप्राय है कि यदि पति–पत्नी में से कोई एक बार ऐसा कार्य करता है तो दूसरा पक्ष इस आधार पर तलाक की मांग कर सकता है ऐसी दशा में वह केवल दूसरे पक्ष से न्यायिक पार्थक्य (Judicial Seperation) की ही मांग कर सकता है। तलाक की माँग के लिये यह सिद्ध करना आवश्यक है, कि दूसरा पक्ष निरन्तर व्यभिचारपूर्ण जीवन बिता रहा है। पुराने हिन्दू कानून के अनुसार व्यभिचार के कारण पत्नी के वेश्या बन जाने पर भी विवाह सम्बंध भंग नहीं होता था, ऐसी दशा में विवाह का प्रयोजन विफल हो जाता था। अतः इस कानून में किसी एक पक्ष के कुछ समय तक निरन्तर व्यभिचारपूर्ण जीवन बिताने की दशा में दूसरे पक्ष को तलाक का अधिकार दिया गया है। व्यभिचार का आशय पति–पत्नी में से किसी एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से यौन सम्बंध स्थापित करना है। न्यायालय में व्यभिचार बिषयक,प्रत्यक्ष साक्षी उपस्थित करना प्रायः सम्भव नहीं होता,अतः इस बिषय में न्यायालय ऐसे प्रमाण (Circum stancial evidence) को भी स्वीकार कर लेते है, जो इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हो कि कोई पक्ष व्यभिचार पूर्ण जीवन बिता रहा है। उदाहरणार्थ,यदि कोई विवाहित स्त्री अपने घर से चार छैः दिन तक निरन्तर गायब रहती है, किसी अन्य तथा पति के कुल से सर्वथा अपरिचित पुरूष के साथ देखी जाती है, वह इसके साथ विभिन्न स्थानों में अपने देखे जाने का कोई समुचित कारण नहीं दे सकती है तो यह परिणाम निकाला जा सकता है कि उसका उस पुरूष के साथ अवैध सम्बंध है और वह उसके साथ व्यभिचारपूर्ण जीवन बिता रही है।

2. धर्म परिवर्तन :–

यदि दोनों पक्षों में कोई एक हिन्दू धर्म को छोड़कर इस्लाम, ईसाइयत ,पारसी, यहूदी आदि किसी अन्य धर्म को ग्रहण करता है तो दूसरे पक्ष को विवाह विच्छेद पाने का अधिकार है। बौद्ध जैन तथा सिक्ख धर्म हिन्दू धर्म के ही अंग समझे जाते है अतः किसी हिन्दू के बौद्ध बन जाने पर दूसरे पक्ष को विवाह विच्छेद की मांग करने का अधिकार नहीं है। इस कानून से पहले धर्म परिवर्तन से भी हिन्दू

विवाह का विच्छेद सम्भव नहीं था। इस कानून में यह व्यवस्था इस आधार पर की गयी है कि दाम्पत्य प्रेम को बनाये रखने के लिये धर्म परिवर्तन करना ठीक नहीं है। यदि कोई पक्ष धर्म परिवर्तन कर लेता है तो हिन्दू बने रहने वाले दूसरे पक्ष को तलाक की मांग का अधिकार होना चाहिये। विवाह विच्छेद कानून के अनुसार हिन्दू या मुसलमान को ईसाई बनाने पर यह अधिकार दिया गया था कि धर्म–परिवर्तन के बाद यदि दूसरा पक्ष उसे छोड़ देता है तो वह दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति के लिये उसके विरूद्ध अभियोग चला सकता है। इसके बाद भी यदि वह उसका परित्याग करता है तो न्यायालय इस विवाह के भंग होने की घोषणा कर सकता है। यही अधिकार हिन्दुओं के इस कानून द्वारा किसी एक पक्ष द्वारा धर्म–परिवर्तन की दशा में दूसरे पक्ष को प्रदान किया गया है।

3. पागलपन :–

यदि पति–पत्नी में से कोई निरन्तर तीन वर्ष से ऐसे मानसिक,पागलपन से पीड़ित है जिसकी चिकित्सा करना संभव नहीं है, तो दूसरा पक्ष उसे तलाक दे सकता है। यदि पागलपन चिकित्सा से ठीक हो सकता है तो तलाक नहीं दिया जायेगा। इस बिषय में यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि कोई पक्ष विवाह के समय ही पागल हो तो वह विवाह के इस कानून के खण्ड 12बी के अनुसार शून्यकरणीय या खण्डित घोषित किया जा सकता है। इसका यह अभिप्राय है कि इस विवाह को न हुआ समझा जायेगा। यदि ऐसा पागलपन दो वर्ष से हो तो इसके लिये न्यायालय में आवेदन–पत्र दिया जा सकता है।

4. कोढ़ की बीमारी :–

यदि कोई पक्ष तीन वर्ष से असाध्य है एवं उग्र कोढ़ से पीड़ित हो तो दूसरा पक्ष तलाक के लिये आवेदन–पत्र दे सकता है।

5. संक्रामक यौन रोग :–

विवाह विच्छेद की माँग एक पक्ष इस आधार पर भी प्रस्तुत कर सकता है कि दूसरे पक्ष को ऐसा यौन रोग है, जिसकी छूत उसे लग सकती है तथा उसे ऐसा रोग आवेदन पत्र देने से तीन वर्ष पहले था। इस दशा में न केवल दाम्पत्य सम्बंध संभव नहीं है, अपितु दूसरे

पक्ष के इस रोग से पीड़ित होने की आशंका है, अतः इस दशा में तलाक की व्यवस्था की गयी है।

6. सन्यासी होना :-

यदि कोई पक्ष सांसारिक जीवन का त्याग करके सन्यासी हो जाता है तो दूसरा पक्ष तलाक पाने का अधिकार रखता है। इसका यह कारण है कि सन्यास का अर्थ सांसारिक कर्तव्यों की ओर से व्यक्ति का विमुख हो जाना। दूसरे पक्ष के साथ वैवाहिक संबंध वैसे ही समाप्त हो जाता है जैसे मृत्यु से समाप्त हो जाता है। ऐसी दशा में नारद,पराशर आदि प्राचीन शास्त्रकारों ने स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार दिया था। इस कानून में इसी का अनुसरण किया गया है। सन्यासी होने का अभिप्राय केवल भगवे वस्त्र धारण करना नहीं है, किन्तु इस आश्रम में प्रवेश के लिये आवश्यक सभी शास्त्रीय विधि-विधानों का पालन करना है। शूद्र को सन्यासी होने का अधिकार नहीं है।

अतः वह इस आधार पर तलाक नहीं ले सकता है। वैरागी सन्यासी होते हुये भी विवाह कर सकते है। अतः इस बात में सन्देह है कि व्यक्ति वैरागी सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाये तो दूसरा पक्ष उससे इस आधार पर तलाक ले सकता है।

7. लापता होना –

यदि दोनों में से किसी पक्ष का कोई व्यक्ति सात वर्ष तक दूसरे पक्ष को या उसके ऐसे सम्बन्धियों को नहीं मिलता तो इस दशा में यह मान लिया जाता है कि लापता व्यक्ति की मृत्यु हो चुकी है। इस दशा में दूसरे पक्ष को तलाक पाने का अधिकार दिया गया है। यह व्यवस्था प्राचीन काल में पराशर ने दी थी। हिन्दू विवाह के कानून की यह धारा इंग्लैण्ड के 1650 के विवाह कानून से ग्रहण की गयी है।

8. पृथक होने के बाद सहवास न करना :-

पति पत्नी में से जब कोई पक्ष अदालत से पृथक रहने की आज्ञा प्राप्त कर लेता है तो इससे उसका वैवाहिक सम्बंध भंग नहीं होता है। यदि इसके बाद उनमें पुनः समझौता हो जाता है और वे पुनः इकट्ठा रहने लगते हैं तो उसके पृथक्य की अदालती आज्ञा रद्द की जा सकती है (10 वीं धारा)यदि ऐसी आज्ञा बिना रद्द करवाये

पति–पत्नी इकट्ठे रहने लगते हैं, तो ऐसी आज्ञा तलाक का कारण नहीं बन सकती है। किन्तु यदि ऐसी आज्ञा प्राप्त करने के दो वर्ष बाद तक भी वे सहवास नहीं करते हैं, तो इस आधार पर तलाक की मांग की जा सकती है।

9. दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति की आज्ञा का पालन न करना –

यदि दोनों पक्षों में से कोई पक्ष दूसरे पक्ष को दाम्पत्य सम्बंध से वंचित करता है और दूसरा पक्ष पहले पक्ष के विरूद्ध इसी विषय में अदालत से दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति (Restitution Conjugal Rights) की आज्ञा प्राप्त कर लेता है, किन्तु इस आज्ञा के बावजूद यदि दो वर्ष तक पहला पक्ष इसका पालन नहीं करता,तो दूसरा पक्ष इस आधार पर तलाक के लिये आवेदन पत्र दे सकता है इसका कारण स्पष्ट है पति पत्नी दाम्पत्य जीवन बिताने के लिये विवाह सूत्र में आबद्ध होते है, यदि इन दोनों में से कोई एक–दूसरे को जान बूझकर दाम्पत्य सम्बंध स्थापित करने से वंचित करता है, तो दूसरे को न्यायालय द्वारा इसे पाने का अधिकार है। यदि वह इस बिषय में न्यायालय की आज्ञा की अवहेलना करता है तो, इसका यह अभिप्राय है कि वह दूसरे पक्ष के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध नहीं रखना चाहता है। इस दशा में वैवाहिक सम्बंध को बनाये रखने में कोई लाभ नहीं है अतः इस कारण के आधार पर इस कानून से तलाक की व्यवस्था की गयी है।

उपर्युक्त नौ कारणों के आधार पर पति–पत्नी समान रूप से अदालत में तलाक के लिये आवेदन पत्र दे सकते हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त दो कारण ऐसे है, जिनके आधार पर केवल पत्नी विवाह–विच्छेद की मांग कर सकती है। पहला कारण एक से अधिक पतियों का जीवित होना है। इस कानून द्वारा एक विवाह की व्यवस्था को हिन्दू समाज में कठोरतापूर्वक लागू किया गया है और एक पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह को दण्डनीय अपराध बना दिया गया है। किन्तु इससे पहले के हिन्दू कानून में पुरूषों को बहुर्विवाह की खुली छूट थी। किसी कानून से ऐसे विवाहों को रद्द नहीं किया जा सकता था अतः इन विवाहों के कारण कष्टमय जीवन बिताने वाली स्त्रियों को इस व्यवस्था से तलाक

पाने का अधिकार दिया गया है। इसका सम्बंध इस कानून के पास होने से पहले किये गये बहुर्विवाहों से है। क्योंकि इस कानून के पास हो जाने के बाद कोई पक्ष दूसरे पक्ष के जीवित रहते हुये दूसरा विवाह नहीं कर सकता है। इस व्यवस्था के अनुसार तलाक पाने के लिये वादी को निम्नलिखित बातें सिद्ध करनी पड़ती है।

क) प्रतिवादी ने इस कानून के पास होने से पहले उसके साथ तथा किसी अन्य स्त्री या स्त्रियों के साथ विवाह किया है।

ख) आवेदन पत्र देने के समय उसकी अन्य पत्नियाँ जीवित है पत्नी द्वारा पति से तलाक लेने का दूसरा विशेष कारण पति का पशुवत व्यवहार है।

तलाक का आवेदन पत्र देने की अवधि :-

हिन्दू विवाह कानून के खण्ड 14 के अनुसार कोई भी न्यायालय तलाक के किसी आवेदन-पत्र पर तब तक विचार नहीं कर सकता जब तक कि आवेदन पत्र देने के समय विवाह सम्पन्न हुये तीन वर्ष न व्यतीत हो चुके हों यह व्यवस्था 1954, के विशेष विवाह कानून की तथा इंग्लैण्ड के 1950 के विवाह कानून की व्यवस्था से मिलती है। इसके अनुसार विवाह के आरम्भिक तीन वर्षों में तलाक का कोई आवेदन पत्र नहीं दिया जा सकता इसका उद्देश्य यह है, कि पति-पत्नी विवाह के बाद फौरन तलाक न दे तीन वर्ष तक एक दूसरे के साथ मिलजुल कर रहने और निभाने का प्रयत्न करें,तीन वर्ष ऐसा निर्वाह करने के बाद उनमें स्वाभाविक रूप से ऐसा प्रीतिपूर्ण सम्बन्ध हो जायेगा कि तलाक की सम्भावना बहुत कम हो जायेगी।

विवाह के पहले तीन वर्षो में सामान्य रूप से तलाक का अधिकार न देते हुये भी दो विशेष दशाओं में इनका आवेदन पत्र देने का अधिकार इस कानून में स्वीकार किया गया हैं। पहली दशा असाधारण दुश्चरित्रता की तथा असाधारण कष्ट की है। इन दोनों की कानून में कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की गयी। सामान्य रूप से असाधारण कष्ट का यह अभिप्राय है कि नव वधू के साथ बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया जाये, इसके साथ पति व्यभिचारी अथवा पत्नी को छोड़ देने वाला हो। पत्नी का व्यभिचारपूर्ण सम्बन्ध से सन्तान उत्पन्न करना भी इसी प्रकार का कष्ट है। कष्ट का अभिप्राय शारीरिक,मानसिक,आर्थिक और

सामाजिक आदि सभी प्रकार के ऐसे कष्टों से है, जिनके आधार पर तलाक की मांग की जाती है। असाधारण दुश्चरित्रता का अभिप्राय प्रतिवादी द्वारा वादी के साथ उसकी इच्छा के विरूद्ध ऐसी दशा में यौन सम्बंध स्थापित करना है। जब वह यौन रोग तथा कोढ़ से पीड़ित हो। एक ब्रिटिश मामले में असाधारण कष्ट और दुष्चरित्रता के बारे में निम्नलिखित सिद्धान्त निश्चित किये गये है –

1. पत्नी के लिये असाधारण कष्ट उस दशा में होता है जब पति व्यभिचारी होने के साथ–साथ पत्नी का दूसरी स्त्री के लिये परित्याग करे अथवा उसके साथ क्रूर व्यवहार करे। केवल व्यभिचार असाधारण कष्ट नहीं है।
2. व्यभिचार के साथ पत्नी द्वारा अवैध सन्तानोत्पादन एक असाधारण दुश्चरित्रता है। मद्रास के मेघनाथ बनाम सुशीला नामक मामले में उपर्युक्त ब्रिटिश मामले का अनुसरण किया गया है।

उपर्युक्त दोनों कारणों के आधार पर किये जाने वाले तलाक के मामलों पर विचार करते हुये न्यायालय दो बातों का ध्यान रखता है, पहली बात बच्चों की सुरक्षा और व्यवस्था की है, यदि इनके हितों को कोई आंच आती है तो तलाक के आवेदन पत्र पर विचार नहीं हो सकता। दूसरी बात इसकी युक्ति युक्त संभावना है कि तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने से पहले ही उनमें समझौता हो जायेगा। न्यायालय को इस बात का प्रयास करना चाहिये। यदि इस बात की संभावना हो तो तलाक की प्रार्थना अस्वीकार कर दी जानी चाहिये।

पुनर्विवाह की प्रक्रिया :–

तलाक का आवेदन पत्र स्वीकार होते ही दोनों पक्षों को पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है, इसके बाद एक वर्ष उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इस अवधि के बीत जाने पर दोनों का विवाह सम्बन्ध पूर्ण रूप से विच्छिन्न हो जाता है और वे नया विवाह कर सकते है। एक वर्ष की यह अवधि जानबूझ कर रखी गयी है। इसका उद्देश्य लोगों को तलाक के लिये निरुत्साहित करना और नयी शादी के लिये ही तलाक पाने की प्रवृति को रोकना है।

जब हिन्दू विवाह कानून में तलाक की व्यवस्था का प्रस्ताव रखा गया था,उस समय रूढ़िवादी हिन्दुओं नें इस आधार पर घोर विरोध

किया था। जिससे तलाक की समाज में बाढ़ आ जायेगी तब अनैतिकता में घोर वृद्धि होगी।

किन्तु हिन्दू विवाह कानून में इसकी व्यवस्थायें इतनी कठोर बनायी गयी है कि इसे कोई आसानी से प्राप्त नहीं कर सकता है। सामान्य रूप से विवाह के पहले तीन वर्षों में तलाक का कोई आवेदन पत्र नहीं दिया जा सकता, तीन साल बाद आवेदन-पत्र देने पर विवाह तो दीवानी मामले का फैसला होने में दो तीन वर्ष लगना मामूली बात है। इसके बाद पुनर्विवाह के लिये दोनों पक्षों को एक वर्ष की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस प्रकार तलाक प्राप्त करने में पाँच छः वर्ष लग जाते है। और भारी व्यय करना पड़ता है,अतः अब तक हिन्दू समाज में तलाक की व्यवस्था का दुरूपयोग नहीं हुआ,इससे अनैतिकता में कोई वृद्धि नहीं हुई और भविष्य में इसकी कोई सम्भावना प्रतीत नहीं होती है।

अध्याय – षष्ठम्

विधवा विवाह

- धर्मसूत्रों में विधवा विवाह
- महाकाव्य काल मे विधवा विवाह
- मौर्य काल में विधवा विवाह
- गुप्त काल में विधवा विवाह
- विधवा विवाह निषेध का प्रारम्भ
- नियोग के नियम

विधवा विवाह

अतिप्राचीन काल में भारत में विधवा स्त्री की सामाजिक स्थिति बहुत शोचनीय नहीं थी परन्तु कालान्तर में उसकी स्थिति खराब हो गयी। प्राचीन काल में विधवा हो जाने पर वे स्वेच्छानुसार संयमित जीवन व्यतीत कर सकती थी। परन्तु यदि वह अपने को इसमें असमर्थ पाती थीं तो पुनर्विवाह करके पुनः सध्वा हो सकती थीं। प्राचीन भारत में नियोग–प्रथा का प्रचलन था। परन्तु कालान्तर में नियोग प्रथा समाप्त होती गयी और उसका स्थान सती प्रथा ने ले लिया।

मनु स्मृति में कहा गया है कि –

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगःकीर्त्यते क्वचित्।
न विवाह विधावुक्तं विधषावेदनं पुनः।।
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ।।[133]

अर्थात् विवाह के वेदोक्त मन्त्रों में नियोग कही नहीं लिखा है और न तो विवाह बिषयक शास्त्रों में ही कहीं विधवा विवाह का उल्लेख है। विद्वान ब्राह्मणों ने इस पशु धर्म की अत्यन्त निन्दा की है। मनुष्यों में भी वेन राजा के समय से यह पशु धर्म प्रचलित हुआ है।

धर्मसूत्रों में विधवा विवाह –

धर्मसूत्रों में विधवा विवाह के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। वशिष्ठ धर्म सूत्र पौनर्भव पुत्र की व्याख्या करता हुआ कहता है कि पूनर्भू का पुत्र पौनर्भव होता है और पुनर्भू वह स्त्री है जो अपने अविवाहित (कौमार) पति को छोड़कर दूसरे के साथ विचरण करती है और उसके बाद फिर अपने पहले पति के पास लौट आती है अथवा जो नपुसंक,जातिभ्रष्ट,उन्मत्त या मृत पति को छोड़कर दूसरे पति को प्राप्त करती है।

कई बार कन्या का वाग्दान हो जाता था किन्तु विवाह से पहले ही उसका पति मर,जाता था इस अवस्था में भी धर्मसूत्र उसके पुनर्विवाह की व्यवस्था करते हैं। यदि पाणिग्रहण हो गया हो और कन्या

अभी अक्षतयोनी हो तो उस व्यवस्था में भी उसका दूसरा विवाह हो सकता था। बौधायन धर्मसूत्र ने वशिष्ठ से मिलती जुलती व्यवस्था की है। कौटिल्य ने पति के मर जाने पर सात महीने की प्रतीक्षा के बाद पत्नी को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है।

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत नियोग-प्रथा के अतिरिक्त विधवा-विवाह का भी उल्लेख किया गया है। उस युग में नियोग की तुलना में विधवा विवाह कम प्रचलित था। नियोग की मान्यता वास्तव में पुनर्विवाह का ही रूप था क्योंकि नियोग के द्वारा कोई विधवा तीन पुत्र प्राप्त कर सकती थी। ऋग्वेद में जो उल्लेख मिलता है वे वास्तव में नियोग के हैं, विधवा-विवाह के नहीं। सबसे पहले अथर्ववेद में विधवा विवाह का संकेत प्राप्त होता है। इसमें यह उल्लेख है कि यदि किसी स्त्री का पहले क्षत्रिय या वैश्य पति है तो उसकी मृत्यु के बाद, यदि वह किसी ब्राह्मण से विवाह कर ले तो ऐसा पति वास्तविक पति कहा जायेगा। अथर्ववेद में यह भी उल्लेख है कि यदि कोई स्त्री एक पति से विवाह करने के बाद दूसरे से विवाह करती है और यदि वे दोनों एक बकरी एवं भात की पाँच थालियां दे दें तो वे एक दूसरे से अलग नहीं होगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि अथर्ववेद के काल में विधवा विवाह को वर्जित नहीं माना जाता था। 'तैत्तिरीय संहिता' में दैधिपव्य' का उल्लेख विधवा-पुत्र के रूप में हुआ है। धर्मशास्त्र मं अनेक स्थानों पर पुनर्भु एवं 'पौनर्भव' शब्दों को प्रयोग किया है। धर्मशास्त्र में अनेक स्थलों पर 'पुनर्भ' एवं 'पौनर्भव' शब्दों का प्रयोग किया है। 'पुनर्भ' शब्द उस विधवा के हेतु प्रयुक्त होता था जिसने पुनर्विवाह किया हो ऐसी से उत्पन्न पुत्र को 'पौर्भव' कहा जाता था। इन शब्दों के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी। जिन कारणों से स्त्री का पुनर्विवाह होता था उनमें वैधव्य प्रमुख था। इसके अतिरिक्त स्त्री पति के क्लीव और पति होने पर भी पुनर्विवाह कर सकती थी। वशिष्ठ के अनुसार कोई ब्राह्मण स्त्री पति के विदेश जाने पर पाँच वर्ष से अधिक प्रतीक्षा न करते हुये चाहे तो किसी निकट-सम्बंधी से पुनर्विवाह कर सकती थी।

ई0पू0300 से 200 ई0मध्य तक विधवा विवाह प्रचलन कम होने लगा और उसे बुरा कहा जाने लगा। 'अंगुत्तर निकाय' में यह चित्रण है कि एक पत्नी पति से प्रतिज्ञा कराती है कि वह उसकी मृत्यु के बाद पुनर्विवाह नहीं करेगा। संन्यास की विचारधारा के प्रभाव के फलस्वरूप विधवा-विवाह का विरोध 200 ई0के पश्चात् निरन्तर बढ़ता गया। विष्णु ने विधवा के हेतु ब्रह्मचर्य को अच्छा बतलाया और मनु ने कहा कि पति की मृत्यु के बाद विधवा को पुनर्विवाह के हेतु सोचना ही नहीं चाहिये। नारद ने कहा कि कन्या का विवाह केवल एक ही बार हो सकता है। वह स्त्री के पुनर्विवाह को अनुमति नहीं देता। पाराशर का भी इसी प्रकार का मत है। नारद स्मृति में परस्पर विरोधी उल्लेख दिखाई पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि ब्राह्मणों में विधवा-विवाह की प्रथा अलोकप्रिय होती जा रही थी परन्तु उस युग में अन्य वर्णों में इस प्रथा का प्रचलन था।

यहाँ यह भी उल्लेख कर देना आवश्यक होगा कि बाल-विधवा के पुनर्विवाह का विरोध भारत में नहीं किया गया। महाभारत में लिखा है कि बाल-विधवा के पुनर्विवाह को बुरी दृष्टि से नहीं देखना चाहिये और उसके पुत्रों को भी देवताओं पूर्वजों को उपहार देने का अधिकार है। प्रमुख धर्मशास्त्र के लेखकों ने बाल विवाह के प्रति उदारता का भाव अपनाया। वशिष्ठ ने लिखा है यदि केवल विवाह-संस्कार ही हुआ है तो कन्या का पुनर्विवाह कर देना चाहिये। बौधायन का भी इसी प्रकार का मत है।

600 ई0के लगभग भारतीय समाज में विधवा-विवाह के विरोध की भावना बढ़ती गयी और उस समय के स्मृति लेखकों ने विधवा-विवाह की कड़ी भर्त्सना की। पुराण में लिखा है कि कलियुग मे विधवा विवाह नहीं करना चाहिये। विधवा के पुत्र को श्राद्ध के हेतु नहीं बुलाया जाना चाहिये। माधव ने भी इसे मान्यता प्रदान की है। 1000ई0के पश्चात् तो बाल-विधवा के पुनर्विवाह पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये गये। कुछ लोगों ने तो वाग्दान को ही विवाह मानना प्रारम्भ कर दिया और बाग्दान के बाद यदि वर की मृत्यु हो जाती थी तो कन्या को विधवा माना जाता था।[134]

किन्तु मनु के अनुसार –

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पति।
तामनेन विधानेन निजो विन्दते देवरः।।
यथाविध्यर्धिगम्यैनां शुक्ल वस्त्रां शुचिव्रताम्।
मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ।।[135]

अर्थात् वाग्दान हो जाने के बाद जिस कन्या का पति मर जावे ऐसी कन्या के साथ आगे कही हुई विधि के अनुसार उसका देवर विवाह करे। वह देवर यथाविधि (विवाहोक्तविधि) से नियोग कर उस पवित्र व्रत और सफेद वस्त्र पहनने वाली स्त्री से गर्भधारण काल तक ऋतुकाल में एक बार समागम करे।

कुछ मनीषियों ने 1000 ई0के बाद भी विधवा–विवाह के प्रतिकूल विचार व्यक्त किये परन्तु कुछ निम्न जातियों में इसका प्रचलन रहा, परन्तु अधिकतर विधवा विवाह वर्जित था।

महाकाव्य काल में विधवा विवाह :–

रामायण कालीन एवं महाभारत कालीन समाज में अनेक प्रकार की परम्परायें,रस्में और रीति–रिवाज थे जिनके आधार पर सामाजिक मूल्यों की गणना की जाती है। महाकाव्य काल में विधवा विवाह की परम्परा थी इस काल में स्त्रियों की दशा वैदिक काल की अपेक्षा हीन और शर्मनाक थी। जिनकी सोच वैदिक काल की नारियों से बिल्कुल भिन्न थी। उनका जीवन भोग विलास की वस्तु बन चुका था परन्तु महाकाव्य कालीन समाज की स्त्रियां जैसे कौशल्या, तारा और द्रोपदी जैसी पंडिता थी। महाकाव्य काल की स्त्रियां धर्म अर्थ तथा काम की मूल स्त्रोत है। अनुशासन पर्व में भी कहा गया है कि स्त्री समृद्धि का प्रतीक है। स्त्री समृद्धि से ही परिवार का पालन पोषण और शान्ति रहती है।

समाज में इस समय बहु विवाह अन्तर जातीय विवाह तथा विधवा विवाह का प्रचलन था विधवा स्त्रियां अपने परिवार के पति के छोटे भाई के साथ या उसी जाति के अन्य पुरुष के साथ शादी कर लेती थी। क्षत्रिय कुलों में विवाह स्वयंवर प्रथा द्वारा समपन्न कराये

जाते थे इस समय इस काल में शूद्रों की सामाजिक परम्परायें सबसे निम्न थीं। शूद्रों में विधवा विवाह का प्रचलन था। परन्तु उच्च वर्ग में विधवा विवाह की संख्या कम थी या उनकों हीन दृष्टि से देखा जाता था।

महाकाव्य कालीन समाज में विधवा विवाह एक प्रकार की वह सामाजिक व्यवस्था थी जिससे सामाजिक बुराइयों को जैसे व्यभिचार, दुराचार और वैश्यावृत्ति को रोका जा सके या उनको प्रतिबन्धित किया जा सके। विधवा विवाह के द्वारा स्त्रियों को किसी अन्य परिवार से जोड़कर उसका विवाह कर दिया जाता था परन्तु इनसे उत्पन्न होने वाली सन्तान को शूद्र या हीन दृष्टि से देखा जाता था। जो संतान के लिये समाज का घृणास्पद रूप ही व्यक्त करता हैं।

महाकाव्य कालीन समाज में विधवा विवाह के प्रचलन के दो पक्ष थे सकारात्मक और नकारात्मक। सकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाये तो विधवा विवाह अच्छा था क्योंकि इसके द्वारा समाज और परिवार में होने वाली दुश्चरित्रता और व्यभिचारिता को प्रतिबन्धित किया जा सकता है जिस कारण से समाज में और परिवार में होने वाली वर्ण शंकर सन्तान कम से कम पैदा हो। नकारात्मक दृष्टि से देखा जाये तो विधवा विवाह समाज और परिवार के लिये एक अभिशाप था क्योंकि इस विवाह से घरों में आने वाली पत्नियों की चित्त दशायें और साधना अच्छी नहीं समझी जाती थी। जिस कारण से समाज और परिवार के लोग हमेशा इनका तिरस्कार करते थे।

महाकाव्य कालीन सामाजिक दशायें और नारी के विधवा विवाह का प्रचलन समाज के लिये एक चिन्तन का विषय था। इस समय के विधवा विवाह अन्य युगों से कुछ भिन्न थे। रामायण कालीन समाज महाकाव्य कालीन समाज से अधिक रूढ़िवादी और कट्टरपंथी था एवं सामाजिक ढंाचा महाकाव्यकालीन समाज से भिन्न था।

वाल्मीकि रामायण तथा हरिवंश पुराण में विधवा विवाह के सुस्पष्ट उल्लेख मिलता है। रामायण कालीन वैवाहिक रस्में जो विधवा विवाह से जुड़ी हुई है उनमें कई प्रकार की विसंगतियां एवं कुरीतियां थी।

समाज हमेशा विधवाओं को हीन–दृष्टि से देखता था। समाज की सोच में पारदर्शिता का स्पष्टीकरण नजर नहीं आता है। विधवाओं का मान–सम्मान सुहागिनों की अपेक्षा कम था। विधवाओं और सुहागिनों की सोच में काफी अन्तर था।

महाकाव्यकालीन समाज में शुभ एवं मांगलिक कार्य को सम्पादित करने के लिये हमेशा सुहागिनों को बुलाया जाता था। विधवाओं को नहीं बुलाया जाता था।

वात्सलता विधवाओं में भी थी। वे भी चाहती थी कि उनको पति सुख मिले तथा संतान की प्राप्ति हो। मांगलिक कार्यों में हिस्सा लेना वे अपना कर्तव्य व फर्ज समझती थी। ई0पू0छठी शताब्दी से पूर्व के हिन्दू धर्म–ग्रन्थों पर आधारित पौराणिक इतिहास में कई प्रकार की भिन्नतायें मिलती है।

रामायण काल में विधवा विवाहों का प्रचलन था। जिसका वर्णन वाल्मीकि रामायण में मिलता है। परन्तु उस समय विधवा–विवाह एक कर्तव्यनिष्ठता को प्रतिबिम्बित करता था। इस समय राम एक आदर्श पुत्र, पति और शासक के रूप में जाने जाते थे। भारतीयों के चरित्र–निर्माण में रामायण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

रामायण और महाभारत में विधवा विवाह के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। रामायण में राम द्वारा मारे गये बालि की विधवा तारा सुग्रीव से विवाह कर लेती है। जिसका वर्णन रामचरितमानस के किष्किन्धाकाण्ड में देखने को मिलता है।

महाभारत में नल दमयन्ती के उदाहरण से स्पष्ट है कि उस समय विधवा विवाह को बुरा नहीं माना जाता था। सत्यवती विचित्रवीर्य की मृत्यु पर भीष्म से यह प्रार्थना करती है कि वह उसके पुत्र की विधवाओं से विवाह करे किन्तु भीष्म की आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत के पालन की प्रतिज्ञा विवाह करने में बाधक थी। किन्तु सत्यवती का प्रस्ताव विधवा–विवाह के प्रचलन को अवश्य सूचित करता है। नागराज ऐरावत ने अपनी विधवा पुत्री का विवाह अर्जुन के साथ किया था। इस विवाह से अर्जुन का इरावन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

''महाकाव्य काल में विवाह वयस्क अवस्था में होते थे। शायद सभी के लिये विवाह आवश्यक था। सुभ्रवु ने मरने के एक दिन पहले श्रृंगावत से विवाह किया था कुलीन वर्ग के लोग एक से अधिक पत्नियां रखते थे। नियोग तथा सती प्रथा प्रचलित थी।[136]

महाकाव्यों के काल में स्त्रियों की दशा अच्छी न थी। इस युग में बहु–विवाह की प्रथा प्रचलित थी। राजा दशरथ के स्वयं तीन रानियां थीं। द्रोपदी के पाँच पति थे– युधिष्ठिर,भीम,अर्जुन,नकुल और सहदेव । इन पाँचों पाण्डवों ने द्रोपदी के साथ विवाह किया था। कौरवों ने राज–सभा में खुले आम द्रौपदी का अपमान किया। इससे प्रकट होता है कि उस समय अन्तःपुर व राजदरबार में षडयंत्र रचे जाने लगे थे और समाज में स्त्रियों का वह उच्च स्थान न रह गया था, जो वैदिक काल में था। महाभारत में लिखा है, ''स्त्री ही सब बुराइयों की मूल है और पुत्री का जन्म एक अनर्थ की बात है।''

कहीं–कहीं सती –प्रथा का भी उल्लेख मिलता है। पाण्डु की दो पत्नियों में से एक अपने पति के साथ सती हो गयी थी। प्रायः विध
ावाओं का विवाह कर दिया जाता था। राजाओं,महाराजाओं को छोड़कर अन्य लोगों को एक से अधिक विवाह करने की आज्ञा न थी। स्त्रियों का आदर्श बड़ा ऊँचा था। सीता, सावित्री,दमयन्ती, आदि का जीवन अनुकरणीय है। सुभद्रा का त्याग तथा पति–निष्ठा आदर्श थी। उर्मिला भी त्याग व सन्तोष की मूर्ति थी। द्रौपदी आदर्श जीवन–संगिनी थी। स्त्री का वध महापाप समझा जाता था और वह पुरूष की अर्द्धांगिनी समझी जाती थी।

महाकाव्य काल में नियोग प्रथा भी प्रचलित थी। नियोग प्रथा उस को कहते थे जब पति की असमर्थता में स्त्री किसी अन्य व्यक्ति के साथ संसर्ग करके संतान उत्पन्न कर लेती थी। महाभारत में लिखा है, ''पति के मर जाने पर स्त्री देवर के साथ नियोग करके सन्तान उत्पन्न कर सकती थी।''

बौद्ध साहित्य में स्त्रियों के पुनिर्विवाह के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। 'उच्चांग जातक' में यह कहा गया है कि स्त्री सुगमतापूर्वक दूसरे पति की प्राप्ति कर सकती है। 'नन्द जातक' में इस

तरह का उल्लेख किया गया है कि एक पति भयभीत है कि उसकी मृत्यु के बाद उसकी स्त्री पुनर्विवाह कर लेगी तथा इस स्थिति में उसके पुत्र को कुछ भी सम्पत्ति प्राप्त नहीं होगी। 'बेसंतर जातक' में एक पति अपनी मृत्यु के पहले ही पत्नी को पुनर्विवाह का परामर्श देता है जिससे कि उसकी युवा-वस्था नष्ट न हो।[137]

मौर्य काल में विधवा विवाह –

मौर्य साम्राज्य अपने विशाल आकार के कारण भारत में अद्वितीय था। इसके अतिरिक्त यहाँ का सामाजिक जीवन, परम्परायें रीति-रिवाज, रस्में, तौर -तरीके इस साम्राज्य की विशेषता रही। मौर्य साम्राज्य में विधवा-विवाह की जानकारी विभिन्न बौद्ध-ग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त होती है। जैसे दीपवंश,महावंश,महाबोधिवंश, अट्टकथा, मिलिन्दपन्हो, दिव्यावदान,मंजूश्रीकल्पतरू आदि। दीपवंश और महावंश ग्रन्थ श्रीलंका में लिखे गये। दोनों ग्रन्थ पाली भाषा में लिखे गये। सम्राट अशोक के समय लिखे गये विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों से विध ावा-विवाह की जानकारी मिलती है। उपरिक द्वारा रचित 'महाबोधिवंश में विधवा-विवाह की परम्परायें मिलती हैं।

मौर्य कालीन विधवा-विवाह की परम्परायें जैन-ग्रन्थों में भी मिलती है। इन ग्रन्थों में हेमचन्द्र द्वारा परिशिष्ट पर्व,भद्रबाहु का भद्रबाहु चरित्र, प्रभसंशि द्वारा रचित " विचार श्रेणी" श्रीचन्द्र कृत 'कथा-कोष'प्रभाचन्द्र का 'आराधना सत्यकथा प्रबन्ध आदि प्रमुख ग्रन्थों में विधवा-विवाह के समकालीन समाज के उदाहरण एवं लेख मिलते हैं।

धर्म-निरपेक्ष ग्रन्थों में मौर्य-कालीन रचनायें देखने को मिलती है। इन रचनाओं में मौर्य-कालीन सामाजिक परम्परायें एवं विधवा-विवाह का उल्लेख मिलता है।

मौर्य, शूद्र एवं निम्न कुल से थे। समर्थन में जस्टिन के उल्लेख, पुराण एवं उसकी टीका,मुद्राराक्षस एवं उसकी टीका, कथासरितसागर, तथा बृहत्कथामंजरी के साक्ष्यों को प्रस्तुत किया जाता है। मौर्य शूद्रों की उत्पत्ति के विषय में ऐसा अनुमान है कि वे पुनर्विवाहित स्त्रियों से या विधवा स्त्रियों से उत्पन्न हुये होंगे।

मौर्य संस्कृति और सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति पहले से गिर गयी थी। यद्यपि वे शिक्षा प्राप्त करती थी। धार्मिक और सामाजिक कार्यो तथा उत्सवों में भाग लेती थी। इनकी स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध था। साधारण व्यक्ति एक ही स्त्री से विवाह करता था परन्तु धनाढ्य और राजवर्ग के पुरूषों में बहु विवाह प्रचलित हो गया था। स्त्री को विधवा विवाह तथा पुनर्विवाह करने का अधिकार था। कुछ स्त्रियां वैश्यावृति भी करती थी। उनको वैश्या तथा गणिकायें कहा जाता था।

मौर्यकालीन युग में विधवा स्त्रियों को भी आभूषण एवं चमकीले वस्त्र पहनने का पूरा अधिकार था। स्त्री तथा पुरूष दोनों ही सौन्दर्य के प्रति जाग्रत थे। मौर्य वंश में विधवा स्त्रियों को निम्न कुल के रूप में देखा जाता था। उनको उच्च कुलीन श्रेणी में नहीं रखा जाता था।

मुद्रा राक्षस में भी विधवा विवाह का वर्णन है। मौर्य युगीन समाज में स्त्रियों की दशा बड़ी सोचनीय थी। स्त्रियों की निम्न स्थिति के कारण सामाजिक तनाव अवश्य होगा परन्तु यह प्रभाव उस समय तक व्यक्त नहीं हुआ था।

गुप्तकाल में विधवा विवाह :–

गुप्तकाल में स्त्रियों की स्थिति में पहले की तुलना में गिरावट आ गयी थी। स्त्रियों की गिरती हुई स्थिति के कई कारण थे,विधवा–विवाह,बाल–विवाह, अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन था।

"स्मृति तथा निबन्ध ग्रन्थों के अनुसार 8 से 10 वर्ष की आयु तक विवाह हो जाना चाहिये"। "कामसूत्र तथा मध्यकालीन साहित्य से विधवा विवाह की जानकारी मिलती है"।

नारद स्मृति में विधवा विवाह का प्रचलन मिलता है।[138]

गुप्त युग के विभिन्न शासकों की सामाजिक परम्परायें (विधवा–विवाह) अलग–अलग थी।प्रथम कुमार गुप्त के "मानकुँवर लेख" में विधवा विवाह के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है।

एस0आर0गोयल का विचार है कि घटोत्कच के शासन काल में नियोग एवं विधवा विवाह की परम्परा थी।

एरण लेख के अनुसार समुद्रगुप्त के समय विधवा–विवाह का प्रचलन था ।

"देवीचन्द्र गुप्तम्" नाटक में कांच के शासन के समय के विध ावा विवाह का वर्णन मिलता है। डी0आर0भण्डारकर,ए0एस0अल्तेकर तथा के0पी0जायसवाल जैसे कुछ विद्वानों ने भी विधवा–विवाह का समर्थन किया है।

विधवा विवाह निषेध का प्रारम्भ –

महाभारत से ज्ञात होता है कि उस समय न केवल विधवाओं के अपितु स्त्रीमात्र के पुनर्विवाह को बुरा समझा जाने लगा था। दीर्घतमा ऋषि की पत्नी प्रद्वेषी दीर्घतमा को छोड़कर दूसरे के पास जाने को तैयार हुई। उस ऋषि ने कहा आज से मैं ऐसी मर्यादा स्थापित करता हूँ कि जन्म भर के लिये स्त्री का एक ही पति हो, पति हो या न हो स्त्री को दूसरे पति के पास नहीं जाना चाहिये। स्पष्टतया यह विधवा के पुनर्विवाह का स्पष्ट निषेध था। दुर्योधन ने कहा है कि श्रेष्ठ क्षत्रियों के मर जाने पर इस पृथ्वी को भोगने की इच्छा मुझमें उसी तरह नहीं है जैसे विधवा स्त्री को भोगो के लिये इच्छा या उत्साह नहीं होता। रामायण में विधवा विवाह के जो उदाहरण मिलते हैं वे अनार्य कपि एवं राक्षसा जातियों के हैं।

इससे स्पष्ट है कि आर्य जाति में उस समय विधवा होने को निन्दित समझा जाने लगा था।

मनु के मत में पति के मर जाने पर पत्नी को अन्य पुरूष का नाम भी न लेना चाहिये। वह आमरण ब्रह्मचारिणी रहे,पति के मरने पर जो स्त्रियां पुत्रहीन होने पर भी ब्रह्मचर्य धारण करती है वे स्वर्ग में जाती है। पुत्र के लोभ से जो स्त्री दूसरे पुरूष के पास जाती है वह निन्दित होती है। साध्वी स्त्रियों का कोई दूसरा पति नहीं होता। इस प्रकार मनु ने स्पष्ट शब्दों में विधवा विवाह का निषेध किया है।

नियोग प्रथा –

पति की मृत्यु पर विधवा होने वाली नारी के लिये प्राचीन हिन्दू समाज में तीन मार्ग बताये गये थे। पहला मनु के मतानुसार संयम

पूर्ण कठोर तपस्या और ब्रह्मचर्य वाला वैधव्य जीवन बिताना था,दूसरा पति की चिता पर चढ़ना और तीसरा शास्त्रों में बताये गये नियमों के अनुसार नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करना था। नियोग का सामान्य अर्थ आदेश देना है, जब किसी सन्तान हीन अथवा विधवा स्त्री को किसी विशिष्ट पुरूष के साथ सम्भोग द्वारा सम्बंध स्थापित करके पुत्र पैदा करने का आदेश या अनुमति दी जाती है तो ऐसा विवाह नियोग के नाम से अभिमत किया गया था। गौतम ने उसका लक्षण करते हुये कहा है कि पतिहीना नारी यदि पुत्र की इच्छा रखती है तो इसे देवर से प्राप्त करें। (अपतिरपत्य लिप्सुर्देवरात) किन्तु ऐसा करने के लिये उसे गुरूजनों से आज्ञा लेनी चाहिये, सम्भोग केवल ऋतुकाल में ही करना चाहिये। जब देवर न हो तो सपिण्ड,संगोत्र, सप्रवर से पुत्र प्राप्त कर सकती है।इस प्रथा द्वारा दो से अधिक पुत्र नहीं प्राप्त करने चाहिये। गौतम ने अन्यत तथा मनु ने नियोग से सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री को क्षेत्रिय या क्षेत्रिक तथा इसमें नियोग से होने वाले पुत्र को क्षेत्तज,विवाह के दिवंगत पति को क्षेत्रीय या क्षेत्रिक तथा पुत्रोत्पत्ति के लिये नियुक्त देवर आदि पुरूष को बीजी अथवा नियोजी कहा है।

भारतीय इतिहास में नियोग की प्रथा वैदिक कालीन है । ऋगवेद में एक दाह संस्कार सम्बन्धी ऋचा में अपने मृत पति की चिता के निकट बैठी विधवा के लिये यह निर्देश किया गया है कि जिसके पास तुम बैठी हो वह निर्जीव है जिसने तुम्हारा हाथ पकड़ा और प्रेम किया उस पति के प्रति तुम्हारा पत्नीत्व पूरा हो चुका। ऋग्वेद के अतिरिक्त उत्तर वैदिक कालीन अनेक ग्रन्थों में ऐसी पुत्रहीन विधवाओं का उल्लेख है जो पुत्र की प्राप्ति के लिये अपने देवर को पति बनाती है।

महाभारत में नारी को पति के अभाव में अपने देवर को पति बनाने का निर्देश दिया है।

"नारी तु पत्याभावे देवरं कृणुतेपति। "

महाभारत में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। विचत्रवीर्य के निःसन्तान मर जाने पर उसकी रानियों ने व्यास से नियोग करके धृतराष्ट्र और पाण्डु को उत्पन्न किया था। पाण्डु के अयोग्य होने पर

कुन्ती और माद्री ने नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न किये थे। महार्षि व्यास ने सत्यवती की विधवा पुत्र वधुओं के साथ नियोग किया था। महाभारत के अनुसार नियोग द्वारा अधिक से अधिक तीन पुत्र उत्पन्न किये जा सकते थे।

बौद्ध साहित्य से भी नियोग प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। एक जातक से विदित होता है कि एक राजा के मरने पर उसकी रानी ने राजपुरोहित से विवाह कर लिया था।

नियोग प्रथा के अन्तर्गत कोई भी स्त्री अपने पति की मृत्यु हो जाने के बाद अथवा पति के नपुसंक या रोगी होने के फलस्वरूप पुत्रोत्पत्ति के लिये अपने देवर अथवा अन्य किसी सम्बंधी के साथ सम्भोग कर सकती थी। वैदिक युग में इस प्रथा का प्रचलन था। ऋग्वेद में एक श्लोक में कहा गया है हे अश्विन यज्ञ करने वाले तुम्हें अपने घर में वैसे ही पुकार रहा है जैसे विधवा अपने देवर को पुकारती है या युवती अपने प्रेमी को बुलाती है। महाभारत में विभिन्न स्थानों पर नियोग,प्रथा का उल्लेख किया गया है। विचित्रवीर्य की विधवा पत्नियों के साथ महार्षि व्यास के सम्भोग के फलस्वरूप धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म हुआ। ऐसे उल्लेख भी मिलते हैं कि पाण्डु ने अपनी पत्नी कुन्ती को नियोग से पुत्र उत्पन्न करने हेतु बाध्य किया था। कुन्ती की बहिन श्रुतसेना के भी नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न हुये। पुराणों में नियोग द्वारा राजा बलि ने सत्रह पुत्रों की प्राप्ति की। **मनु के अनुसार –**

द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु ताद्विदः।
अनिर्वृतं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः।
विधवायां नियोगार्थे निवृत्ते तु यथाविधि।
गुरूवच्च्य स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम्।[139]

अर्थात् कोई धर्म को जानने वाले महर्षियों का मत है कि दो पुत्र पैदा करना चाहिये क्योंकि एक पुत्र का होना बराबर है,इसलिये धर्मपूर्वक द्वितीय पुत्र भी उत्पन्न करे।विधवा में शास्त्ररीत्या नियोग (गर्भ रहने)हो जाने के बाद दोनों स्त्री पुरुष गुरू और स्नुषा (पुत्रवधू)की भांति व्यवहार करे।

नियोग की यह प्रथा केवल भारतवर्ष में ही प्रचलित नहीं थी बल्कि विदेशों में भी इसका प्रचार किया था। यूनान एवं स्पार्टा नामक नगर में इस प्रथा का प्रचलन था। यहूदियों में कुछ विधवाये बिना किसी धार्मिक क्रिया के अपने देवर के साथ विवाह कर लेती थी।'ओल्ड टेस्टामेण्ट' में भी लिखा है कि यदि कोई स्त्री विधवा हो जाती है तो उसका देवर उसके साथ विवाह करेगा। परशुराम ने जब अनेकानेक क्षत्रियों का वध कर डाला तब बहुत सी क्षत्रिय नारियां ब्राह्मणों के यहाँ पुत्र उत्पन्न करने गयी थीं।

नियोग के नियम –

नियोग की व्यवस्था को नैतिक बन्धनों में मर्यादित बनाये रखने के लिये शास्त्राकारों ने बड़े कठोर नियमों का प्रतिपादन किया। बोधायन धर्मसूत्र के अनुसार क्षेत्रज पुत्र वही है जो निश्चित आज्ञा के साथ विधवा से या नपुसंक अथवा रूग्ण पति की पत्नी से पैदा किया जाये। वशिष्ट ने नियोग का वर्णन करते हुये लिखा है कि विधवा का पिता या मृत पति का भाई गुरूओं को तथा सम्बन्धियों को एकत्र करे और विधवा अपने देवर से या पति सपिण्ड से पुत्र उत्पन्न कर सकती है,नियुक्त पुरूष को अंधेरे में ही विधवा के पास जाना चाहिये और उसे एक ही पुत्र प्राप्त करना चाहिये। बौधायन,याज्ञवल्क्य तथा नारद ने भी इन्हीं नियमों का समर्थन किया है। कौटिल्य ने रोग पीड़ित निःसंतान मर जाने वाले ब्राह्मण के लिये भी व्यवस्था की है।

नियोग प्रथा के प्रचलन के कारण –

अनेक भारतीय समाजों में स्त्रियां सम्पत्ति की भाँति वसीयत के रूप में प्राप्त होती थीं। उनका विवाह किसी एक व्यक्ति के साथ होता परन्तु परिवार का भी उन पर अधिकार माना जाता था और फलस्वरूप बड़े भाई की मृत्यु हो जाने पर छोटे भाई द्वारा उसकी विधवा से विवाह कर लिया जाता था।

प्राचीन भारत में अनेक समाजों में अनजान व्यक्तियों से विवाह करना बुरा माना जाता था क्योंकि उससे परिवार की हानि होती थी। अतएव नियोग द्वारा इच्छाओं की पूर्ति की जाती थी।

नियोग नियन्त्रित विवाह और बलपूर्वक ब्रह्मचर्य के बीच मध्यम मार्ग था इसके माध्यम से विधवाओं को पथभ्रष्ट एवं दूषित होने से रोका जाता था।

नियोग प्रथा का सर्वप्रमुख कारण पितृऋण से मुक्ति माना गया है क्योंकि यह मान्यता थी कि इस ऋण से उद्धार हुये बिना मनुष्य को मोक्ष नहीं मिलता। अपने भाई की स्मृति में तथा उसके हेतु स्वर्ग में स्थान बनाने के लिये छोटे भाई का यह कर्तव्य हो जाता था कि वह नियोग द्वारा भाई की विधवा से पुत्र पुत्र उत्पन्न करे।

विभिन्न शास्त्रीय विधि विधानों के आधार पर श्री काणे ने नियोग के लिये निम्नलिखित नियमों को आवश्यक बताया है।

1. इसके लिये मृत पति पुत्रहीन होना चाहिये यदि जीवित होंगे तो पाण्डु की भांति नपुसंकता आदि से ग्रस्त होने के कारण पुत्रोत्पादन में असमर्थ होना चाहिये।
2. परिवार के गुरूजनों द्वारा निर्धारित पद्धति से पति के लिये पुत्र पैदा करने का नियोग या आदेश पत्नी को देना चाहिये।
3. नियोग करने वाला पुरूष पति का भाई (देवर) सपिण्ड या पति का सगोत्र (गौतम के अनुसार सप्रवर तथा अपनी जाति का) होना चाहिये।

मनु के अनुसार –

देवराद्धा पपिण्डाद्धा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये।।[140]

4. नियोग करने वाले पुरूष में काम वासना का पूर्ण अभाव तथा कर्तव्य पालन का भाव होना चाहिये।
5. नियोग करने वाले पुरूष पर घृत या तेल का लेप होना चाहिये। उसे किसी भी प्रकार की कामवासना से ग्रस्त नहीं होना चाहिये।

मनु के अनुसार –

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ।।[141]

6. यह सम्बंध केवल एक पुत्र के रहने तक तथा कुछ अन्य आचार्यों के मतानुसार दो पुत्रों के होने तक रहता है।
7. नियोग करने वाली विधवा को बूढ़ी,बांझ, प्रजनन शक्ति में असमर्थ,बीमार या गर्भवती होना चाहिये, अपितु युवती होना चाहिये।
8. एक पुत्र की उत्पत्ति होने के बाद दोनों को एक दूसरे से पति–पत्नी का नहीं अपितु ससुर और बहू का सा व्यवहार करना चाहिये।
9. पति की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही नियोग की अनुमति दी जानी चाहिये।
10. यदि विधवा नियोग न करना चाहती हो तो उसे इस कार्य के लिये बाधित नहीं किया जा सकता।

नियमों की प्रक्रिया के कई उदाहरण विभिन्न युगों में देखने को मिलते हैं।

महाकाव्य कालीन समाज में नियोग की प्रथा थी। कुछ लोगों ने नियोग को वेश्यावृत्ति का रूप कहा आज भी कई जातियों में नियोग की प्रथा है।

नियोग की प्रक्रिया से उत्पन्न होने वाली सन्तान वर्णसंकर कहलाती है। परन्तु भारतीय संस्कृति में वंश को चलाने के लिये नियोग एक सामाजिक परम्परा है। जिससे स्त्री एवं पुरूष दोनों ही सन्तानवान् कहे जाते है।

नियोग के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार से ऐतिहासिक साक्ष्य देखने को मिलते है। पुराणों एवं शास्त्रों के अनुसार कई परिवार अपने वंश की रक्षा करने के लिये नियोग की प्रक्रिया को अपनाकर अपने परिवार की गरिमा एवम् गौरव को बनाये रखते थे।

नियोग प्रथा में गत्यावरोध–

वैदिक युग के पश्चात् नियोग–प्रथा की वाँछनीयता पर सन्देह व्यक्त किया जाने लगा। गौतम, वशिष्ठ,और कौटिल्य आदि ने इस प्रथा का समर्थन किया। परन्तु दूसरी ओर आपस्तम्ब और बौधायन ने इसे घृणात्मक बतलाया। मनु ने इसकी बुरी तरह भर्त्सना की तथा

इसे नियम के विरुद्ध एवं अनैतिक ठहराया। मनु आदि इस प्रथा को मिटा नहीं सके परन्तु उसके क्षेत्र सीमित करने में अवश्य सफल हुये। पहले नियोग द्वारा तीन पुत्र उत्पन्न करने की अनुमति थी परन्तु अब एक पुत्र पर ही बल दिया जाने लगा। जिस स्त्री के पुत्र हो उसके लिये नियोग वर्जित कर दिया गया। पति की मृत्यु के पश्चात् ही स्त्री को नियोग की अनुमति थी परन्तु नियोग के हेतु उसे बाध्य नहीं किया जा सकता था। नियोग उसकी इच्छा पर ही निर्भर करता था। नियोग का लक्ष्य पुत्र की प्राप्ति था,वासनाओं की तृप्ति नहीं।

अध्याय – सप्तम्

विवाह के अन्य महत्वपूर्ण पक्ष

- विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार के रूप में
- विवाह संस्कार में ज्योतिष की उपयोगिता
- पुत्रोत्पत्ति
- उत्तराधिकार अनुक्रम
- आधुनिक विवाह प्रथा एवम् पाश्चात्य संस्कृति

विवाह के अन्य महत्वपूर्ण पक्ष

विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार के रूप में –

समस्त संस्कारों में विवाह संस्कार का महत्वपूर्ण स्थान है। अधिकांश गृहसूत्रों का आरम्भ विवाह संस्कार से होता है। ऋगवेद तथा अथर्ववेद में भी वैवाहिक विधि विधानों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति मिलती है। उपनिषदों के युग में आश्रम चतुष्टय का सिद्धान्त पूरी तरह प्रतिष्ठित हो चुका था। जिनमें गृहस्थाश्रम को सर्वाधिक महत्व दिया गया था,और आज भी गृहस्थाश्रम का महत्व उसी प्रकार है। गृहस्थाश्रम की आधार शिला विवाह संस्कार ही है क्योंकि इसी संस्कार के अवसर पर वर वधू अपने नवीन जीवन के महान उत्तरदायित्व को निभाने की प्रतिज्ञा करते है। यह ही एक ऐसा संस्कार है जिसके द्वारा मनुष्य पुरूषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष की सिद्धि कर सकता है। विवाह के बाद ही पुरूष पूर्ण पुरूष कहलाता है। विवाहोपरान्त माता बनने के बाद ही स्त्री पूर्ण स्त्री कहलाती है। उचित समय पर विवाह संस्कार हो जाने पर मनुष्य धर्म का पालन करते हुये,दाम्पत्य सुख तथा ऐश्वर्य आदि का भोग करके, उत्तम सन्तान उत्पन्न करके,देश,धर्म व जाति की सेवा कर सकता है। विवाह के बाद पति पत्नी आध्यात्मिक दृष्टिकोण से एक इकाई बन जाते हैं।[142] महाभारत के अनुसार बिना स्त्री के घर सूना है।[143] माता सर्व पूज्य है।[144] पुराणों के अनुसार पति पत्नी के एक विचार होने पर स्वर्ग मिलता है।[145] विवाह विषयोभोग के असंयमित जीवन का आरम्भ नहीं है। अनियन्त्रित कामोपभोग के लिये किया गया विवाह सम्बन्ध अपनी ही किसी भूल से अथवा दैव रोष से अथवा ऋषि शाप से नष्ट हो जाता है। जबकि गृहस्थी के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिये किया गया विवाह सम्बंध दीर्घजीवी होता है। शकुन्तला व दुष्यन्त का विवाह प्रथम दृष्टि में प्रेम होने के बाद मात्र कामोत्तेजना की शान्ति के लिये किया गया विवाह सम्बन्ध था। यह बात अलग है कि बाद में पश्चाताप की अग्नि में जलकर शुद्ध होने

के बाद उस सम्बन्ध को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो गयी । दूसरी ओर शिव पार्वती का विवाह दानव तारकासुर के वध हेतु कार्तिकेय के जन्म के निमित्त था, समाज को दुष्ट राक्षस से मुक्ति दिलाने का प्रयास था। इसलिये आज भी वह अमर है और समस्त दम्पतियों के लिये पूजनीय है। इसी प्रकार भगवान राम का विवाह सामाजिक व पारिवारिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति के लिये किये गये विवाह का एक श्रेष्ठ उदाहरण है जिसमें श्री राम ने अपनी प्रजा के एक व्यक्ति की भावनाओं का सम्मान करने के लिये अपनी प्रिय पत्नी सीता को वनवास दे दिया था। जबकि वे यह जानते थे कि सीता निर्दोष है और इस बात की वे अग्नि परीक्षा भी ले चुके थे फिर भी उनके लिये अपना कर्तव्य सर्वोपरि था। पत्नी सीता ने भी पति के कर्तव्य पालन में पूरा सहयोग दिया। इस प्रकार विवाह केवल कामसुख का साधन ही नहीं,वरन् त्याग की ज्वलन्त भावना का भी आधार है। दूसरे पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की महान भावना है। विवाह मानव के आध यात्मिक और आत्मिक उत्थान का एक आधार है। वह गृहस्थ जीवन के पूर्ण उत्तरदायित्व को समझने वाले दम्पति के लिये जीवन संघर्ष में और राष्ट्र की सेवा में प्रवृत्त होने का एक माध्यम है।[146]

"प्राचीन काल में तो शेष तीनों आश्रमों का उत्तरदायित्व भी गृहस्थाश्रम पर ही होता था। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने वाले ब्रह्मचारी रोजी रोटी की चिन्ता न करके अपना पूरा ध्यान अध्ययन में ही लगाते थे। इसी प्रकार वानप्रस्थी और सन्यासी के लिये भी यह आवश्यक था कि वह समस्त माया मोह त्याग कर भावी जीवन के निर्माण के लिये संयमपूर्वक साधना करें ईश्वरार्चन करें तथा पक्षपात रहित हो जन जीवन के परोपकारार्थ विचरण करें। ऐसे में इन लोगों के भोजन आदि का प्रबन्ध गृहस्थी का ही कर्तव्य होता था।

मनु स्मृति के अनुसार पंच महायज्ञ करना प्रत्येक गृहस्थ का अनिवार्य कर्तव्य था। ये पांच यज्ञ- ऋषि यज्ञ , देव यज्ञ,भूत यज्ञ , नृयज्ञ और पितृ यज्ञ थे।[147]

ऋषियज्ञं, देवयज्ञं, भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ।।

पंच महायज्ञ के सिद्धान्त में तीनों ऋणों की प्राचीन भावना का समावेश हो गया। मनुष्य पर देव ऋण,ऋषि ऋण और पितृ ऋण होते हैं। जिनमें सबसे प्रमुख है पितृ ऋण। कहा गया है, "नृणात् तारयति इति नरः," अर्थात् जो पितरों को नरक के कष्ट से मुक्ति दिलाये वह नर होता है। कोई भी व्यक्ति मृत्यु के बाद तभी मुक्ति को प्राप्त हो सकता था जब उसका पुत्र पितृऋण चुका कर उसे उससे मुक्ति दिलाये। यह मान्यता आज भी इसी रूप में मान्य है। पुत्र भी नियमपूर्वक समस्त विधि विधान पूर्वक किये गये विवाह से उत्पन्न होना चाहिये। इस प्रकार विवाह के बाद सन्तान उत्पन्न करके मनुष्य पितृऋण से भी मुक्ति पा जाता है। अतः विवाह एक सबसे अधिक आवश्यक संस्कार माना जाता था और आज भी माना जाता है।

" भारतीय वैदिक साहित्य में विवाह संस्कार इसलिये भी आवश्यक था कि पत्नी के बिना व्यक्ति कोई भी यज्ञ आदि नहीं कर सकता था। पत्नी के बिना वह अपूर्ण माना जाता था तभी तो आज भी पत्नी को पति की "अर्धांगिनी" कहा जाता है, 'अयज्ञियों वा एष योअपत्नीकः' एकाकी पुरुष सदा अपूर्ण है क्योंकि पत्नी उसका आधा भाग है। मनु ने भी आयु का द्वितीय भाग गृहस्थाश्रम में व्यतीत करने को कहा है, ऋण चुकाने के लिये दोनों का साथ आवश्यक है। इस लिये मनु ने कहा है कि धार्मिक कृत्य करना पति पत्नी दोनों का संयुक्त कर्तव्य है।[148] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी कहा गया है "अपत्नीको नरो भूप कर्मयोभ्यो न जायेते ब्राहमणः क्षत्रियो वापि वैश्य शूद्रोअपि वा नरैः" कोई भी व्यक्ति, यदि उसकी पत्नी नहीं है चाहे वह ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य, अथवा शूद्र कोई भी हो धार्मिक क्रियाओं का अधिकारी नहीं होता आशय यही है कि जन-जीवन की सर्वांगीण क्रियाओं में नर-नारी मिलकर ही उन्नति कर सकते हैं। इसलिये आशा की जाती थी कि पति पत्नी दोनों ही मृत्यु पर्यन्त एक दूसरे के प्रति पूर्ण निष्ठा रखेंगे।[149] अतः बिना विवाह के ये देव और पितृ ऋण कैसे चुकाये जा सकते हैं? यही कारण था कि सीताजी को वनवास देने के बाद जब भगवान राम ने अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान किया तो कुलगुरू की सलाह पर उन्हें सीताजी की स्वर्ण प्रतिमा की स्थापना करानी पड़ी। अन्यथा वे यज्ञ कार्य के अधिकारी नहीं थे।

विवाह एक व्रत है –

हिन्दू समाज में विवाह का धर्म से घनिष्ठ सम्बंध है। मनुष्य जीवन की पूर्णता विवाह संस्कार के बाद प्रारम्भ होती है। जब तक मुनष्य अकेला रहता है,तब तक वह अपूर्ण रहता है, उसका जीवन स्वार्थपूर्ण प्रवृतियों में ही बीतता है। नैतिक जीवन के जो संस्कार मनुष्य में बाल्यावस्था में पड़ते हैं उनका विकास गृहस्थ जीवन में ही होता है। प्रेम और निष्ठा, तप और त्याग, श्रम और पालन, शील और सहिष्णुता आदि सद्‌गुणों का उन्नयन पूर्ण रूप से गृहस्थ जीवन में ही होता है। गृहस्थी मनुष्य की सर्वांगपूर्णता का विद्यालय है और विवाह उसका प्रवेश। जिस प्रकार शिक्षा की प्रारम्भिक नींव विद्यार्थी के लिये अधिक महत्वपूर्ण होती है उसी प्रकार गृहस्थ जीवन के सुचारू संचालन के लिये विवाह की परम्परा भी बड़े महत्व की होती है।

उपनिषदों में आता है कि सृष्टि के आरम्भ से ही स्त्री धारा व पुरूष धारा दो धारायें चली इन धराओं का मिलन ही सृष्टि विस्तार का कारण है। विवाह का वास्तविक उद्‌देश्य स्त्री धारा को पुरूष धारा में मिलाकर उसे मुक्ति की अधिकारिणी त्रिवेणी बनाना है। हमारी संस्कृति में पति और पत्नी ईश्वर को प्राप्त करने के लिये गृहस्थ में प्रवेश करते हैं। संसार की और कोई भी संस्कृति ऐसा ऊँचा आदर्श उपस्थित नहीं करती। इस त्याग को उद्‌भूत करने की प्रारम्भिक पाठ्शाला है परिवार, और उसका आधार है विवाह प्रथा। कन्या अपने घर को छोड़कर अपना शरीर, मन,और आत्मा सब कुछ अपने पति के चरणों में अर्पण कर देती है। उसे ही अपना देवता मानती है। पति की प्रसन्नता में ही उसकी प्रसन्नता होती है। उत्तर वैदिक काल में पत्नी को घर की स्वामिनी समझा जाता था। वह घर के सभी धार्मिक कृत्य करती थी।[150]

भारतीय संस्कृति में विवाह एक धार्मिक बन्धन है। धर्म का नियन्त्रण रहने से यह सम्बंध शिथिल नहीं हो पाते क्योंकि धर्म के प्रति श्रद्धा होने के कारण वह अधर्म करके पाप कमाकर नरक भोगों को प्राप्त करना नहीं चाहते। पति पत्नी के संयोजन के देवता साक्षी होते थे। उनका विच्छेद मनुष्य की शक्ति के अन्तर्गत नहीं माना जाता

था। सम्भवता शिलारोहण का धार्मिक कृत्य भी पति पत्नी के संयोजन की दृढता का प्रतीक था।[151] इस तरह से विवाह को धार्मिक कर्तव्य समझते हुये सांसारिक दौड़ में कदम से कदम मिलाकर एक साथ चलते हैं। यदि एक-दूसरे में अरुचि भी उत्पन्न हो जाये तो भी पर पुरुष और पर स्त्री की ओर आँख उठाकर देखने या उसका ध्यान करने को वह अधर्म और पाप समझते हैं।

विवाह के मधुर सम्बंध से आत्म भाव का विकास होता है। विवाह द्वारा उसके ममत्व का विस्तार स्त्री तक होता है। फिर बाल बच्चे होने पर उनकी ओर बढ़ता है। इस तरह यह विस्तार पाता हुआ। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के उच्चतम आदर्श की ओर बढ़ता है। यह उच्चतम आत्म विकास प्रेम की अन्तिम सीढ़ी है, और वह अपने परम लक्ष्य को प्राप्त हो जाता है।[152]

विवाह एक साधना है। स्त्री पुरुष दोनों के लिये परीक्षा का क्षेत्र है। इसमें सफलता के लिये सहन शीलता, धैर्य,त्याग,क्षमा आदि गुणों की आवश्यक्ता होती है। भारतीय संस्कृति में विवाह को धर्म से आबद्ध कर एक मजबूत संस्था के रूप में स्थापित किया गया। विवाह के पवित्र बन्धन में बंधकर मनुष्य जीवन के परम पुनीत कर्तव्य आध्यात्मिक उन्नति के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करता है, ऐसा उच्च आदर्श केवल भारतीय संस्कृति में देखने को मिलता है अन्य संस्कृतियों में नहीं। भारतीय संस्कृति में विवाह तय करने के पूर्व ज्योतिष के द्वारा वर-वधू के सफल जीवन हेतु ज्योतिष द्वारा उनकी कुण्डलियों के मिलान की परम्परा है।

विवाह संस्कार में ज्योतिष की उपयोगिता :-

विवाह एक ऐसा नाजुक सम्बन्ध होता है, जहां पूर्णरूप से अपरिचित दो व्यक्ति जीवन भर साथ रहने का वादा करते है। अपरिचित वर और कन्या परस्पर विवाह बन्धन में बंधकर आजन्म सुख दुःख के साथी बन जाते है। कन्या अपने चिर परिचित माहौल तथा चिर-परिचित व्यक्तियों को छोड़कर एक ऐसी नई जगह आ जाती है जहां का वातावरण तथा जहां के लोग उसके लिये पूर्णतः अपरिचित होते है।

साथ ही वह भी उस माहौल तथा उन लोगों के लिये पूरी तरह अपरिचित होती है। यह एक ऐसी स्थिति है कि जिसे सोचते ही मन घबराने लगता है। सम्भवतः इसीलिये विवाह की बातचीत शुरू होने से लेकर कन्या के विदा होने तक,विभिन्न प्रकार के उत्सव मनाये जाते है ताकि दोनों पक्ष आपस में एक दूसरे के निकट आते जायें। ऐसे मे दोनो ही पक्षों को परस्पर समझ से काम लेना होता है। दोनों ही पक्षों को एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करना होता है। क्योंकि विवाह कोई रक्त सम्बन्ध तो होता नहीं जहां आपसी समझ के बिना भी सम्बन्ध चलते रहते है। विवाह सम्बन्ध तो जरा से झटके को सहन नहीं कर सकता है और टूट कर बिखर सकता है। यह भी सत्य है कि पति पत्नी के अलग हो जाने से केवल पति पत्नी ही अलग नहीं होते, वरन् दोनों के समस्त परिवारों पर भी उस अलगाव का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। आजकल विवाह टूटने या वैवाहिक सम्बन्धों में दरार का एक बहुत बड़ा कारण पति और पत्नी की अहम भावना भी है। अपने-अपने अहंकार के कारण न पति झुकना चाहता है न ही पत्नी । साथ ही पश्चिमी देशों की देखा-देखी विवाहेत्तर सम्बन्धों की ओर भी झुकाव बढ़ा है यह भी विवाह सम्बंधों में दरार का एक कारण है। प्राचीन काल में भारत में पति पत्नी का सम्बन्ध केवल इस जन्म के लिये ही नहीं माना जाता था। वरन् इसका पारलौकिक महत्व भी था। मनु भी अमरण पति पत्नी के सम्बन्ध को प्रत्येक गृहस्थ का धर्म कहते है।[153]

अब यदि पति पत्नी ही एक दूसरे की भावनाओं को नहीं समझेंगे ,एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान नहीं करेंगे तो विवाह कैसे स्थिर रह पायेगा ? यदि वह सम्बन्ध समाज के डर से मात्र दिखावे के लिये टिक भी गया तो उसमें औपचारिकतकता ही रहेगी, और पति पत्नी एकान्त में एक दूसरे को कोसते हुये ही जिन्दगी गुजार देंगे। एक छत के नीचे रहते हुये भी परस्पर अजनबियों की तरह रहना कोई स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं है,यदि स्वस्थ विवाह सम्बंध को स्थिर बनाये रखना है तो यह आवश्यक है कि वर वधू का मानसिक स्तर,शारीरिक स्तर, बुद्धि इत्यादि का परस्पर मेल हो। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक उस विवाह सम्बन्ध के स्थायित्व में तथा सुखी वैवाहिक जीवन के

बिषय में सन्देह ही बना रहेगा। ऐसा विवाह सम्बन्ध अर्थहीन होकर रह जायेगा। साथ ही, कई बार देखा जाता है कि सब कुछ निश्चित हो जाता है, लड़का लड़की एक दूसरे को पसन्द कर लेते है, परिवार वाले भी सब कुछ देख समझ कर हां कर देते है, कुण्डलियां भी मिल जाती है फिर न जाने क्या होता है, कि बनने से पूर्व ही सम्बंध समाप्त हो जाता है। कई बार पूरी तरह से कुण्डली मिलाकर विवाह करने के बाद भी विवाह अधिक दिन नहीं चल पाता। यह भी देखने में आता है कि कहीं विवाह के लिये प्रयत्नशील न होते हुये भी अचानक विवाह हो जाता है और कहीं लगातार कोशिशों के बाद भी विवाह नहीं हो पाता। इसलिये प्रायः सुनने में आता है कि विवाह तो संयोग की बात होती है। जिसका जब और जहां संयोग लिखा होगा उसका तब और वहां ही विवाह होगा।

जहां विवाह होगा वहां विवाह के बाद कोई समस्या तो नहीं होगी,वैवाहिक जीवन सुखपूर्वक तो व्यतीत होगा? विवाह कब होगा जल्दी होगा, देर मे होगा, या विवाह का योग है भी या नहीं? इन्हीं सब प्रश्नों के उत्तर के लिये ज्योतिष की शरण लेने की आवश्यक्ता होती है।

विवाह के समय निर्धारण के लिये हमारे विद्वानों ने बहुत से नियम बताये हैं। बहुत सी ऐसी ग्रह की स्थितियों का वर्णन किया है, जिनका विवाह के समय निर्धारण में बहुत बड़ा योगदान है। जैसे सप्तमेश पर या सप्तम स्थान में जब गोचर में गुरू आये तो विवाह होगा।सप्तमेश जिस राशि में हो उसके स्वामी की दशा में जब गोचर में गुरू उस राशि में आये अथवा गोचर का गुरू सप्तमेश से त्रिकोण में हो तब विवाह सम्भव है। सप्तमेश शुक्र के साथ हो तो सप्तमेश की दशा अन्तर्दशा में विवाह हो सकता है।सप्तम स्थान के कारक शुक्र की दशा तथा अन्तर्दशा में विवाह हो सकता है। सप्तम में गोचर में शनि या मंगल का भ्रमण हो तो विवाह सम्भव है। सप्तमेश पर जब गोचर में शनि, मंगल या गुरू का भ्रमण हो तो विवाह सम्भव है। जन्म लग्नेश जहां हो उस स्थान के नवांशपति की राशि में जब गोचर में गुरू आये तो विवाह की सम्भावना हो सकती है। दाराकारक की

दशा चल रही हो तो समझना चाहिये कि विवाह का समय निकट है–इत्यादि।

पुत्रोत्पत्ति :–

सन्तानोत्पत्ति के द्वारा ही मनुष्य इस लोक व परलोक में सुख प्राप्त कर सकता है।[154] प्राचीन भारत में यह समझाा जाता था कि पत्नी ही धर्म, अर्थ काम, मोक्ष का श्रोत है।[155] विवाह की महिमा इतनी अधिक इसलिये मानी गयी थी कि एक तो वह समाज में शान्ति,व्यवस्था और सदाचार बनाये रखने का बड़ा प्रभावशाली साधन है। दूसरे विवाह पुत्र–कामना से प्रेरित होकर किया जाता था और पुत्र की कामना के दो अभिप्राय होते थे, एक लौकिक दूसरा पारलौकिक। लौकिक अभिप्राय यह है कि पुत्र नाम चलायेगा,घर द्वार संभालेगा और बुढ़ापे का सहारा होगा। पारलौकिक यह है कि उसके जन्म मात्र से पिता अपने पितृ ऋण से उऋण हो जायेगा, तथा गया या तर्पण–श्राद्धादि कर्मो द्वारा पुत्र अपने पूर्वजों की आत्मा को अध्यात्मिक लाभ पहुँचायेगा।

मनु स्मृति के अनुसार –

पुत्र के जन्म से मनुष्य (स्वर्गादि) को पाता है और पौत्र के जन्म से दीर्घ काल तक स्वर्ग में रहता है और प्रपौत्र के उत्पन्न होने से सूर्यलोक को पाता है। लड़का (पुं०) नामक नरक से पितरों का उद्धार करता है, इसलिये स्वयं ब्रहमा जी ने लड़के को पुत्र कहा है –

पुत्रेण लोकाञजयति पौत्रेणानन्त्तय मश्नुते ।
अथपुत्रस्य पौत्रस्य पौत्रेण व्रध्नस्यात्नोति विष्टपम्।।
पुनांभ्नो नरकाघस्यमात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्ताः स्वमेव स्वयंभुवा।।[156]

पुत्र दस अथवा बारह प्रकार के कहे गये है। उनमें मुख्य है औरस या स्वयंजात तथा दत्तक। औरस न हों तो पुरुष या उसकी विधवा गोद लेकर लौकिक परित्राण तथा पारलौकिक संतारण प्राप्त करें। पुत्र की इतनी असीम आवश्यकता मानी गयी है कि दत्तक ग्रहण या पुत्रीकरण की क्रिया न्यायसंगत एवं धर्म पर आधारित है।

मनु स्मृति के अनुसार –

औरस, क्षेत्रज, दत्तक,कृत्रिम गूढोत्पन्न और अपवित्र छैः पुत्र सगोत्र और बान्धव होते हैं। जो पुत्र सगोत्र और बान्धव होते हैं

वे धन के भागी होते हैं, उससे भिन्न जो हैं वे धन भागी नहीं होते हैं।

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एवच।
गुढ़ोत्पन्नो ऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट्।।
कानीनश्च सहाढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा।
स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षड्दायादबान्धवाः।।[157]

भारतीय धर्म शास्त्राकारों द्वारा अनेक प्रकार के पुत्रों का वर्णन वैदिक साहित्य में किया गया है। जो इस प्रकार है –

पुत्र के प्रकार :–

1. **औरस –** ये वे पुत्र होते हैं जिसको पिता अपनी पत्नी से उत्पन्न करे।

2. **क्षेत्रज या द्वयामुष्यायण –** ये वे पुत्र हैं जिनको पति की अनुमति से अन्य पुरूष पत्नी से उत्पन्न करता था। ऐसे समागम को नियोग कहते थे। क्षेत्रज के दो गोत्र होते थे और वह दोनों पिताओं के गोत्र को धारण करता और दोनों का उत्तराधिकारी माना जाता था।

''द्विपितुः पिण्डदानं स्यात् पिण्डे–पिण्डेच नामनी ।
त्रयश्च पिण्डाः षण्णां स्युरेवं कुर्वन्न मुह्यति ।।
स एष द्विपिता द्विगोत्रश्च द्वयोरपि– स्वधारिक्थ भाग्भवति ।''
(बौधायन धर्मसूत्र 2–2–21,22,23)

3. **गूढ़ज –** वे पुत्र जिसको पति के बिना बताये,पत्नी अन्य पुरूष के द्वारा उत्पन्न करती है।

4. **कानीन –** ये वे पुत्र हैं जिनको कुमारी अवस्था में नारी उत्पन्न करे। ऐसा पुत्र उस पुरूष का पुत्र माना जाता है जिसके संग वह नारी बाद में विवाह कर ले। इसके उदाहरण है कर्ण तथा वेदव्यास।

5. **पुत्रिका पुत्र –** पुत्रिका–पुत्र उस पुत्री के पुत्र को कहते हैं जिसका विवाह इस शर्त के साथ किया गया हो कि उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र को पुत्री का पिता अपना वंश चलान के निमित्त ले लेगा।

6. **सहोढज –** ये वे पुत्र होते थे जो वधू के गर्भ में विवाह के पहले आ चुका हो और बाद में जन्मा हो।

7. **पौनर्भव –** ये वे पुत्र होते थे जो विधवा के गर्भ से पुनर्विवाह के अनंतर पैदा होते थे।

ये सात प्रकार के पुत्र गर्भ संबंध से होते है। धर्मशास्त्र या कानून के प्रवर्तन से पुरूष इनका पिता बन जाता है। इनके अतिरिक्त दत्तक पुत्र की पांच प्रजातियां निम्न हैं–

8. **दत्तक** – वह पुत्र जो विधि पूर्वक गोद लिया और दिया जाता है।

9. **क्रीत** – ये वे पुत्र होते हैं जो अपने माता–पिता के द्वारा मूल्य लेकर गोद दिये अथवा बेच डाले जाते हैं।

10. **कृत्रिम** – ये वे दत्तक पुत्र होते हैं जो अनाथ होने के कारण संपत्ति के लोभ से दूसरे के पुत्र स्वेच्छा से बन जाते हैं।

11. **स्वयंदत्त** – यह भी कृत्रिम की तरह अनाथ होता है अंतर केवल यह होता है कि कृत्रिम में पिता या दत्तक ग्रहीता गोद लेने का प्रस्ताव करता है और स्वयंदत्त में दत्तक स्वयमेव गोद बैठने का प्रस्ताव करता है।

12. **अपविद्ध** – ये वे पुत्र होते हैं जो अपने प्राकृतिक माता–पिता से परित्यक्त मारे–मारे फिरते हुये किसी दयावान द्वारा गोद ले लिये जाते हैं।

स्मृतिकारों ने उपरोक्त प्रकारों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। औरस तथा पुत्री का पुत्र सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। दत्तक की पांच प्रजातियां मध्यम श्रेणी में रखी गयी हैं। बाकी पांच प्रकार के पुत्र निम्न श्रेणी में रखे गये है और निकृष्ट माने गये हैं।[158]

पुत्र की प्राप्ति मनुष्य की स्वभावतः बलवती अकांक्षा होती है। सन्तान सम्बंधी यह आकांक्षा अत्यन्त प्राचीन है ऋगवेद में एक स्थल पर कहा गया है कि पाणिग्रहण उत्तम सन्तान के लिये है। विवाह सम्पन्न होने पर पुरोहित वर वधू को अनेक पुत्र पैदा करने का आशीर्वाद देते है। ऐसे आशीर्वचन की मनुष्य सदा से अपेक्षा और आकांक्षा रखता रहा है तथा सन्तानोत्पत्ति के लिये अनेक धार्मिक कृत्य भी सम्पन्न करता रहा है। वैदिक युग से लेकर आज तक सन्तान की प्रबल इच्छा मनुष्य में रही है तथा उसके निमित्त वह अपनी उत्कृष्ट अभिलाषा को भी व्यक्त करता रहा है क्योंकि हिन्दू समाज में पुत्र की अत्यन्त महत्ता थी पुत्र के उत्पन्न होने से पिता अमर बनता है, और जीवन में तमिस दूर करता है पिता के लिये पुत्र आलोक है तथा संसार

सागर से पार करने की वैतरणी नौका है। पुत्रहीन व्यक्ति का समाज में कोई स्थान नहीं है और न उसका दूसरा उत्तम लोक ही है। इसीलिये पुत्र को दूसरा लोक बनाने वाला भी कहा गया है।

महाभारत में भी पुत्रवान व्यक्ति की प्रशंसा की गयी है एवम् पुत्रहीन की निन्दा की गयी है । पितरों को कालान्तर में सन्तान से तर्पण और पिण्डदान मिलता है मृत्युपरान्त सम्पन्न किये जाने वाले संस्कारों को पुत्र ही पूरा करता है।

भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने सामाजिक विकास को दृष्टि में रखकर पुत्रोत्पत्ति का विचार व्यक्त किया तथा सन्तान की अनिवार्यता पर बल दिया। इसलिये उन्होंने पुत्रोत्पत्ति को धार्मिक क्रिया के अन्तर्गत रखा तथा इसकी गुणात्मकता और महानता को सामाजिक आधार पर स्वीकार किया।परिवार की निरन्तरता समाज का विस्तार क्रमशः नई पीढ़ियों का आगमन तथा धार्मिक कृत्यों का प्रचलन मूलतः सन्तानोत्पत्ति पर आधारित रहा। लोक और परलोक की कल्पना के माध्यम से सन्तान की अपेक्षा धर्मशास्त्रों में की गयी है तथा उसकी अनिवार्यता पर बल दिया गया।

विवाह संस्कार के मंत्रो में वर वधू से कहता है कि मैं उत्तम सन्तान के लिये तेरा पाणिग्रहण करता हूँ पुरोहित इस समय वर-वधू को आशीर्वाद देकर पुत्र पैदा करने का आदेश देता है। हिन्दू समाज में वैदिक युग से पुत्र प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा रही है। ऋगवेद में अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि हम पुत्रों द्वारा अमरता प्राप्त करें। वैदिक साहित्य में वीर पुत्र पाने की आकांक्षा का उल्लेख है।[159] ऐतरेय ब्राहमण में पुत्र की महिमा का वर्णन करते हुये कहा गया है कि पिता पुत्र से ऋण मुक्त होता है,अमर बनता है,अन्धकार दूर करता है,पुत्र पिता को संसार सागर से पार कराने की नौका (अतितारिणी) तथा परम ज्योति है। तैतिरीय ब्राह्मण पुत्र को दूसरा लोक बनाने वाला कहता है। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार पुत्र का पुत्रत्व इसी बात में है कि वह पिता को 'पुत्' नामक नरक से रक्षा करता है। वशिष्ठ धर्मसूत्र, ऐतरेय ब्राह्मण के कथन की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त यह कहता है कि ऐसा सुना गया

है कि पुत्र वालों को अनन्त (उत्तम) लोक प्राप्त होते है और पुत्रहीन को कोई लोक प्राप्त नहीं होता। पिता पुत्र द्वारा (उत्तम) लोको को जीतता है। पौत्र द्वारा अमरता प्राप्त करता है, अपने पुत्र के पौत्र से वह सूर्यलोक प्राप्त करता है। शंख ने यहां तक कहा है कि अग्निहोत्र,तीनों वेद,सैकड़ों दक्षिणाओं वाले यज्ञ बड़े लड़के द्वारा पैदा किये जाने वाले पुण्य का 16 वां अंश भी नहीं है,जिसके पुत्र पौत्र सुप्रतिष्ठित अनेक पुत्र है जिसका वेद और यज्ञ अक्षुण्ण है स्वर्ग उसकी हथेली पर है।

महाभारत में पुत्र की महिमा का प्रचुर वर्णन है। पाण्डु ने आदि पर्व में कहा है कि निःसन्तान पुरुष के लिये स्वर्ग का द्वार बन्द है । तीनों लोकों में धर्मयुक्त प्रतिष्ठा का कारण सन्तान ही है। यज्ञदान ,तपस्या, भली प्रकार किये गये अनुष्ठान ये सब उनको पवित्र नहीं करते जिनकी सन्तान नहीं है। अनपत्य व्यक्ति शुभ लोक नहीं प्राप्त करते है। गालव ने निःसन्तान राजा उशीनर से कहा है- पुत्र रूपी नौका से तुम अपना तथा पितरों का उद्धार करो। अन्यत्र अपुत्र व्यक्ति का जन्म वृथा कहा गया है और पुत्रलाभ को संसार में सबसे बड़ा लाभ माना गया है।

बृहस्पति के कथनानुसार पिण्डदान, तर्पण तथा नाम चलाने के लिये निःसन्तान पुरुष को जिस किसी तरह प्रयत्न करके पुत्र प्राप्त करना चाहिये। नरकगामी होने के डर से पितर पुत्रों की आकांक्षा रखते है। इनमें से कोई पिण्डदान के लिये गया तीर्थ जाने वाला होगा, वह हमारा उद्धार करेगा, वह वृषोत्सर्ग (सांड छुड़ाना) तथा यज्ञ और तालाब बावड़ी बनवाने का पुण्य कार्य करेगा,बुढ़ापे में पालन करेगा, तथा प्रतिदिन श्राद्धान्न देगा।

ब्रह्मपुराण ने पुत्र का महत्व बताते हुये कहा है,"पुत्रहीन के लिये स्वर्ग नहीं है, पुत्रोत्पति से पिता को दस अश्वमेघों के स्नान का फल मिलता है,पुत्र से अपनी प्रतिष्ठा होती है, अमृत से देवता और पुत्र से ब्राह्मणादि जातियां अमर होती है। यह पिता तथा दादा को तीनों ऋणों से मुक्त करता है। स्वर्ग और मुक्ति पुत्र से मिलती है। पुत्र ही परमलोक,धर्म,काम,अर्थ,मुक्ति ,परमज्योति और सब प्राणियों को तारने वाला है, इसके बिना स्वर्ग और मोक्ष दुर्लभ है,इसके बिना दान,यज्ञ और जन्म निरर्थक है। उपर्युक्त कारणों से पुत्र प्राप्ति आवश्यक है। अतः इस प्रयोजन की पूर्ति के लिये विवाह आवश्यक है।

उत्तराधिकार अनुक्रम –

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में उत्तराधिकार अनुक्रम की एक परम्परा है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक पुत्र को उत्तराधिकार की श्रेणी में रखा जाता है। जिससे समाज में पिता की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ पुत्र परिवार का मुखिया माना जाता था। जिसकी अपनी सोच पिता की तरह होती थी। अपने छोटे भाई या बहन को अपने बच्चे की तरह पालन–पोषण करता था। संयुक्त परिवार में समस्त उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य पिता के पश्चात् पुत्र पर आता था। परन्तु नाभिकीय परिवारों में उत्तराधिकार में काफी गिरावट आयी अर्थात् मौलिक स्वरूप बदला।

परिवार का मुख्य लक्ष्य था पुत्र को सन्तति के रूप में प्राप्त करना। सन्तान से ही व्यक्ति में पूर्णता आती है। वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर सन्तान प्राप्ति की कामना की गयी है, ऋग्वेद में प्रजापति से प्रार्थना की गयी "प्रजापति देवता" हमारी सन्तान उत्पन्न करे। ऐसी ही प्रार्थना पुत्र को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त करने के लिये सोम, अग्नि,इन्द्र,बृहस्पति आदि से की गयी है। इस काल में पुत्र प्राप्ति की कामना बड़ी प्रबल थी। पाणिग्रहण के समय पुत्र को प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया जाता था। पति को दस पुत्र (उत्तराधिकारी) उत्पन्न करने का निर्देश दिया है।

उत्तराधिकार प्राप्त करने की कामना निम्न कारणों से होती थी।

पुत्र के निम्न कर्तव्य हैं–

1. माता–पिता का भरण–पोषण
2. माता–पिता का सम्मान
3. माता–पिता की सेवा
4. आज्ञा पालन

उत्तराधिकार अनुक्रम हमारे समाज की प्राचीन परम्परा रही है, जिसका आशय मानवीय क्षमताओं एवं व्यक्तिगत सम्पत्ति से है। उत्तराधिकार अनुक्रम हमेशा वर्तमान समय में पुत्र एवं पुत्री दोनों पर लागू होता है। परन्तु हमारे समाज ने उत्तराधिकार का अधिकांशतः श्रेय पुत्र को दिया, पुत्री को नहीं ।

प्राचीन भारतीय समाज में पुरूष को एक विशेष स्थान उपलब्ध था। इस बात का प्रमाण परिवार में पुत्र के स्थान से मिल जाता है। महाभारत एवं मनुस्मृति में इस बात का उल्लेख मिलता है कि प्रत्येक परिवार में एक पुत्र का होना नितान्त आवश्यक है। एक पुत्र के अभाव में गृहस्वामी मोक्ष नहीं प्राप्त कर पाता, तथा सारे उत्तरदायित्वों का निर्वाह ज्येष्ठ पुत्र ही करता था। इस विधान में सबसे बड़ा लड़का परिवार को बना भी सकता है और बिगाड़ भी सकता है।

प्राचीन धर्मग्रन्थों में इस बात का प्रमाण है कि पिता की मृत्यु के बाद बड़ा भाई लोगों को संरक्षण प्रदान करता था। दूसरे भाई बहन उसके आदेशों का पालन करते थे, परन्तु परिस्थितियां बदलने पर सारे समाज की वास्तविक रूप–रेखा बदल गयी। लोगों की सोच बदल गयी, परन्तु धीरे–धीरे उत्तराधिकार के लिये पुत्र के स्थान पर पुत्री का भी महत्व बढ़ा। जिससे मनुष्य की सोच बदली ।

उत्तराधिकार अनुक्रम एक सामाजिक धार्मिक एवं पारिवारिक विधान है। जिसको पारिवारिक प्रथाओं एवं रीति–रिवाज से जोड़ दिया। वाल्मीकि रामायण में भी उत्तराधिकार अनुक्रम का वर्णन मिलता है। राजा दशरथ के स्थान पर राम को राज्य मिला।जो एक समाज की आदर्श परम्परा को निरूपित एवं रेखांकित करता है। जिससे सामाजिक

एवं पारिवारिक मूल्यों की रक्षा होती है।

वैदिक काल से गुप्तकाल तक उत्तराधिकार अनुक्रम का विधान देखने को मिलता है। ऋग्वेद एवं सामवेद में भी उत्तराधिकार अनुक्रम का उल्लेख देखने को मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कर्म–मीमांस एवं उत्तराधिकार अनुक्रम का महत्व है। आठ ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध है–

1. एतरेय ब्राहमण
2. कोषीतकी ब्राहमण
3. शतपथ ब्राहमण
4. तैतिरीय ब्राह्ममण
5. ताण्डय् ब्रहमण
6. षड्विश ब्राहमण
7. जैमिनीय ब्राहमण
8. गोपथ ब्राहमण

उत्तराधिकार अनुक्रम का स्थान वर्तमान समय में पुत्री ने ले लिया। प्राचीन भारतीय समाज पुरूष प्रधान था और इस कारण से पुरूष की अपेक्षा स्त्रियों को गौण स्थान प्राप्त था। धर्मशास्त्रों में यद्यपि इस बात का उल्लेख है कि किसी गृहस्थ को अपनी पुत्री से झगड़ा नहीं करना चाहिये,उसे सभी प्रकार के पारिवारिक दायित्व, स्नेह एवं सहानुभूति देना चाहिये। किन्तु सामाजिक जीवन में पुत्रों को आगे चलकर वह स्थान उपलब्ध नहीं रह गया, जो पुत्र को उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त था।

उत्तराधिकारी की प्रक्रिया विभिन्न जातियों में अलग–अलग होती है। दक्षिण भारत की आदिवासी जातियों में सबसे छोटा पुत्र उत्तराधिकार का स्थान प्राप्त करता है। उत्तर भारत एवम् मध्य भारत में अधिकतर ज्येष्ठ पुत्र कर्मकाण्ड एवम् उत्तराधिकार का स्थान प्राप्त करता है। हिन्दू धर्म में उत्तराधिकारिता एक प्रकार का सामाजिक अधिकार है। जिसको पिता की मृत्यु के बाद पुत्र प्राप्त करता है। पुत्र पिता का स्थान ले लेता है तथा समस्त उत्तरदायित्वों को पूरा करता है।

आधुनिक विवाह प्रथा एवं पाश्चात्य संस्कृति –

विवाह के प्राचीन रूपों में इस समय केवल ब्रह्म और असुर रूप ही अधिकतर प्रचलित है। किन्तु वर्तमान हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों,वर्णों,उपवर्णों ,जातियों, कबीलों एवं समुदायों में विवाह की कुछ ऐसी पद्धतियां प्रचलित है जिसका शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है। ये विवाह इन जातियों में सैकड़ों वर्षों से होते चले आये है और अदालते इसको रिवाजी कानून के रूप में स्वीकार करती है। इनमें किसी भी प्रकार की शास्त्रीय विधि का पालन नहीं होता।

आधुनिक विवाह प्रथा में भौतिकतावादिता के कारण काफी तेजी से परिवर्तन आया है। इन परिवर्तन के कारण समाज में विवाह पद्धति भी बदली है। क्योंकि इससे पूरा सामाजिक ढाँचा प्रभावित हो रहा है। सामाजिक परम्परायें, रस्में एवं रीति–रिवाज भी प्रभावित हो रहे है। मनुष्य की सोच बदल गयी है। जो मानवीय अपेक्षाओं एवं उपादानों को प्रभावित कर रही है। आधुनिक विवाह प्रथाओं का सम्बंध प्राचीन विवाह प्रथाओं से काफी भिन्न एवं अलग है।

''आधुनिक संस्कृति एक ऐसा सिद्धान्त है। जो संस्कृति के विभिन्न पक्षों, जैसे धार्मिक विश्वास,विवाह प्रथा, विवाह की रस्में,रीति–रिवाज,तौर–तरीके संस्कृति के विभिन्न पक्ष भौतिक दशाओं के साथ अनुकूलन की उपज है। इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रणेता मारविन हैरिस नामक मानवशास्त्री रहे।[160]

आधुनिक संस्कृति को अनेक ढंग से परिभाषित किया गया है, तथा ऐतिहासिक,दार्शनिक साहित्यिक,मनोवैज्ञानिक तथा मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण आदि से आधुनिक विवाह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो रहे है। जो मानवीय जीवन की गतिविधियों को प्रभावित कर रहे हैं। आज अधिकतर विवाह में पाश्चात्य संस्कृति का अधिक दिखावा देखने को मिलता है।

''आधुनिक भारत का अर्थ है 1947 के बाद का भारत। इसका कारण यह है कि 1947 के बाद ही भारत का आधुनिक रूप सामने आया है। इससे पहले का भारत परम्परा–प्रेमी था। यहां पर जाति–प्रथा की जड़ें अत्यन्त गहरी थी,संयुक्त परिवार को आदर और

श्रद्धा से देखा जाता था, विवाह को मानव समाज का अनिवार्य संस्कार समझा जाता था। इसके साथ ही जीवन अनेक प्रकार की रूढ़ियों और प्रथाओं से पूर्ण था। शासक वर्ग इस प्रकार की नीतिओं को प्रोत्साहित करता था। यही कारण है कि परम्परात्मक भारत स्वतंत्रता के पूर्व तक रहा।

1947 की स्वतंत्रता के बाद ही नये भारत का जन्म हुआ। भारत की शासन व्यवस्था को संचालित करने के लिये संविधान का निर्माण किया गया।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में ही इसकी मूल धारणा की विवेचना की गयी और लिखा गया कि सभी नागरिकों के साथ समानता,स्वतंत्रता , और मातृत्व का व्यवहार किया जायेगा तथा सभी नागरिकों को समान अधिकार और न्याय प्रदान किया जायेगा। इसके साथ ही भारतीय नागरिकों के साथ जाति,लिंग,धर्म, आदि से संबंधित किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जायेगा। स्वतन्त्र भारत में अनेक प्रकार के अधिनियमों का भी निर्माण किया गया है। सभी नागरिकों को जाति और धर्म का भेद-भाव किये बिना वैवाहिक सम्बंध स्थापित करने का अधिकार दिया गया है। आधुनिक भारत में अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिल रहा है।

आधुनिक वैवाहिक प्रथाओं में काफी तेजी से अमूल-चूल परिवर्तन हो रहा है। पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता ने भारतीय संस्कृति के वास्तविक रूप को विकृत किया परिणामस्वरूप,जिससे मानवता गिरी और प्राचीन परम्परायें टूटी। जिससे मानवीय आचार विचार दूषित हो रहे है।

आधुनिक संस्कृति के कारण से जातिवाद का अन्त हुआ। प्राणी शास्त्र एवं चिकित्सा विज्ञान के अनुसार विवाह हमेशा विषम गोत्रीय होना चाहिए जिस कारण से होने वाली सन्तान बलिष्ठ, हृष्ट-पुष्ट, वीरत्व एवं ओजस्वी दिखलाई पड़ती है। प्रेम विवाह भी एक आधुनिक संस्कृति का परिदृश्य है जो प्राचीन मानवीय मूल्यों को तोड़ रहा है। आधुनिक परम्पराओं एवं प्रथाओं ने प्राचीन प्रथाओं को अधिगृहित किया। आधुनिक विवाह में प्रमुख रूप से मानवीय सोच

बदली तथा वर एवं वधू पक्ष काफी महंगी शादी करने लगे जिससे समाज में विभिन्न प्रकार की विसंगतियां एवं विक्रतियां बढ़ती चली गयी सारा समाज आधुनिकता एवं भौतिकता का शिकार हुआ। पूरा सामाजिक ढाचां बदल गया तथा रीतियां और परंपरायें बदली। आज विवाह काफी महगें हो गये जिससे सारा समाज बाहर से शिष्ट परन्तु अन्दर से भ्रष्ट दिखलायी पड़ता है।

अधिकांश लोगों की सोच विवाह के प्रति बदल गयी। उसका प्रमुख कारण रहा है। आधुनिकता की पराकाष्ठा एवं विवाहों का प्रतियोगिता की श्रेणी में आना है। वर्तमान समय में विवाह में कई प्रकार की भ्रंतियां और ऊहांपोह है। लोग अधिकांशतः अपनी मौलिक मान्यताओं को भूल गये तथा रिश्ते बदल गये। दिखावटीपन की प्रबलता दिखाई देती है। विवाह के समय विलाशता का पूर्ण चर्मोत्कर्ष देखा जा सकता है। कई प्रकार का समिष और अमिष भोजन विवाह में परोसा जाता है जिसका प्रभाव नई पीढ़ी पर पड़ रहा है उनकी मानसिकता एवं नैतिकता बदल गयी है।

दक्षिण भारत के विवाह –

हिन्दू समाज ने विवाहों को इतने अधिक शास्त्रीय बन्धनों में जकड़ लिया कि हम अब यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई ऐसा भी विवाह हो सकता है जिसमें कोई पुरोहित न बुलाया जाय, कोई मंत्र न पढ़ा जाये और कन्या का दान न किया जाय। दक्षिण के हिन्दू समाज में इस प्रकार के विवाह बहुत प्रचलित है। अस्पृश्यता आदि विषयों में दक्षिण भारत बहुत ही कट्टर है, हिन्दू विवाह के विषय में उनके कुछ वर्गो में विल्क्षण स्वाधीनता पायी जाती है।

मालावार और कनारा की नायर और नम्बूदरी जातियों में विवाह के कई रूप प्रचलित है, उन्हें विवाह न कहकर स्त्री पुरुष संबन्ध कहना अधिक उचित होगा। इन सम्बन्धों को कानून द्वारा स्वीकृत नहीं माना जाता है। हिन्दु समाज के सभी विवाहों में पति–पत्नी को अपने घर पर ले जाता है किन्तु दक्षिण के इन विवाहों में पत्नी अपने पिता के घर में ही रहती है, पति उसके घर पर जाता है, पहले स्त्री अपनी इच्छा के अनुसार एक, दो या कई पुरुषों से

सम्बन्ध रखती है और इससे समाज में उसकी कोई प्रतिष्ठा या बदनामी नहीं होती थी। इसलिए कहा जाता था कि मालावार में कोई विवाह नियम नहीं है।

दक्षिण भारत के निम्न विवाह है :–

1. तालिकेट्टु तथा संबन्धम् विवाह

2. नम्बूदरी विवाह

3. खाण्डा विवाह

4. शान्ति गृहीत विवाह

5. आनन्द विवाह

6. कण्ठी–बदल विवाह

7. कलियानम् विवाह

8. नातरूं विवाह

9. चादर अंदाजी विवाह

आधुनिक विवाह प्रथा में साज–सज्जा, वेश–भूषा एवं पाश्चात भोजन करने की पद्धति स्पष्ट रूप से नजर आती है। अधिकांश लोग विवाह में भौतिक संसाधनों, कृत्रिमता एवं बनावटीपन पर अधिक से अधिक जोर देते है। विवाहों में पैसे का प्रदर्शन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। विवाहों में प्रचीन परम्पराओं एवं प्रथाओं में काफी परिवर्तन आ रहा है,जो पूर्ण रूप से पाश्चात्य उपमानों एवं उपादानों पर केन्द्रीय भूत है

अधिकतर लोग विभिन्न परिधानों में और कृतिम आभूषणों से अपने को सजा कर रखते है। जो केवल एक क्षणिक सुख है गरीब एवं मध्यम परिवारों में जो ग्रामीण संस्कृति के परिवेश से जुड़े हुए है वहा पाश्चात्य संस्कृति कम नजर आती है। परन्तु जो परिवार शहरों और

महानगरों में निवास करते है वहा पर पाश्चात्य संस्कृति का अधिक बोलवाला है।

अभिजात्य वर्ग के विवाहों में पाश्चात्य संस्कृति स्पष्ट दिखाई देती है जैसे- बियर-वार, नृत्य करते हुए युवक एवं युवतियां, धूम्र-पान करते युवक। इन सभी कारणों से भारतीय वैदिक संस्कृति में गिरावट आ रही है।

अर्थात् पाश्चात्य संस्कृति ने पूरे समाज को अपने आगोश में ले लिया जिससे हमारे समाज की मौलिक वैवाहिक प्रथायें समाप्ति की ओर जा रही है।

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण से विवाह अब घरों से न होकर विवाह घर एवं विवाह मंडप से होते है। जो घरो की तुलना में काफी महँगा पड़ता है जिससे वधू पक्ष पर दबाव रहता है पाश्चात्य संस्कृति हमेशा वैदिक मूल्यों को प्रभावित करती है। मानवीय व्यवहार, आचार-विचार, वेश-भूषा, परम्पराएं, प्रथाएं एवं रीति-रिवाज सभी दिन प्रति-दिन परिवर्तित हो रहे है।

वैवाहिक परम्पराएं दिन प्रति-दिन बदल रही है जो मानव की सोच में उत्कृष्टता एवं निकृष्टता का परिसीमन कर रही है। जिससे दिन प्रति दिन विवाह एक व्यापार एवं वाणिज्य की श्रेणी में आ रहा है। निम्न एवं गरीब वर्ग भी पाश्यचात्य संस्कृति से ग्रसित है। अभिजात्य वर्ग के द्वारा पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने से समाज की मौलिकता बदल रही है।

पिछले अनेक वर्षों में भारत के परिवार और विवाह के सम्बंध में अनेक समाज शास्त्री अनुसंधान हुये हैं। पश्चिमी जगत के समाज शास्त्रियों एवम् वैज्ञानिकों ने विवाह तथा परिवार के भविष्य के सम्बंध में अनेक कल्पनायें की हैं। इनके अनुसार एक ऐसा भावी युग आने वाला है जब समाज में विवाह एवम् परिवार की प्रथा पूर्ण रूप से लुप्त हो जायेगी (श्री के0टी0मर्चेन्ट ''चेंजिंग व्यूस ऑफ मैरिज एण्ड फैमिली'' 1935)

पुरुष व स्त्री इच्छानुसार कामोपभोग करेंगे, बच्चे का पालन-पोषण करने के लिये माता-पिता और परिवार की आवश्यकता नहीं रहेगी।

शिशुओं का पालन–पोषण शिशु–शालाओं में दाइयों द्वारा होगा। सुप्रसिद्ध लेखक 'हक्सले' ने अपनी पुस्तक 'नवीन साहसिक जगत' में कल्पना की थी कि भविष्य में बच्चों का जन्म टेस्ट ट्यूब्स में होगा एवम् स्त्रियों को प्रसूत का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।

विवाह और परिवार की व्यवस्था सर्वथा अनावश्यक और निरर्थक सिद्ध हो जायेगी।[161]

वर्तमान समय में आधुनिकता एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण हमारी समस्त जीवन शैली प्रभावित हुई है। इस प्रभाव से हमारे वैवाहिक संस्कार भी अछूते नहीं रहे। इन वैवाहिक धार्मिक संस्कारों में कई परिवर्तन हुये हैं। जो इस प्रकार हैं–

1. विवाह के स्वरूप में परिवर्तन –

भारतीय धर्म शास्त्रकारों ने विवाह को धार्मिक संस्कार से जोड़कर एक अविच्छेद संबंध के रूप में स्थापित किया है। अतः यह एक अनुबंध नहीं है जिसे कोई भी पक्ष कुछ विशेष परिस्थितियों में तोड़ सके। किंतु वर्तमान समय में युवक युवतियों की विवाह बिषयक धारणा में परिवर्तन आ रहा है। उनमें इसे धार्मिक संस्कार या अविच्छेद बंधन के स्थान पर वैयक्तिक संबंध और एक प्रकार का अनुबंध समझने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

2. विवाह की अनुपयोगिता –

हिन्दू समाज में चिरकाल से प्रत्येक नर–नारी के लिये विवाह एक अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य माना जाता रहा है। किंतु अब धीरे–धीरे इस धारणा में परिवर्तन हो रहा है और कुछ युवक–युवतियाँ विवाह को अनावश्यक समझने लगे हैं। जिसके संबंध में वे कहते है कि यह स्वतंत्रता पर अंकुश है। वर्तमान समय में युवक व युवतियां आत्मनिर्भर हैं। आधुनिक समय में युवतियां भी आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर नहीं है अतः युवतियां भी विवाह को आवश्यक नहीं समझती। कुछ स्त्रियों के अधिक शिक्षित होने पर उपयुक्त वर की तलाश में उनकी योग्यता और उनका अहम् आड़े आता है। फलस्वरूप कभी–कभी वे अविवाहित भी रह जाती है। वैदिक युग में पिता के घर में रहने

वाली इस प्रकार की कन्याओं को 'अमाजू' कहा जाता था। अब पुनः हमारे समाज में यह स्थिति उत्पन्न हो रही है।

3. **वरण–स्वातंत्रय –**

भारतीय संस्कृति में विवाह को दो व्यक्तियों को नहीं अपितु दो परिवारों के मिलन के रूप में देखा जाता है। इसमें वर–वधू को किसी भी प्रकार से अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता नहीं होती। इसमें पहले विवाह होता है और इसके बाद प्रेम विकसित होता है। पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करते हुये युवक और युवतियों में अपने जीवन साथी के लिये उत्सुकता बढ़ी है और वे पहले प्रेम इसके पश्चात् विवाह को महत्व देते हैं। इस बढ़ती प्रवृति के कारण विवाह संबंधों को निश्चित करने में माता–पिता अपने बालकों की सहमति अवश्य लेते हैं।

4. **विवाह की आयु का ऊँचा उठना–**

प्राचीन हिंदू समाज में विवाह कम उम्र में संपन्न हो जाते थे। किंतु शहरों के मध्यम व शिक्षित वर्ग में अब बहुत देर से विवाह करने की प्रवृत्ति आरंभ हो गयी है। अधिक उम्र में विवाह करने वाले स्त्री–पुरूष के विचार और आदतें परिपक्व होती हैं अतः उनके वैवाहिक जीवन के समायोजन में कठिनाई आती है।

5. **प्रणय विवाह –**

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से आधुनिक समय में युवक व युवतियां पहले प्रेम और फिर विवाह के सिद्धान्त का पालन करने के लिये अग्रसर दिखाई देते हैं। उनकी इस जिज्ञासा को सिनेमा के पर्दों ने भी प्रोत्साहित किया है।

6. **अंतर्जातीय विवाह –**

वर्तमान समय में शिक्षित युवावर्ग विवाह संबंधों के लिये समान जाति व धर्म को आवश्यक नहीं मानते। उनके लिये विवाह एक ऐसा संबंध है जो कि दो व्यक्तियों का व्यक्तिगत आपसी समझौता व प्रेम है। अतः वर्तमान में अंतर्जातीय विवाहों का प्रचलन हो गया है और इसे समाज द्वारा मान्यता भी प्राप्त होती जा रही है।

7. **विवाह संस्कार में परिवर्तन –**

वर्तमान भारतीय समाज औद्योगीकरण,नगरीकरण तथा पश्चिमीकरण की नवीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने रीति–रिवाजों एवम् धार्मिक संस्कारों में परिवर्तन करता जा रहा है। इन परिवर्तनों का मुख्य कारण समयाभाव, व संकुचित होते परिवार हैं।

8. **विवाह विच्छेद की प्रवृत्ति –**

वर्तमान समय में हमारे देश के युवाओं के जीवन मूल्यों में तीव्रता से परिवर्तन हुआ है। प्राचीन समय में हमारा जीवन धर्म द्वारा संचालित होता था। किन्तु वर्तमान में हमारी सोच में बदलाव आया है। जहां प्राचीन समय में विवाह को एक पवित्र धार्मिक संस्कार के रूप में देखा जाता था वहीं वर्तमान में युवावर्ग इसे आवश्यक नहीं समझता। वह इस बंधन को एक समझौते या अनुबंध के रूप में देखता है। जब तक समायोजन हुआ साथ चले अन्यथा रास्ते बदल लिये। आपस में समायोजन न होने पर युवा वर्ग विवाह विच्छेद का मार्ग अपनाने से नहीं हिचकते और ना ही वे इसे गलत समझते हैं। अतः वर्तमान में विवाह विच्छेद के मामलों में हमारे देश में वृद्धि हुई है।

शनैः शनैः हिन्दू समाज के उच्च एवम् शिक्षित वर्ग में विवाह बिषयक धारणाओं,प्रथाओं और संस्थाओं में अनेक मौलिक परिवर्तन हो रहे हैं। अभी तक ये परिवर्तन शहरों के शिक्षित वर्ग तक सीमित हैं। किंतु नगरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ने से खमीर की भांति इनका प्रभाव ग्रामीण जीवन पर भी पड़ेगा। इनसे भविष्य में विवाह को केवल अविच्छेद धार्मिक बंधन नहीं समझा जायेगा। विवाह को नर–नारी के लिये अनिवार्य एवम् आवश्यक समझने की भावना में शिथिलता आ जायेगी।अविवाहित रहने की तथा बड़ी आयु में विवाह करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी।युवक युवती अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता की अधिकाधिक मांग करेंगे, प्रणय विवाहों की प्रवृति बढ़ेगी।विवाह संस्कारों की जटिलता कम होगी।[162]

अब जल्दी से बेगार भुगतने की तरह विवाह संस्कार निपटा दिये जाते हैं। उस समय जो प्रशिक्षण वर–वधू को होता था, उसका तो अब नामो–निशान भी नहीं रह गया है। दोनों पक्षों के पंडित

शीघ्रता से विवाह सम्पन्न करा देते हैं। समय की बर्बादी समझकर विवाह में सम्मिलित होने वाले लोग उपस्थिति देकर लौट जाते हैं। वर–वधू भी यह चाहते हैं कि यह जंजाल जितनी जल्दी सिमट जाये उतना अच्छा इस तरह सम्पन्न कराये गये विवाह संस्कार का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध नहीं हो पाता। इसके लिये तो हर दृष्टि से प्रभावोत्पादक वातारवरण बनाना होगा। वर–वधू में उनके कर्तव्य,उत्तरदायित्वों की भावना का विकास करना होगा। तभी ऋषि परम्परा का लाभ मिल सकने की सम्भावना रहेगी।

अध्याय - अष्टम्

उपसंहार

उपसंहार

विवाह समस्त संस्कारों में गौरवशाली एवं महत्वपूर्ण माना जाता है। मनुष्य इससे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। इसके बिना मनुष्य अधूरा माना जााता है। विवाह वंश वृक्ष की वाटिका में प्रवेश करने का प्रथम सोपान है। विवाह मानवीय जीवन की सबसे आवश्यक एवं विचित्र विडंबना है। जीवन या मरण, चिरानन्द या चिर स्थायी दुःख सभी कुछ विवाह की परिधि में आबद्ध है। जीवन को सुखमय बनाने के लिये मनीषियों ने हमारे चारों तरफ संस्कारों की रेखायें खींच दी है। जिससे अशुभ की छाया से बचा जा सके।

हिन्दू सनातन धर्म कहता है कि संस्कार से ही समाज में बड़े छोटे ज्ञानी अज्ञानी की पहचान होती है। कई व्यक्ति जन्म से महान होते हैं। कइयों को संस्कार से महान बनाया जाता है। जन्म लेने पर सभी शूद्र होते हैं। संस्कार ही उन्हें द्विज बनाता है। द्विज का अर्थ दूसरी बार जन्म लेने वाला। एक ही जन्म में क्या दोबारा जन्म लेना सम्भव है? हमारा धर्म कहता है कि यह पूरी तरह सम्भव है। पक्षी, दांत, चन्द्रमा और ब्राह्मण इसके ज्वलंत उदाहरण है। यह जरूरी भी है अगर दूसरा जन्म नहीं होता – यानी किसी व्यक्ति को संस्कार के जरिये द्विज नहीं बनाया जाता तो ऐसे मनुष्य का जीवन बेकार चला जाता है। संस्कार से ही घर, परिवार और समाज में सफलता प्राप्त की जा सकती है। व्यक्ति को दिव्य बनाया जा सकता है।

भारतीय समाज में इन्हीं संस्कारों के प्रभाव से हजारों वर्षों तक एक से बढ कर एक वीर, तपस्वी, न्यायी, शासक, साहसी व्यापारी, स्वामी भक्त सेवक, कवि, वैज्ञानिक और दार्शनिक पैदा होते रहे। संस्कारों की ही महिमा थी की हजारों वर्षों की गुलामी भी हमारी सभ्यता और संस्कृति को मिटा नहीं सकी। यूनान, मिश्र, रोम, चीन और फारस की पुरानी सभ्यतायें आज खण्डहरों में दबी पड़ी हैं, लेकिन भारतीय संस्कृति और सभ्यता हजारों हजार वर्षों से एक जल भरी नदी की तरह देशवाशियों का पालन पोषण कर रही है। संस्कृति और

सभ्यता की यह नदी सदियों के दौरान भी नहीं सूखी। इसका मुख्य कारण हमारे संस्कार हैं।

हमने जिस हद तक इन संस्कारों को छोड़ दिया है, उस सीमा तक हम गरीब, दुःखी और परेशान हुये हैं। हिन्दू संस्कारों की वैज्ञानिकता और उपयोगिता को आज पश्चिम के विकसित देशों ने भी स्वीकार किया है। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि रमण, योगी अरविन्द, महर्षि महेश योगी, भक्ति वेदांत और पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे महापुरूषों ने भारतीय धर्म के संस्कारों का महत्व व परिचय को सात समुद्र पार विदेशों में पहुंचाया। पश्चिम के सम्पन्न देश अब इन संस्कारों का महत्व समझने के लिये लालायित हैं। वे निरन्तर इस पर अनुसंधान कर रहे हैं, लेकिन हम अपने ही देश में अधूरी – अधकचरी अंग्रेजी शिक्षा और विदेशी फैशन के प्रभाव में इन संस्कारों को पाखण्ड समझ कर छोड़ते जा रहे हैं। हम अपने देश के बहुमूल्य रत्न को कचरे में फेंक रहे हैं और विदेशों का जूठन खाकर खुश हो रहे हैं। इस तरह तो हम कभी सफलता और सम्पन्नता की मंजिल तक नहीं पहुंच सकते।

गणिका के गर्भ से पैदा हुये महर्षि वशिष्ठ ने अपनी तपस्या के प्रभाव से संसार को चकित कर दिया। केवट कन्या से उत्पन्न महर्षि व्यास ने 18 पुराणों की रचना कर डाली। दासी के गर्भ से उत्पन्न विदुर ने कौरव पाण्डव को राजधर्म का पाठ पढाया। जुलाहे के घर में पले संत कबीर ने संसार को राम नाम का मर्म समझाया। चमड़े का काम करने वाले संत रैदास ने मीरा बाई को दीक्षा दी ये सारे उदाहरण साबित करते हैं कि जन्म जन्म के संस्कार इक्कट्ठे होते हैं तो महापुरूषों का उदय होता है। ये महान आत्मायें तपस्या, कर्म और उत्तम संस्कार के जरिये समाज को रास्ता दिखाते हैं।

हमारी संस्कृति के अनुसार हम यह मानते हैं कि मनुष्य जो भी कार्य करता है उसका भला बुरा प्रभाव निश्चित रूप से होता है। इससे तभी मिटाया जा सकता है जब संस्कार का सहारा लिया जाय। संस्कार के जरिये हम कर्म के बुरे प्रभावों को नष्ट करते हैं और शुभ

प्रभाव के संचित होने की भूमिका तैयार करते हैं। मन्त्र, प्रार्थना और कर्मकाण्ड के जरिये हम जन्म-जन्म से संचित अशुभ को नष्ट करते हैं और शुभ के लिये मनुष्य को तैयार करते हैं। इस तरह संस्कार मनुष्य के शरीर व आत्मा को पवित्र करने, शुद्ध करने के सबसे शक्तिशाली और अचूक साधन हैं। यह सिर्फ कर्म काण्ड नहीं है, इसमें अनेक अर्थों में कई वैज्ञानिक रहस्य छिपे हुये हैं।

संस्कारों के दो लाभ प्रमुख हैं - इनसे मन पवित्र होता है और आस्था बढती है। इनसे समाज को सही तरीके से चलाने में मदद मिलती है। संस्कार का दूसरा उद्देश्य परिवार, समाज और देश की भलाई के लिये सही वातावरण तैयार करना है। संस्कारों के जरिये अब हम देवताओं को प्रसन्न कर उनसे मनुष्य और समाज के हित की याचना करते हैं। सीमान्तोन्नयन संस्कार में गूलर के पेड़ की टहनी गर्भवती महिला के गले में स्पर्श करायी जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि स्त्री में उर्वरता बनी रहे। बच्चे के जन्म से पहले गर्भवती की नाक में बरगद के पेड़ का दूध या अर्क डाला जाता है। इससे गर्भपात नहीं होता प्रसव आसानी से हो जाता है।

हिन्दू धर्म यह मानता है कि प्रार्थना,तप और कर्मकाण्ड से देवता प्रसन्न होते हैं। वे संस्कार करने वाले को धन-धान्य,सुख-सौभाग्य ,स्वस्थ शरीर और बुद्धि देते हैं। इसलिये संस्कार को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का द्वार माना गया है। इससे मनुष्य में नैतिक बल बढता है और उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास होता है।

हिन्दू विवाह के उद्देश्य तथा आदर्शों के बारे में धर्मशास्त्रों द्वारा अनेक मतों की प्रतिस्थापन की गयी है। ऋग्वेद के अनुसार, विवाह का उद्देश्य गृहस्थ होकर देवों के लिये यज्ञ करना तथा सन्तान उत्पन्न करना है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार व्यक्ति तब तक अपूर्ण है जब तक कि विवाह करके सन्तान को जन्म नहीं देता। इसी कारण पत्नी को 'अर्द्धांगिनी' कहा गया है। मनुस्मृति के अनुसार सन्तानोत्पत्ति धर्म,आनन्द,सेवा तथा पूर्वजों की स्वर्ग प्राप्ति पत्नी पर निर्भर है। उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम हिन्दू विवाह के उद्देश्यों

को निम्न श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं–

1. धर्म
2. प्रजा और
3. रति

प्राचीन भारतीय समाज में विवाह के निर्धारण के समय वर–वधू के अनेक गुणावगुणों का परीक्षण किया जाता था एवं प्रयत्न किया जाता था, कि उत्तम गुणों से सम्पन्न वर या वधू ही चुनी जाये ताकि नवविवाहित दम्पत्तियों का जीवन सुखों से भरा रहे।

वर में निम्न गुणों का होना आवश्यक –कुलशील,स्वस्थ शरीर, योग्य आयु,विद्या,धन, परिवार,आरोग्य,लोकप्रियता आदि वर के आवश्यक गुण हैं।

याज्ञवल्क्य के अनुसार वर भी पूर्वोक्त गुणों से युक्त हो,सवर्ण और विद्वान हो तथा उसके पुरूषत्व की यत्न–पूर्वक परीक्षा की गयी हो। इसके अतिरिक्त उसे विवेकशील और प्रिय होना चाहिये।

इसी प्रकार कन्या के गुणों का भी वर्णन किया गया है। याज्ञवल्क्य के अनुसार कन्या शुभ लक्षणों से युक्त हो, जो पहले किसी अन्य पुरूष को प्रदत्त या किसी द्वारा भोगी न गयी हो, सुन्दर हो, आयु एवं शरीर में वर से छोटी हो तथा असाध्य रोग से अछूती हो, भाई वाली हो, भिन्न गोत्र वाली तथा माता के कुल में पांच पीढ़ी से ऊपर तथा पिता के कुल में सात पीढ़ी से ऊपर हो।

विवाह के रूपों की संख्या, क्रम और नाम सभी स्थानों पर एक समान नहीं हैं। आश्वलायन,गृहसूत्र,बौधायन,धर्मसूत्र, मनु–स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृमि तथा महाभारत के आदि पर्व में विवाह के रूपों की संख्या आठ कही गयी है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में विवाह के 6 रूप बताये गये हैं। यहाँ प्रजापत्य तथा पैशाच का उल्लेख नहीं किया गया है। वशिष्ट धर्मसूत्र में ब्राह्म,दैव, आर्ष गान्धर्व,छात्र और मानुष के ये 6 भेद ही किये गये हैं। मानव गृहसूत्र में ब्राह्म और शौल्व (आसुर) ये दो ही रूप बताये गये हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व में विवाह के पाँच रूप कहे गये है। आश्वलायन गृहसूत्र में प्रजापत्य को तीसरा और

आर्ष को चौथा स्थान दिया गया है, जब मनु,याज्ञवल्क्य, आर्ष को तीसरा और प्रजापत्य को चौथा स्थान देते हैं। मुन याज्ञवल्क्य और दूसरे स्मृतिकार तथा अधिकांश गृहसूत्रकार राक्षस को सातावां और पैशाच को आठवाँ स्थान देते हैं। पर आश्वलायन गृहसूत्र में पैशाच को सातवाँ और राक्षस को आठवाँ देते हैं। वशिष्ट द्वारा राक्षस को क्षात्र और आसुर को मानुष नाम दिया गया है। याज्ञवल्क्य प्रजापत्य को काम विवाह कहते हैं।

हिन्दू विवाह से प्रतिलोम विवाह अनेक आदेशों और अनुदेशों से सम्बद्ध है। ऐसा माना जाता है कि वैदिक युग में विवाह से सम्बन्धित ये मान्यतायें अधिक महत्वपूर्ण नहीं थीं अथवा उनके प्रति लोगों का दृष्टिकोण अधिक उदार था। परन्तु कालान्तर में विवाह की नियम जीवन के अनिवार्य अंग बन गये हैं:- 1. अन्तर्विवाह 2. बर्हिविवाह 3. अनुलोम 4. प्रतिलोम विवाह

यह प्रयास किया जाता था कि इन नियमों के अन्तर्गत ही विवाह किया जाये इन विवाह रीतियों द्वारा सम्पन्न विवाह श्रेष्ठ माना जाता है।

ऋग्वैदिक काल में आर्यों ने स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता देकर उनका वास्तविक महत्व प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। इस काल में एक पत्नी-विवाह की प्रथा थी। स्त्रियों के आचार तथा व्यवहार अति उत्तम थे। वे पर्दा नहीं करती थी। धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में पुरूषों के साथ स्त्रियां भी कार्य करती थीं। बहुत से धार्मिक कृत्य स्त्रियों के बिना पूर्ण ही नहीं माने जाते थे।

कन्या विवाह के पूर्व पिता के नियंत्रण में रहती थी। विवाह पिता की इच्छानुसार सम्पन्न होता था कुछ अंशों में कन्या की इच्छा पर भी ध्यान दिया जाता था। लड़के की इच्छा लड़की से अधिक बढ़कर थी। ऋग्वेद में वर्णित एक विवाह के अनुसार वर की ओर से बारात वधू के यहाँ जाती थी। वधू सजकर भोज में भाग लेती थी। तत्पश्चात् दाम्पत्य जीवन में दोनों प्रवेश करते थे। विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता था।

उत्तर वैदिक काल में अन्तर्जातीय विवाह का भी उल्लेख मिलता है। विवाह साधारणतः'पत्थ शसन्ती' अर्थात् युवावस्था में होता था। गृहसूत्रों में इस बात का संकेत मिलता है कि सपिण्ड अर्थात् पिता की 7 वीं पीढ़ी और माता की पाँचवीं पीढ़ी तक के सम्बन्ध में विवाह वर्जित था इसके अतिरिक्त 'सनर्भि'अर्थात् एक गर्भ के विवाह वर्जित थे। किन्तु शतपथ ब्राह्मण पिता-माता की 3-4 पीढ़ियों के बाद विवाह को अनुमति देता था।

अन्तर्जातीय विवाह उचित नहीं माना जाता था, बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। चार प्रकार की पत्नियों का उल्लेख मिलता है। -महिर्षि (पटरानी),वीरयुवती (पुत्रहीन पत्नी),बाबात (प्रयतमा),पालागली,(पदाधिकारी की कन्या जो राजों की राजनीतिक उद्देश्य से ब्याही जाती थी)। दहेज प्रथा का आरम्भ हो चला था। विधवा विवाह प्रथा भी चली आ रही थी।

महाकाव्यों के काल में स्त्रियों की दशा अच्छी न थी। इस युग में बहुर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी। राजा दशरथ के स्वयं तीन रानियाँ थीं। द्रोपदी के पाँच पति थे- युधिष्ठिर,भीम,अर्जुन,नकुल,सहदेव,इस प्रकार के विचारों के साथ-साथ महाभारत में ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं जिनसे स्त्रियों की प्रतिष्ठा, त्याग और बड़पन्न का पता चलता है।

महाकाव्यों के काल में विवाह के नियम भी अच्छे थे। यद्यपि साधारण नियम 25 वर्ष की अवस्था प्राप्त करने पर विवाह करने का था परन्तु इस नियम के कुछ अपवाद भी मिलते थे। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का विवाह सोलह वर्ष की अवस्था में हुआ था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाल-विवाह की प्रथा अंकुरित हो रही थी। राजवंशों में विवाह प्रायः स्वयंवर द्वारा हुआ करता था। ऐसा प्रतीत होता है कि राजवंशों में बहुर्विवाह की प्रथा थी, क्योंकि राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं और पाण्डु के दो पत्नियाँ थीं। इसी प्रकार महाराज कृष्ण के भी कई रानियाँ थीं। एक स्त्री के कई पति भी होते थे। क्योंकि द्रोपदी के पाँच पति थे परन्तु यह साधारण नियम न था। भिन्न-भिन्न वंशों में विवाह हो सकता था।

महाकाव्य काल में नियोग प्रथा भी प्रचलित थी। नियोग प्रथा उस प्रथा को कहते थे जब पति की असमर्थता में स्त्री किसी अन्य

व्यक्ति के साथ संसर्ग करके संतान उत्पन्न कर लेती थी। महाभारत में लिखा है, ''पति के मर जाने पर स्त्री देवर के साथ नियोग करके सन्तान उत्पन्न कर सकती थी।

विशेष परिस्थतियों के अतिरिक्त हमारे हिन्दू शास्त्रकारों ने पुरूषों के लिये कहा है कि वे एक पत्नी के साथ ही अपना सम्बंध बनाये रहे। रामायण में राम तथा सीता की कथा,कालिदास के रघुवंश में राजा अज की कथा इसी आदर्श में प्रमाण है। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में भी एक पत्नी व्रत की प्रशंसा की है। विवाह के अवसर के सप्तपदी अनुष्ठान के मंत्रों में पति तथा पत्नी एक-दूसरे के साथ होने वाले व्यवहारों का सुन्दर वर्णन है।

अतिप्राचीन काल में भारत में विधवा स्त्री की सामाजिक स्थिति बहुत शोचनीय नहीं थी परन्तु कालान्तर में उसकी स्थिति खराब हो गयी। प्राचीन काल में विधवा हो जाने पर वे स्वेच्छानुसार संयमित जीवन व्यतीत कर सकती थी। परन्तु यदि अपने इसमें असमर्थ पाती थीं तो पुनर्विवाह करके पुनः सध्वा हो सकती थीं। प्राचीन भारत में नियोग-प्रथा का प्रचलन था।परन्तु कालान्तर में नियोग प्रथा समाप्त हो गयी और उसका स्थान सती-प्रथा ने ले लिया।

प्राचीन काल में विवाह में दहेज का प्रचलन न के बराबर था उस समय माता-पिता अपनी कन्या को अलंकारों से सुसज्जित किया करते थे परन्तु उनसे जोर जबरदस्ती दहेज नहीं लिया जाता था। वैदिक युग के ब्रह्म विवाह में कन्या को अलंकृत करके देने की प्रथा का चरम विकास दहेज के रूप में हुआ।

वैदिक युग में स्त्रियाँ पुरूषों के प्रत्येक कार्य में सहायक होने से समाज का अत्यन्त उपयोगी अंग थी और संन्यास तथा त्यागवाद के विचारों के प्रबल न होने से विवाह एक आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। स्त्रियों के शिक्षित एवं सुसंस्कृत होने के कारण विवाह में उनकी इच्छा तथा अधिकारों का पूरा ध्यान रखा जाता था। पत्नी घर की रानी थी और पति का कोई यज्ञ या धार्मिक कार्य पत्नी के बिना पूर्ण नहीं हो सकता था।

हिन्दू शास्त्रों में पति की अपेक्षा पत्नी के कर्तव्यों पर अधिक बल दिया गया है, किन्तु महाभारत इसका अपवाद है। महभारत में हमें पति पत्नी सम्बंधों के संधिकाल का धुंधला सा चित्र मिलता है। इसमें यदि पति द्वारा पत्नी से कुछ कर्तव्यों की आशा की जाती है, तो पत्नी पति से भी उसके कर्तव्यों की मांग करती है।

मनु ने विवाह के बिषय में जितना अच्छा आदर्श हमारे सामने रखा है, वह संभवतः किसी अन्य स्मृतिकार ने नहीं रखा । उसके मतानुसार पति-पत्नी आमरण एक-दूसरे के प्रति सच्चाई (अव्यभिचार) का व्यवहार करें, संक्षेप में यही स्त्री-पुरूषों का सर्वोच्च धर्म है। विवाह करके स्त्री-पुरूष ऐसा यत्न करें कि (धर्मार्थकाम के विषय में) एक दूसरे से अलग होकर आपस में प्रतिज्ञा भंग या व्यभिचार न करें।

मनु के अनुसार –

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः।
तथा नित्यं यतेयातां स्त्री पुंसौ तु कृतक्रियौ।
यथा नाभि-चरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम्।[161]

(मनु 9/101-2)

भारतीय जीवन में विवाह का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि जगत् को सुसंचालित करने के लिये विवाह ही एकमात्र साधन है। विवाहोपरान्त गृहस्थी बसाकर स्त्री पुरूष मानव जाति की वृद्धि के लिये पर्याप्त योगदान करते हैं। इसी कारण गृहस्थ आश्रम को अन्य सभी आश्रमों से श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि ब्रह्मचर्य काल में अनुभूत ज्ञान व प्राप्त शिक्षा का सदुपयोग करने का अवसर भी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर मिलता है। इसके अतिरिक्त वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम की भूमिका यही आश्रम है। इस प्रकार जीवन में विवाह का अत्यन्त महत्व है।

विवाह के उपरान्त पति-पत्नी परिवार के सभी सदस्यों के साथ सुखपूर्वक जीवन-यापन करते हैं। इसमें परिवार में विभिन्न सम्बंधों में मधुरता व सहानुभूति की भावना उदित होती है, जिसकी शिक्षा ब्रह्मचर्य आश्रम में ही प्राप्त हो जाती है। यही भावना परिवार में

विकसित होती है और धीरे-धीरे राष्ट्र व देश में हितों के लिये बढ़ती जाती है। प्राचीन काल में गृहस्थ जीवन के सुखी होने के वर्णन मिलते हैं। न केवल प्राचीन काल में ही अपितु आज भी गृहस्थ जीवन में परस्पर सद्भाव मैत्री पूर्ण व्यवाहार की अत्यन्त आवश्यक्ता होने के कारण ही इसका अत्यन्त महत्व है।

प्राचीन भारतीय समाज में वैदिक काल से गुप्त काल के बीच का काल अनेक उतार चढ़ावों से युक्त रहा है। बाहय आक्रान्ताओं ने,कभी तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों ने इस वैविध्य में अपना योगदान दिया है। राजनैतिक परिस्थतियों ने भारतीय संस्कृति को परिवर्तन के लिये विवश किया लेकिन,हमारी संस्कृति एक अबाध धारा के रूप में प्रवाहमान रही। हिन्दू संस्कृति में विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में ग्रहण किया गया। परिवार एवं समाज का विकास इसी पर आधारित है।

विवाह संस्था का उद्भव व सम्पूर्ण विकास गुप्तकाल तक अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुँच चुका था।

''मनु स्मृति में विवाह संस्कार एक पवित्र बन्धन माना गया है परन्तु वर्तमान समय में वैवाहिक मूल्य बदल रहे हैं जिससे लोगों का जीवन अस्त व्यस्त हो रहा है। वैवाहिक सम्बन्ध हमेशा मानसिक सामंजस्य और परिपक्वता के उपादानों पर निर्भर करता है। यदि विचारों में विकृतियां है तो वैवाहिक रिश्ते अक्सर टूट जाते है आज समाज में तलाक और परित्यागता की समस्या गंभीर बनती जा रही है जिससे पति-पत्नी को दाम्पत्य जीवन में विभिन्न अवरोधों का सामना करना पड़ता है।

''दाम्पत्य जीवन हमेशा साफ सुथरा और नैतिक पराकष्ठा पर आधारित होना चाहिये। पति-पत्नी एक-दूसरे को समझे तथा उनके विचारों में गम्भीरता और त्याग की भावना होनी चाहिये। विवाह के समय एक दूसरे में भौतक सुख की लालसा के साथ-साथ नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर भी ध्यान देना चाहिये। दाम्पत्य जीवन को

आकर्षित और सामंजस्य पूर्ण बनाने के लिये एक–दूसरे में त्याग और दोनों में सूझ बूझ होनी चाहिये। जीवन को ज्योर्तिगमय बनाने का एक तरीका है वैवाहिक संस्कार जिससे जीवन में सामान्यीकरण आता है।

वधू को हमेशा शिक्षित कुलीन और नैतिकवान होना चाहिये तथा उसका धार्मिक और नैतिक पक्ष हमेशा शिलाओं की तरह मजबूत होना चाहिये। पति और पत्नी एक दूसरे के परिवार रूपी गुलदस्ता के पुष्प है जो परिवार रूपी बाग की शोभा को बढ़ाते हैं। पारिवारिक रिश्तों को सही आकार देने के लिये दाम्पत्य जीवन बहुत आवश्यक है।

''वैदिक काल में पत्नी को धर्मचारिणी के रूप में स्थान प्राप्त था समस्त पारिवारिक और सामाजिक कर्मकाण्डों में स्त्रियाँ भाग लेती थीं उनका सम्मान भी उसी प्रकार से था, जैसी भारतीय संस्कृति मैं देवी की पूजा होती थी,उच्च कुलीन परिवार की गृहणी हमेशा जीवन को सच्चरित्रता की दृष्टि से देखती है पत्नी और पति एक दूसरे के पूरक थे पत्नी हमेशा पति का सम्मान करती थी दोनों का आपस में साहचर्य, धर्मचर्य और ब्रह्मचर्य जैसे सिद्धान्तों पर जीवन टिका हुआ था। जीवन में सादगी और सौम्यता थी।

धर्म और नियम से आबद्ध सामाजिक अनुमति से स्त्री –पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध को विवाह कहा जाता है। हिन्दुओं में विवाह एक धार्मिक प्रथा के रूप में प्रचलित है। प्राचीन काल से भारतीय समाज के सुसंचालन के लिये आश्रम–धर्म की व्यवस्था की गयी तथा मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को चार आश्रमों–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ,वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम में विभक्त किया गया है। इन चारों आश्रमों के निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन करता हुआ मनुष्य पुरुषार्थ–चतुष्टय् धर्म, अर्थ, काम तथा जीवन का परमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करता है। इन चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम का विशेष महत्व है।

हिन्दू धर्मानुसार मनुष्य तीन ऋण – ऋषि ऋण, देव ऋण तथा पितृ ऋण के साथ जन्म लेता है जिनसे उसे उऋण होना होता है वह ब्रह्मचर्य तथा विद्याध्ययन द्वारा ऋषिऋण यज्ञादि कर्मों द्वारा देव–ऋण तथा अनुकूल वर्ण,गोत्र व गुणवती स्त्री से विवाह और संतानोत्पत्ति कर

पितृ ऋण से मुक्त होता है। भारतीय चिन्तनधारा में विवाह का उद्देश्य काम–वासना की तृप्ति नहीं अपितु पवित्रता पूर्वक धर्म का पालन करते हुये अपने व्यक्तित्व,परिवार और समाज का विकास करना है।

विवाह के समय परम्परागत कुल–देवता,ग्राम देवता,मातृ का पूजन, जैसे कार्य को सम्पादित किया जाता है तथा विवाह को पूर्ण सम्पादित करने के लिये विभिन्न देवी–देवताओं को आमंत्रित किया जाता है। कई लोक–देवता महायज्ञ के श्रेष्ठ रक्षक है। ऐसा लोक विश्वास है कि उनको आमंत्रित करने से सभी बाधायें दूर हो जाती हैं। विवाह के समय कई प्रकार के हास–परिहास युक्त मंगल गीत गाये जाते हैं। वैवाहिक कार्यक्रमों में पुरोहित गुरू एवं पंडित का विशेष महत्व है।

विवाहों की श्रेष्ठता एवं पवित्रता में गिरावट आयी है। विवाह का पाश्चात्यीकरण हो गया है। पूरी संस्कृति को आधुनिकता एवं फैशन परस्त विचारधारा से जोड़ दिया गया है। आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता की संस्कृति स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। जिससे विवाह के समय पूरा वातावरण विभिन्न आधुनिक प्रावधानों और उपमानों से भरा रहता है।

" आज समाज में आवश्यक्ता है जागरूकता की इसके लिये नई युवा पीढ़ी को आगे आना पड़ेगा और समाज में होने वाली महंगे विवाहों के खिलाफ आन्दोलन चलाना पड़ेगा आज समाज में खर्चीले विवाह होने के कारण कई प्रकार हिंसायें और अपराधों का जन्म हो रहा है लोग जब रिश्ते बनाते है तो बुनियादी और सैद्धान्तिक बातें करते हैं परन्तु कई परिवारों में माता–पिता पक्ष को सच्चाई से दूर रखा जाता है परन्तु वास्तव में उस निरीह वधू के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया जाता है विवाहों में भारी शानों शौकत अधिक देखने को मिलती है जिससे कि किसी के व्यवहार और चरित्र का प्रमाणीकरण करना बड़ा कठिन है। विवाह में आने वाले नजदीकियों और रिश्तेदारों को उनके उपहारों से तौला जाता है विवाह के समय मददगार कम होते है। आलोचक और समालोचक अधिक होते है विवाहों में कहीं पर अनेकता में सांस्कृतिक एकता और धार्मिक बिन्दु दिखलाई पड़ते है।

प्राचीन समय से ही आध्यात्मिकता हमारे जीवन का आधार है। सर्वविदित है कि आध्यात्मिकता के क्षेत्र में हमारे देश का स्थान अद्वितीय है। तत्कालीन विद्वानों ने आध्यात्मिकता के लिये धार्मिक मार्ग का अनुसरण किया। उन्हीं के प्रयासों के फलस्वरूप हिंदू समाज में धार्मिकता का समावेश इतनी सहजता व सरलता से हो गया वह उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी। तत्कालीन विद्वानों ने मानव-जीवन के प्रत्येक क्रिया कलाप को धार्मिक क्रियाओं व अनुष्ठानों से जोड़ दिया ताकि समस्त मानव जाति इस धार्मिक मार्ग का अनुसरण कर, आध्यात्मिकता की प्राप्ति कर सके जो कि मोक्ष के लिये आवश्यक है और 'मोक्ष' ही मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य है।

यही कारण है कि प्राचीन समय में मानव जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी धार्मिक संस्कारों से जुड़ा था,उनमें विवाह संस्कार भी एक था। विवाह संस्कार,सभी संस्कारों का उद्‌गम था। प्राचीन समय में विवाह संस्कार जिन नियमों व आस्थाओं से बांधा गया था उसके कारण विवाह को गरिमामय स्थान प्राप्त था। कालांतर में विवाह के अन्य रूपों का प्रचलन भी हो गया। जिससे उसकी गरिमा में थोड़ी कमी आयी। हमारे मनीषियों ने विवाह के लिये जिन नियमों व निषेधों को स्थापित किया उसी का परिणाम है कि हमारी प्राचीन संस्कृति हमारे लिये आज भी अनुकरणीय है। यही कारण है कि वर्तमान समय में जबकि हम वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं, आधुनिकता की दौड़ में शामिल है फिर भी हमारे जीवन में हमारे पूर्वजों द्वारा निर्धारित नियमों व संस्कारों का समावेश है। हमारे पूर्वजों के द्वारा दिये गये संस्कार आज भी हमारे जीवन के लिये अनुकरणीय हैं। हमारे मनीषियों द्वारा निर्धारित जो नियम व धार्मिक कर्म हैं उनका न केवल सांस्कृतिक अपितु वैज्ञानिक महत्व भी है। हमारे यहां तिलक लगाना,यज्ञोपवीत धारण करना,महिलाओं का सिंदूर लगाना,चूड़ियां पहनना कर्ण छेदन आदि अनेक धार्मिक कर्म ऐसे हैं जिनका आज भी वैज्ञानिक महत्व है। इस वैज्ञानिक युग में भी हमारे यही विवाह को धार्मिक दृष्टि से ही देखा जाता है। हमारे भारतीय समाज में आज भी विवाह को जो

स्थायित्व और जो गरिमा प्राप्त है वह अन्य संस्कृतियों में देखने को नहीं मिलती। हमारे समाज में परिवारों का जो संयुक्त रूप देखने को मिलता है,वह हमारे प्राचीन संस्कारों की ही देन है हमारे संस्कार आज भी हममें विद्यमान है यह अवश्य है कि उनके रूपों में परिवर्तन हुआ है।

सन्दर्भ - सूची

1. डा0 डी0एस0बघेल 'भारतीय समाज' पृष्ठ सं0177

2. वही पृष्ठ सं0178

3. न्यायामूर्ति गिरजाशंकर मिश्र 'हिन्दू विधि' प्रकरण 14 पृष्ठ सं 255

4. डा0 डी0एस0बघेल 'भारतीय समाज'पृष्ठ सं180

5. 'याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित संस्कार' लेखिका ऊषा गुप्ता पृष्ठ सं065

6. वेस्टर मार्क - 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ मैरिज' लन्दन 1926 पृष्ठ सं0 1

7. जिलिन - 'कल्चरल सोश्योलोजी' न्यूयार्क 1948 पृष्ठ सं0334

8. डा0वी0पी0अस्थाना- 'फ्रांसिस बेकन ऐसेज' पृष्ठ सं 29

9. आचार्य श्रीराम शर्मा वाड्मय 'षोडश संस्कार विवेचन'अंक 33 पृष्ठ सं010.13

10. डा0हरिदत्त वेदालंकार 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास' पृष्ठ सं0 5

11. म्यूर हैड - 'हिस्टारिकल इंट्रोडक्शन टू दी प्राइवेट लॉ आफ रोम' पृष्ठ सं023

12. बाइबल,जिनीसस 2/18 पृष्ठ सं 20

13. आचार्य श्रीराम शर्मा 'विवाहोन्मादः समस्या और समाधान' अंक 60 पृष्ठ सं01.6

14. 'हर्षचरित' बाणभट्ट पृष्ठ सं0 79

15. ऋग्वेद 5, 3, 2, 5, 28, 3

16. शतपथ ब्राह्मण 5,2,1,10 ऐतेरेय अरण्यक 1,2,4

17. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय 9/28 पृष्ठ सं0303

18. 'याज्ञवल्क्य स्मृति' अध्याय-1/89

19. 'महाभारत' आदिपर्व 74,38

20. वही 74,52

21. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय -2/28 पृष्ठ सं0 32

22. 'महाभारत', आदिपर्व 74, 96-97,

23. कौटिल्य कृत 'अर्थशास्त्र' अध्याय-1/7

24. आचार्य श्रीराम शर्मा 'विवाहोन्माद समस्या और समाधान' अंक 60 पृष्ठ सं01.6

25. हरिदत्त वेदालंकार 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास' अध्याय-5पृष्ठ सं0144

26. वही पृष्ठ सं0159

27. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय -3/15-16 पृष्ठ सं069

28. वही अध्याय 3/17-18 पृष्ठ सं070

29. डा0कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति' पृष्ठ सं0208

30. वही पृष्ठ सं0207

31. श्रीराम गोयल 'गुप्त साम्राज्य का इतिहास' पृष्ठ सं057

32. हरिदत्त वेदालंकार 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास' पृष्ठ सं0273

33. वही पृष्ठ सं0274

34. वही पृष्ठ सं0277

35. 'मनु' स्मृति अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय 4/244 पृष्ठ सं0150

36. वही अध्याय 2/238 पृष्ठ सं064

37. वही अध्याय 9/88 पृष्ठ सं0312

38. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय 9/89 पृष्ठ सं0313

39. वही अध्याय-3/6-7-8 पृष्ठ सं068

40. हरिदत्त वेदालंकार 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास' पृष्ठ सं0147-48

41. 'ज्यूरिडिकल स्टडीज इन ऐशेन्ट इंडिया' खण्ड 2 पृष्ठ 32-33

42. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय 9/79 पृष्ठ सं0311

43. विष्णु धर्मसूत्र-37/15-17

44. तैतरीय ब्राह्मण-3/2/9

45. हरिदत्त वेदालंकार 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास' पृष्ठ सं0150

46. वीर मित्रोदय पृष्ठ सं0760-66

47. भारद्वाज गृहसूत्र 1/11

48. कामसूत्र वात्स्यायन 3/1/12

49. नागेन्द्र नाथ वसु 'हिन्दी विश्वकोष' खण्ड 21 पृष्ठ सं0562-65

50. हरिदत्त वेदालंकार 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास' पृष्ठ सं0168

64. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय 3/21-22 पृष्ठ सं070

65. वही अध्याय-3/23-24 पृष्ठ सं071

66. विनोद चन्द्र पाण्डेय 'प्राचीन भारत में सामाजिक व आर्थिक जीवन' पृष्ठ सं0156

67. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय 3/27 पृष्ठ सं071

68. 'याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन' लेखिका ऊषा गुप्ता पृष्ठ सं067

69. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय 3/30 पृष्ठ सं072

70. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/60

71. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय 3/29 पृष्ठ सं071

72. 'याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन' लेखिका ऊषा गुप्ता पृष्ठ सं068

73. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय 3/28 पृष्ठ सं071

74. वही अध्याय 3/31 पृष्ठ सं0 72

75. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/61

76. 'याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन' लेखिका ऊषा गुप्ता पृष्ठ सं0 68

77. महाभारत 13/44/9

78. 'याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन' लेखिका ऊषा गुप्ता पृष्ठ सं0 69

79. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय- 3/32 पृष्ठ सं0 72

80. 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास' हरिदत्त वेदालंकार पृष्ठ सं0 212

81. कालीदास कृत 'मेघदूत' 1/32

82. 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास' हरिदत्त वेदालंकार पृष्ठ सं0 169

83. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय-3/33 पृष्ठ सं0 72

84. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/61

85. 'याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन' लेखिका ऊषा गुप्ता पृष्ठ सं0 69

86. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय-3/34 पृष्ठ सं0 72

87. आश्वलायन गृहसूत्र 1/6/7

88. ऋग्वेद 10/27/22

89. वही 1/109/2

90. वही 10/85/42

91. वही 10/85/27

92. वही 1/112/19

93. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय- 3/27-28 पृष्ठ सं0 71

94. विनोद चन्द्र पाण्डेय 'प्राचीन भारत में सामाजिक व आर्थिक जीवन' पृष्ठ सं0158

95. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय–3/5 पृष्ठ सं068

96. कपाड़िया 'भारत वर्ष में विवाह तथा परिवार' पृष्ठ सं0135

97. विनोद चन्द्र पाण्डेय 'प्राचीन भारत में सामाजिक और आर्थिक जीवन' पृष्ठ सं0166

98. वही पृष्ठ सं0164

99. वही पृष्ठ सं0169

100. हरिदत्त वेदालंकार 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास' पृष्ठ सं0236

101. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय –9/79 पृष्ठ सं0311

102. ऋग्वेद 13,85,36,

103. वही 10,85,39

104. विनोद चन्द्र पाण्डेय 'प्राचीन भारत में सामाजिक और आर्थिक जीवन' पृष्ठ सं0131

105. डा0कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति' पृष्ठ सं0287

106. श्रीराम गोयल गुप्त साम्राज्य का इतिहास पृष्ठ सं0428

107. वही पृष्ठ सं0428

108. विनोद चन्द्र पाण्डेय 'प्राचीन भारत में सामाजिक और आर्थिक जीवन' पृष्ठ सं0161

109. आश्वलायन गृहसूत्र 1/7/3–5

110. विनोद चन्द्र पाण्डेय प्राचीन भारत में सामाजिक और आर्थिक जीवन पृष्ठ सं0161

111. आश्वलायन गृहसूत्र– 1,7,7

112. वही–1,7,3,पारस्कर गृहसूत्र 16

113. वही– 1,7,19

114. विनोद चन्द्र पाण्डेय 'प्राचीन भारत में सामाजिक और आर्थिक जीवन' पृष्ठ 161

115. ऋग्वेद 10,18,8

116. आपस्तम्ब गृहसूत्र 2,10,2-3,

117. वशिष्ठ धर्मसूत्र अध्याय-17,75-80

118. बौधायन धर्मसूत्र 4/1/19, वशिष्ठ धर्मसूत्र 17/62,64

119. कौटिल्य कृत 'अर्थशास्त्र' 8/3/42

120. पारांशरं स्मृति 4/30

121. वाचस्पत्य कोष, पृष्ठ सं04/363

122. 'हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र' खण्ड-2,भाग-1 अध्याय-9 पृष्ठ सं0427

123. 'ऋग्वेद' 1,134,3

124. वही 2,29,1

125. 'महाभारत' आदिपर्व अध्याय-11

126. 'ऋग्वेद' 5,2,2

127. 'हिन्दू विवाह एवम् यज्ञोपवीत संस्कार' डा0भोजराज द्विवेदी पृष्ठ सं021

128. 'ज्योतिष एवम् विवाह योग' डा0भोजराज द्विवेदी पृष्ठ सं05

129. 'स्मृति चन्द्रिका' 568-70

130. कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' प्रस्तुति राकेश शास्त्री पृष्ठ सं 142

131. वही पृष्ठ सं0143

132. महेन्द्र नाथ केदार एवम् अन्य 'विवाह का समय' पृष्ठ सं011

133. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय-9 पृष्ठ सं0 309

134. विनोद चन्द्र पाण्डेय 'प्राचीन भारत में सामाजिक व आर्थिक जीवन' पृष्ठ सं0120

135. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय 9 पृष्ठ सं0309

136. डाँ0एस0एम0 पहाड़िया 'प्राचीन भारत' पृष्ठ सं0 62

137. विनोद चन्द्र पाण्डेय 'प्राचीन भारत का सामाजिक व आर्थिक जीवन' पृष्ठ सं0119

138. द्विज़ेन्द्र नारायण झा एवम् श्रीमाली 'प्राचीन भारत का इतिहास' पृष्ठ सं0382

139. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय-9 पृष्ठ सं0308

140. वही अध्याय - 9 पृष्ठ सं0308

141. वही अध्याय -9 पृष्ठ सं0308

142. पारस्कर गृहसूत्र

143. 'महाभारत' आदि पर्व 3,58,59

144. वही 1,211,16,

145. 'पदम् पुराण' उत्तरकाण्ड 223, 36,37,

146. 'विवाह का समय' महेन्द्र नाथ केदार पृष्ठ सं07

147. 'मनु स्मृति' 4,21

148. 'महाभारत आदिपर्व' 74,40,

149. वही 74,50,

150. 'अथर्ववेद' 14,1,20

151. 'कौशिक सूत्र' 76,15-16

152. पं0श्रीराम शर्मा 'विवाहोन्माद समस्या और समाधान' पृष्ठ सं0 1.5

153. 'मनु स्मृति' 9/176

154. वही 9/25

155. 'महाभारत आदिपर्व' 74,40-41

156. 'मनु स्मृति' अनुवादक पं0ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी अध्याय-9 पृष्ठ सं0321

157. वही अध्याय-9 पृष्ठ सं0 324

158. 'हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र' खण्ड 3 पृष्ठ सं 643

159. हरिदत्त वेदालंकार 'हिन्दू परिवार मीमांसा' पृष्ठ सं0209

160. हरिकृष्ण रावत 'समाजशास्त्र का विश्वकोष' पृष्ठ सं068

161. 'हिन्दू परिवार मीमांसा' हरिदत्त वेदालंकार अध्याय-18 पृष्ठ सं0488

162. 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास' हरिदत्त वेदालंकार पृष्ठ सं0443

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.	अनुवादक चतुर्वेदी पं0ज्वाला प्रसाद	"मनुस्मृति"
2.	प्रस्तुति शास्त्री राकेश	"कौटिल्य अर्थशास्त्र"
3.	द्विवेदी डा0भोजराज	"हिन्दू विवाह एवं यज्ञोपवीत संस्कार"
4.	केदार महेन्द्र नाथ एवं अन्य	"विवाह का समय"
5.	द्विवेदी डा0भोजराज	"ज्योतिष और विवाह योग"
6.	पाण्डेय विनोद चन्द्र	"प्राचीन भारत में सामाजिक और आर्थिक जीवन"
7.	श्रीवास्तव डा0कृष्ण चन्द्र	"प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति"
8.	पाण्डेय डा0आर0एन0	"प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास"
9.	महाजन विद्याधर	"प्राचीन भारत का इतिहास"
10.	गोयल श्रीराम	"गुप्त साम्राज्य का इतिहास"
11.	झा द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली	"प्राचीन भारत का इतिहास"
12.	वर्मा प्रो0वी0पी0	"धर्मदर्शन की मूल समस्यायें "
13.	शर्मा डा0रामशरण	"प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास"
14.	पहाड़िया डॉ0एस0एम0	"प्राचीन भारत का इतिहास"
15.	वेदालंकार हरिदत्त	"हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास"
16.	शर्मा आचार्य श्रीराम	"विवाहोन्माद समस्या और समाधान" अंक 60
17.	शर्मा आचार्य श्रीराम	"षोडश संस्कार विवेचन" अंक 33
18.	पाण्डेय डा0राजवली	"हिन्दू संस्कार"
19.	गुप्ता ऊषा	"याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन "
20.	बघेल डा0डी0एस0	"भारतीय समाज "

21. मिश्र न्यायमूर्ति गिरजाशंकर — "हिन्दू विधि"
22. दैनिक आज, कानपुर
23. अस्थाना डा0 वी0पी0 — "फ्रांसिस बेकन ऐसेज"
24. बाणभट्ट — "हर्षचरित"
25. ऋग्वेद
26. ऐतरेय ब्राह्मण
27. शतपथ ब्राह्मण
28. महाभारत शान्ति पर्व
29. सम्पादक शर्मा श्रीपाद — "अथर्ववेद"
30. डा0काणे — "हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र"
31. वेदालंकार हरिदत्त — "हिन्दू परिवार मीमांसा"
32. रावत हरिकृष्ण — "समाजशास्त्र विश्वकोष"
33. श्री नारायण — "आश्वलायन गृहसूत्र"
34. पारस्कर गृहसूत्र
35. स्मृति चन्द्रिका
36. अग्रवाल डा0वासुदेव शरण — "हिन्दू परिवार मीमांसा"
37. वेदालंकार हरिदत्त — "भारत का सांस्कृतिक इतिहास"
38. कौशिक सूत्र
39. आचार्य दीपांकर — "कौटिल्य कालीन भारत"
40. डा0ओमप्रकाश — "प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास"
41. डा0बुद्ध प्रकाश — "भारतीय धर्म और संस्कृति"
42. मुंशी के0एम0 — "द वैदिक ऐज "
43. कपाड़िया के0एम0 — "मैरिज एण्ड फेमिली इन इण्डिया"
44. अल्तेकर डा0ए0एस0 — "दि पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन "
45. श्रीवास्तव महावीर प्रसाद — "प्राचीन भारत"
46. विद्यालंकार डा0सत्यकेतु — "प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास"

47. शर्मा श्रीराम — ''इक्कीसवीं सदी नारी सदी''

48. मिश्र जयशंकर — ''प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास ''

49. शास्त्री श्याम — ''तैतरीय ब्राह्मण ''

50. वेस्टर मार्क — ''ए शार्ट हिस्ट्री आफ मैरिज''

51. जिलिन — ''कल्चरल सोश्योलोजी ''

52. म्यूरहैड — ''हिस्टोरिकल इंट्रोडक्शन टू दि प्राइवेट लॉ आफ रोम''

53. वशिष्ठ धर्मसूत्र

54. वात्स्यायन — कामसूत्र

55. वसु नागेन्द्र नाथ — हिन्दी विश्वकोष

56. पाराशर स्मृति

57. वाचस्पत्य कोष

58. कालीदास — मेघदूत

59. ''ज्यूरिडिकल स्टडी इन ऐशेन्ट इण्डिया'' खण्ड–2

60. बौधायन धर्मसूत्र

61. आपस्तभ गृहसूत्र

62. गोभिल गृहसूत्र